गढ़वाली लोककला और लोकसाहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबंध

निदेशक

डॉ० जगदीश गुप्त

अनुसंधाता

शांति चौधरी

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

1994

:: प्राक्कथन ::

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कुछ विशिष्टताएं होती हैं, जो उसे औरों से पृथक करती हैं। खान-पान, भाषा, बोली, रहन - सहन तो उस अंतर को स्पष्ट करते ही हैं, उनसे भी बढ़कर, वहां का साहित्य और कला होती है जो सम्बन्धित क्षेत्र की अलग पहचान कराती है। इस सबके संरक्षण और संवर्द्धन का दायित्व वहां के लोगों का होता है। यही कारण है कि जब तक लोक - जीवन का गहन अध्ययन नहीं किया जाता तब तक विषयवस्तु में गंभीरता और मौलिकता नहीं आ पाती। मैनें इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि के लिए जब 'गढ़वाली लोकसाहित्य और लोककला का तुलनात्मक अनुशीलन' विषय चुना तो उसका उद्देश्य मात्र यही था कि गढ़वाल का वह पक्ष प्रस्तुत किया जाय जो अभी तक अनछुआ है अथवा उसे उपेक्षित छोड़ दिया गया है।

अपने शोध के दौरान मैंने इस तथ्य का पता लगाने का यत्न किया था कि गढ़वाल की संस्कृति कला और साहित्य को सही अर्थो में तलाशने की कहां तक की कोशिश हुई है। पर मुझे यह देखकर कष्ट हुआ कि इस सम्बन्ध में जो भी कार्य हुए हैं वे सभी आधे - अधूरे हैं। एक तो गढ़वाली लोक जीवन, लोक साहित्य और लोक कला को मौलिक दृष्टि से नहीं देखा गया है और दूसरी बात यह भी है कि उपलब्ध चीजों के पीछे छिपे जीवन - दर्शन को समझने का प्रयास भी नहीं हुआ है।

मैं यह देखकर भी हैरान रह गयी कि साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक और अन्य कई दृष्टियों से भी महत्वपूर्ण गढ़वाल की विपुल लौकिकता को एक स्थान पर संजोने तक का विधिवत् कार्य नहीं हुआ है। एक तो गढ़वाल के बारे में वैसे ही बहुत कम लिखा गया है, तिस पर जब उपलब्ध चीजों के अध्ययन में कोताही कर दी जायेगी तो विषय के साथ पूरा न्याय नहीं होगा। इसलिए सबसे पहले मैंने गढ़वाल के लोगों का जीवन - दर्शन परखा। उनमें गढ़वाल की विशिष्टताओं का अतीत और वर्तमान कितना रचा - बसा है इसे जब तक न समझ लिया जाता, तब तक साहित्य और कला का अध्ययन सम्भव नहीं था।

मैं मूलतः 'गढ़वाली' हूँ। इसलिए स्थानीय बोली और जीवन - दर्शन का मेरे जन्म से ही सम्बन्ध है। मैंने लोक - कथाओं, लोक - गीतों, मान्यताओं और इन सबके बदलते स्वरूप का गहन अध्ययन करने के लिए बराबर गढ़वाल को नयी - नयी दृष्टि से भी देखा। मेरा उद्देश्य यही रहा कि अपने इस शोध - प्रबन्ध के अध्ययन से मैं गढ़वाली लोकसाहित्य और लोककला को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर सकूं। मैंने गढ़वाली लोक जीवन से जुड़े हर पहलू को स्पर्श करने का इसलिए भी प्रयास किया है ताकि भविष्य में शोध करने वालों का रास्ता आसान हो जाये। साहित्य, कला और जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने वाले उद्धरण और चित्र भी इसलिए दिये गये हैं। मैं यह तो नहीं कहती कि मेरा शोध - प्रबन्ध गढ़वाली लोक साहित्य और लोक कला का अंतिम ग्रंथ माना जाये पर यह दावा जरूर है कि शोध कर्ताओं एवं इस विषय पर भविष्य में कार्य करने वालों के लिए मील का पत्थर अवश्य साबित होगा।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध पूरा होने में काफी लम्बा समय लग गया। मैं इस दौरान कितनी बार टूटी और जुड़ी हूँ, सोचने से ही कांप उठती हूँ। कभी स्वास्थ्य ने साथ नहीं दिया तो कभी नौकरी बाधक बनी। कभी पारिवारिक झंझटों में फंस जाने से कार्य ठप रहा तो कभी निजी कारणों से हतोत्साहित हो जाती थी। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, कार्यालयी और भी अनेक ऐसे कारण उत्पन्न हो जाया करते थे कि शोध-कार्य पिछड़ जाता था। शोध - कार्यों ने मुझे तरह - तरह से परेशान किया है। एक बार तो गढ़वाल - यात्रा से लौटते समय ट्रेन में पूरा सूटकेस ही चोरी हो गया। मुझे अपने कैमरे व टेपरिकार्डर की चोरी हो जाने का दुःख आज भी सता रहा है बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि वह हादसा जीवन भर मुझे सालता रहेगा। उस कैमरे में गढ़वाल के सम्बन्ध में खींचे गये कुछ चित्र और गढ़वाल के विभिन्न अंचलों से रिकार्ड किये गये लोकगीत ही नहीं अपितु पूरा गढ़वाल ही सहेजा गया था। मैंने बड़ी लगन और मनोयोग से इन्हें संकलित किया था। उस घटना ने शोध-प्रबन्ध पूरा करने में अचानक पर्वतराज हिमालय जैसी बाधा खड़ी कर दी थी।

जो व्यक्ति सभी तरह से परेशान हो उसके लिए सृजन - कार्य कैसे सम्भव होगा? फिर

शोध - कार्य तो वैसे ही कठिन होता है। अध्ययन, चिंतन मनन और तब सृजन के लिए पृष्ठभूमि का तैयार होना - इतना लम्बा सफर तय करने में शोधकर्ता का मनोबल तक गिर जाता है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही होता रहा। इसलिए जब आज शोध - प्रबन्ध तैयार हो गया तो मैं स्वयं ही यह विश्वास नहीं कर पा रही हूं कि सचमुच मेरा और मेरे अपनों का सपना साकार हो गया। मैं इसे अपनी नहीं बल्कि अपने संघर्षों की उपलब्धि मानती हूँ। अब मुझे भी विश्वास हो गया कि धैर्य, साहस और आशा का मनुष्य के जीवन में कितना महत्व होता है।

इस शोध प्रबन्ध के पूरा होने की जितनी खुशी मुझे है, उससे भी बहुत अधिक प्रसन्न वे लोग हैं जो इस कार्य को सम्पन्न हुआ देखना चाहते थे। किसी ने दुलार से तो किसी ने स्नेहासिक्त आदेश से मुझे शोध - प्रबन्ध पूरा करने का बराबर प्रोत्साहन दिया। जब भी मैं टूटी उन्हीं लोगों ने मुझे ढांढ़स बंधाया और जब भी मैं झल्लायी उन्हीं लोगों ने मुझे समझाया - बुझाया। ऐसे लोगों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने में मैं स्वयं को असमर्थ पा रही हूं। वे लोग मेरे शुभचिंतक, मार्गदर्शक और संरक्षक रहे हैं इसलिए उनका स्थान बहुत ऊँचा है। मुझे उनका आशीर्वाद मिलते रहना चाहिए।

मैं अपने अभिभावक और पितातुल्य माननीय डॉ0 जगदीश गुप्त के प्रति श्रद्धावनत् हूँ। वे प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध के निदेशक से भी अधिक रहे। अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने मुझे सदा ही प्रोत्साहित किया और स्नेह से इतना अधिक शक्ति प्रदान की कि मैं विषम परिस्थितियों में भी कहीं भटकी नहीं। उन्हें अपने स्वास्थ्य से भी अधिक चिंता मेरे शोध - प्रबन्ध की रही। मैं उनकी तबियत के बारे में कुछ पूछूँ कि उससे पहले ही वे मेरे शोध - प्रबन्ध के विषय में प्रश्न कर लेते थे। उससे मेरे मन में एक नया उत्साह और नया संकल्प उत्पन्न हो जाता था। उनका आशीष मुझे फलित हुआ।

इस शोध प्रबन्ध के पूरा होने में जिससे भी मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सबकी आभारी हूं। श्रद्धेय मामा जी स्व0 डॉ0 महावीर प्रसाद लखेड़ा, श्री मोहन लाल बाबुलकर और पूज्या माँ श्रीमती प्रभावती घिल्डियाल का मुझे विशेष स्नेह मिला। मैं डॉ0 राजलक्ष्मी वर्मा, डॉ0 जगदीश

:: अनुक्रमणिका ::

प्रयुक्त, समान रूप से प्रयुक्त, नीति विषयक, नीति विषयक और साधारण शिक्षाप्रद, अनुभूत संकेत विषयक, आलोचनात्मक जाति विषयक।

परिचय-खण्ड

अध्याय - 1

गढ़वाल का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय

नामकरण: गढ़वाल के प्राचीन काल में अनेक ख्यात नाम रहे हैं। उत्तराखण्ड, उत्तरापथ, देवभूमि, ब्रहमपुर, हिमवंत और केदारखण्ड। ये नाम आज भी सर्वाधिक प्रचलित हैं और चर्चित हैं। उत्तराखण्ड, केदारखण्ड के अन्तर्गत हरिद्वार पर्यन्त बदरिकाश्रम तक का समस्त क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में दक्ष का यज्ञ क्षेत्र, द्वादभ ज्योतिर्लिंग केदार और नर-नारायण क्षेत्र श्री बदरिकाश्रम सहित, शक्ति के अनेक विख्यात शक्ति पीठ हैं। केदारखण्ड का नाम गढ़वाल कब और क्यों पड़ा इस विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। भाषाविदों और इतिहासकारों के इस सम्बन्ध में मुख्यतया तीन मत हैं।

(1) गढ़वाल में पाये जाने वाले 52 गढ़ों के कारण,
केदारखण्ड प्रदेश को गढ़वाल पुकारा जाने लगा।[1]

(2) गढ़वाल-केदारखण्ड के आंचल में बहुत से गढ़ होने से
इसे बहु-गढ़ों वाला आंचल गढ़वाल कहा गया।[2]

(3) गढ़पाल से केदारखण्ड का नाम गढ़वाल पड़ा।[3]

गढ़वाल शब्द, गढ़पाल से निकला है। विद्वान लेखक का मत है कि "गड" और "गाड" शब्दों का गढ़वाली भाषा में प्रचुर प्रयोग हुआ है। "गाड' गधेरे अथवा छोटी नदी को कहा जाता है। इसलिये गडवाल अर्थात हजारों छोटी नदियों वाला प्रदेश, इसे कहा गया है। "वाल" शब्द का भी गढ़वाली भाषा में बहुत प्रयोग हुआ मिलता है। यथा हटवाल, डंगवाल, सेमवाल और बम्बवाल जातियों के नाम। गाँवों के नामों पर भी वहाँ रहने वालों को पुकारा जाता है जैसे कोठी गाँव के लोगों को "कोठीवाल" तथा गढ़ी वालों को "गढ़ीवाल" कहा जाता है।

हमारा मत है कि उपर्युक्त उल्लिखित मतों में, केदारखण्ड के गढ़वाल नाम से पुकारे जाने में, "गढ़" शब्द सर्वाधिक महत्व का है। जातिगत और ग्रामगत रिवाज (प्रथा) के अनुरूप गढ़ शब्द

---

1. पं0 हरिकृष्ण रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास
2. श्री एच0जी0 बाल्टन, ब्रिटिश गढ़वाल गजेटियर
3. श्री पातीराम परमार, गढ़वाल ऐंशन्ट एण्ड मार्ण्डन

का "गड" होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। इस प्रथा के अनुसार गडवारा और कालान्तर में गड से गढ़वाल होना संदिग्ध नहीं है क्योंकि गढ़वाली भाषा में "वाल" शब्द के साथ "बाल" और "पाल" शब्द भी बहु-प्रचलित हैं। इस तरह "गड" से गढ़ और "वार" से वाल हुआ प्रतीत होता है और यही युक्तिसंगत भी है।

महाकवि भूषण ने अपने काव्य में गढ़वाल राज्य के लिए "गढ़वार" शब्द का प्रयोग किया है।[1]

सुयस ते भलो मुख भूषण भनैगी वाढ़ि
गढ़वार राज्य पर राज जो बखानगो।

गढ़वाल राज्य की स्थापना में नाथयोगी सत्यनाथ का सर्वाधिक योग माना जाता है। उल्लेख मिलता है कि जब धारा नगरी का पंवार किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठा तो, सिद्ध सत्यनाथ ने अलख जगाकर उन्हें जगाया। गढ़वाल राज्य की उत्पत्ति के इस संदर्भ में भी गढ़वाल को "गडवार" और गढ़वाल प्रदेश में रहने वाले को गढ़माही (गढ़ देश में ही) का प्रयोग किया गया है।

धारा नगरी से चल्यो आयो एक पंवार
हरिद्वार वह न्हाय के बस्यो आन गडवार
के ते दिवस भये गढ़ माही खेती करै चाकरी नाही[2]

इस तरह कालान्तर में यही गढ़ और गडवार शब्द आगे चलकर गढ़वाल बन गये और यह शब्द बहु-प्रचलित केदारखण्ड के लिए प्रयोग किया जाने लगा। पौराणिक केदारखण्ड के उपरान्त सांस्कृतिक ग्रन्थों, दान-पत्रों और ताम्रपत्रादि अभिलेखों से भी इस साक्ष्य की पुष्टि होती है कि पौराणिक युग के इस क्षेत्र को गढ़वाल नाम से पुकारा जाने लगा था।[3]

---

1. भूषण ग्रन्थावली
2. मौलाराम, मौलाराम ग्रन्थावली
3. वायु पुराण

भौगोलिक सीमा- गढ़वाल 29.26 एवं 31-28 अक्षांश तथा 77-49 एवं 80.6 देशान्तर के मध्य स्थित है। इसकी लम्बाई टोन्स से नन्दा देवी पर्वत श्रृंखला तक 150 मील मानी गई है।[1] गढ़वाल प्रदेश (मण्डल) की भौगोलिक सीमा में केदारखण्ड की सीमा के ही पांच जनपद आते हैं। इस क्षेत्र का सम्पूर्ण भूभाग अलकनन्दा-भागीरथी और यमुना उपत्यका में अवस्थित रहा है। इस प्रदेश की प्राकृतिक भौगोलिक सीमा प्राचीनतम है। उत्तरी भाग में हिमालय की अनेक विश्व प्रसिद्ध चोटियां स्थित हैं। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल 30090 वर्ग किलोमीटर है। पुराणों में हिमालय को पांच खण्डों में विभाजित किया गया है-

> खण्डा पंच हिमालयस्य कथितः नैपाल कूर्मांचलो
> केदारेऽथ जलंघटोय रूचिरः कश्मीर संज्ञोत्तमः।

हिमालय के ये पांच खण्ड हैं नैपाल, कूर्मांचल (कुमाऊं), केदारखण्ड (गढ़वाल), जालंधर (पंजाब) तथा कश्मीर। गढ़वाल की सीमा पूर्वोत्तर में नन्दाकॉठा पर्वत श्रेणी से आरम्भ होती है। इसके पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, पूरब में काली-शारदा नदियां नैपाल से पृथक करती, अल्मोड़ा जनपद और उत्तर में तिब्बत तथा दक्षिण में शिवालिक, बिजनौर तथा सहारनपुर जनपद हैं। गढ़वाल जनपद में पश्चिमी छोर पर देहरादून जनपद है जिसके पश्चिम में यमुना और पूर्व में गंगा-भागीरथी उपत्यकाएं हैं। देहरादून के ही उत्तर में लघु हिमालय श्रृंखला है जो टिहरी जनपद से मिलती है। यमुना नदी उत्तरकाशी जनपद से निकलकर हिमाचल प्रदेश के कोने पर, सीमा बनाती है। देहरादून में ही जौनसार का इलाका स्थित है। देहरादून का इलाका अधिक मैदानी और उपजाऊ है।

देहरादून के पूर्वी और उत्तरी छोर पर टिहरी गढ़वाल और उत्तरकाशी जिले स्थित हैं। ये दोनों जनपद भागीरथी की उपत्यका में हैं। चमोली और गढ़वाल अलकनन्दा की उपत्यका में स्थित हैं। अलकनन्दा यहां की प्रमुख नदी है। भागीरथी में केदारगंगा जाहनवी (जाड़ गंगा) और भिलंगना का संगम होता है। देवप्रयाग के आगे अलकनन्दा और भागीरथी की संयुक्त धारा गंगा कहलाती है। देवप्रयाग से ऋषिकेश और हरिद्वार पर्यन्त केदारखण्ड गढ़वाल मण्डल के विभिन्न जनपदों के भूभाग स्थित हैं।

---

1. डॉ0 शिव कुमार डबराल, केदारखण्ड गढ़वाल मण्डल

प्राकृतिक स्थिति - पर्वतीय भूभाग होने के कारण धरातलीय विभिन्नता अधिक है। कहीं ऊंची पर्वत श्रेणियां हैं तो कहीं गहरी तंग घाटियां स्थित हैं। यहां ऊंचे पर्वतीय ढालों से गिरने वाली सरिताएं जल प्रपात का रूप धारण कर लेती हैं। प्रायः सारा का सारा भूभाग ऊबड़-खाबड़ तथा पहाड़ी है। केवल नदियों की घाटियों में ही समतल भूभाग मिलते हैं। ये ही भू-भाग कृषि योग्य होते हैं। उच्चवचन की दृष्टि से गढ़वाल को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) महान हिमालय

(2) लघु हिमालय

(3) शिवालिक श्रेणी

महान हिमालय का विस्तार 4800 से 6000 मीटर तक है। इसकी प्रमुख चोटियां नन्दा देवी (7817 मी0), कामेट (7756 मी0), मानापर्वत (7272 मी0), चौखम्बा (1387 मी0) तथा बंदर पूंछ (6317 मीटर) हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक इसी प्रकार की पर्वत श्रृंखलायें हैं। इनकी औसत चौड़ाई लगभग 40 किलोमीटर है। लघु हिमालय का विस्तार 1200 से 4800 मीटर तक है। अधिकांश अधिवासीय क्षेत्र, इसी भूभाग में स्थित हैं। यहां हिमालय की अपेक्षा वनस्पति अधिक है। इसकी औसत चौड़ाई 75 किलोमीटर है। शिवालिक का विस्तार 1200 मीटर तक है। इसके उत्तरी ढालों पर वनस्पति की अधिकता है। दक्षिणी ढालों में उच्च भागों की अपेक्षा वर्षा अधिक मात्रा में होती है।[1]

भूमि संरचना की दृष्टि से गढ़वाल उत्तर से दक्षिण तक पर्वत श्रृंखलाओं का समूह है। इन श्रृंखलाओं के दक्षिण छोर पर शिवालिक समूह की शैली पाई जाती है जो मुख्यतः बालू की चट्टानें हैं। शिवालिक श्रेणी के उत्तर में क्रोल समूह की चट्टानें हैं, ये मुख्यतः चूने की चट्टाने हैं जो उत्तर में अतिप्राचीन काल की चट्टानों से गढ़वाल भ्रंस्ट द्वारा पृथक हैं। धरातल की दृष्टि से हम गढ़वाल को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं -

(1) सर्वोच्च हिमालय क्षेत्र

(2) पर्वतीय क्षेत्र

---

1. श्री राजेन्द्र भण्डारी का लेख

(3) नदी घाटी क्षेत्र

(4) भाबर का मैदानी क्षेत्र

(5) शिवालिक पर्वत श्रृंखलाएं

सर्वोच्च हिमालय क्षेत्र में समुद्र तल से 10 हजार फुट से 26660 फुट तक के ऊंचे हिमालयी पर्वत आते हैं। 15000 फुट तक के क्षेत्र में मखमली घास के मैदान मिलते हैं। इस ऊंचाई में गढ़वाल की अनेक फूलों की घाटियां हैं। यहां अनेक हिमनद और ताल हैं। इस क्षेत्र में अनेक रमणीक और आकर्षक स्थल हैं। श्री केदारनाथ, श्री बदरीनाथ, गंगोत्री और यमनोत्री इसी ऊंचाई और इससे अधिक ऊंचाई पर स्थित हैं। पर्वतीय क्षेत्र प्रायः अधिवासीय क्षेत्र हैं। यहां लोग खेती करते हैं। सीढ़ीनुमा खेतों पर यहां बागवानी पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। नदी घाटी क्षेत्र को हिमालय से निकलने वाली नदियों ने काट-छांट कर सपाट बना दिया है। इससे यहां की घाटियां चट्टानी, संकरी और गहरी हैं। घाटियों का क्षेत्र प्रायः मैदानी है। कृषि यहां अधिक होती है तथा जनसंख्या भी प्रायः सर्वाधिक है। भाबर का मैदानी क्षेत्र गढ़वाल के दक्षिणी भाग की एक सकरी पट्टी है। यह क्षेत्र गढ़वाल में लगभग 130 मील लम्बा है तथा इसकी चौड़ाई 1 से 5 मील तक है। यहां घने जंगल हैं। जमीन उपजाऊ है। इसलिए यहां अब आबादी बढ़ रही है। लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से यह क्षेत्र उपयुक्त नहीं है। शिवालिक पर्वत श्रृंखला छोटे-छोटे पहाड़ों की है। भूमि यहां की उपजाऊ है और इस पर प्रायः खेती होती है।[1]

ऐतिहासिक परिचय-

हिमालय का यह केदारखण्ड क्षेत्र विविध सांस्कृतिक क्रान्तियों का केन्द्र बिन्दु रहा है। इसे तपोभूमि, हिमवंत, बदरिकाश्रम, उत्तराखण्ड और ब्रह्मावर्त तथा केदारखण्ड कहा गया है। आज यद्यपि इस क्षेत्र का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है फिर भी वेद, पुराण और महाभारत से उपलब्ध विवरण केदारखण्ड गढ़वाल के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का तारतम्य जोड़ने में सक्षम हैं। हिमालय का यह क्षेत्र ही वैदिक काल से आज तक, भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का मुख्य केन्द्र रहा है और आज भी श्री बदरी नारायण और श्री केदारनाथ भारतीय सनातन संस्कृति के केन्द्रबिन्दु हैं।[2] अति

---

1. डॉ0 शिवानन्द नौटियाल, "गढ़वाल के लोक नृत्य गीत"
2. श्री मोहन लाल बाबुलकर, "हिमालय में मतमतान्तर"

प्राचीन काल में इस केदारखण्ड- गढ़वाल क्षेत्र में यक्ष[1], गन्धर्व[2], कुमाण्ड[3] और नाग[4] जातियों की सृष्टि मिलती है। इन जातियों में कुबेर यक्षों के, धृतराष्ट्र गन्धर्वों के, विरूढक कुमाण्ड के, तथा विरूपाक्ष नागों के अधिपति थे। ये चारों देवताओं के रूप में भी पूजित थे। महाभारत काल में केदारखण्ड के इस क्षेत्र में तीन महा शक्तियों का आस्तित्व मिलता है-

(1) राजा सुबाहू
(2) राजा विराट
(3) राजा बाणासुर

राजा सुबाहु पुलिन्द, किरात तथा तंगण जाति के शासक थे। राजा विराट का राज्य यमुना घाटी में था। बाणासुर के राज्य की कल्पना मंदाकिनी घाटी से हिमालय के उस पार तक की गई है। यक्ष, गन्धर्व, कुमाण्ड, नाग और कोलों के बाद किरात जाति का इस क्षेत्र पर लम्बे समय तक अधिकार रहा। किरातों की संख्या इस युग में इतनी अधिक थी कि किरातों के पश्चात खसों द्वारा केदारखण्ड पर पूर्ण अधिकार जमाने के पहले और बाद में, इस केदारखण्ड- गढ़वाल को "किरात मण्डले" नाम से पुकारा जाता था। किरातों के पश्चात् खसों ने इस क्षेत्र के राजनीतिक दृष्टि से, छोटे-छोटे किलों (गढ़ों) के रूप में सुदृढ़ किया। इस प्रकार किरातों के पश्चात खस जाति का इस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव बढ़ा और इनकी अधिक संख्या के कारण ही इस सम्पूर्ण केदार क्षेत्र को "खस-मण्डले" के नाम से पुकारा जाने लगा। समयान्तर में इस क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण नैपाल से कश्मीर तक आर्य जाति के लोगों ने पुनः प्रवेश किया। केदारखण्ड में आर्य राजपूतों ने धीरे-धीरे अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया और अन्ततः आर्य जाति के लोग पूरी तरह इस क्षेत्र में छा गये।

---

1. श्री मोहन लाल बाबुलकर, ' हिमालय में मतमतान्तर'
2. वही।
3. वही।
4. वही।

ऐतिहासिक पदृिश्य से स्पष्ट है कि अशोक के राज्य काल में इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव था। बौद्धों के प्रभाव को मिटाने और सनातन धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए स्वामी शंकराचार्य को बदरिकाश्रम की यात्रा करनी पड़ी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने हिमालय की किरात जाति को अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया था।[1] इस तथ्य की पुष्टि जैन ग्रन्थों से भी होती है।[2] चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य सीमान्त तक फैला था। गंगा और यमुना की उपत्यका उसके अधिकार में थी। मेगस्थनीज ने भी पर्वतों और उनके निवासियों का वर्णन किया है। दुंदुभिसर बौद्ध भिक्षु को हिमालय में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा गया था।[3] कालसी का शिलालेख इसका सुप्रमाण है। गढ़वाल में कुणिदों के सिक्के तीसरी व चौथी सदी के मिले हैं।

गुप्तों के बाद गढ़वाल में नागवंशीय राजाओं का अधिकार हो गया था जिसे सर्ववर्मन ने हस्तगत कर लिया था। हर्ष के काल में गढ़वाल उसके शासन में था। ह्वेनसांग ब्रहमपुर पहुंचा था, इसे कनिंघम गढ़वाल एवं कुमाऊं क्षेत्र मानते हैं। हर्ष वर्द्धन की मृत्यु के पश्चात उसके साम्राज्य के उत्तरी भाग में गढ़वाल भी सम्मिलित था। इसी समय उत्तर भारत में गुर्जर प्रतिहारों पंवारों और चौहान राजपूतों का उदय हुआ। गढ़वाल में कत्यूरी अपना प्रभाव खो चुके थे। कुछ समय तक की अराजकता के पश्चात गढ़वाल में पंवार वंश का आधिपत्य स्थापित हो गया। पंवार वंश का संस्थापक कनकपाल था। वह धारा नगरी अथवा मालवा की यात्रा के लिए आया था और चांदपुर गढ़ के राजा की पुत्री के साथ विवाह करके, राजा बन बैठा था।

गढ़वाल में पंवार वंशीय राजा महा प्रतापी और शूरवीर थे। इनके राज्य काल में केदारखण्ड की प्राचीन सीमा सुरक्षित तो रही ही, इन्होंने इसका विस्तार भी किया। ऐसे ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर मुसलमान बादशाहों का गढ़वाल से सम्बन्ध सिद्ध होता है। इल्तुतमिस और बलबन ने गढ़वाल पर आक्रमण किये। मुगलों के शासन के बाद स्थिति में अंतर आया। इनके सम्बन्ध कटु नहीं थे बल्कि आपस में सद्भाव भी था। गढ़वाल के इतिहास में दूसरी बड़ी घटना, दो बार का गोरखा आक्रमण था। सन् 1804 में गढ़वाल पूरी तरह गोरखाओं के अधीन हो गया। कालान्तर में

---

1. चाणक्य, मुद्राराक्षस
2. परिशिष्ट पर्वत
3. साँची अभिलेख

अंग्रेज गढ़वाल को गोरखाओं से मुक्त करने में सफल हुए। इसके फलस्वरूप गढ़वाल का बटवारा हो गया। टिहरी में पंवार वंश का राज्य पूर्ववत् चलता रहा लेकिन अलकनन्दा के उस पार का हिस्सा अंग्रेजों को पुरस्कार के रूप में मिल गया जिसे उस समय ब्रिटिश गढ़वाल कहा जाता था। तीसरी बड़ी घटना में टिहरी राज्य शाही से टिहरी की जनता को मुक्ति मिली। इस तरह टिहरी राज्य का सन् 1948 में उत्तर प्रदेश के एक जिले के रूप में विलीनीकरण हुआ।

लोग और विभिन्न जातियाँ

केदारखण्ड के ऐतिहासिक राजवंश के पूर्व हम देख चुके हैं कि इस क्षेत्र में यक्ष, गंधर्व, नाग, कोल, किरात तथा खस जाति और आर्य जाति, विविध संस्कृतियों का समागम हुआ। यक्ष, गंधर्व, कोल-किरात के वंशज आज यहां की मूल निवासी जातियां हैं। खस एक महाजाति के रूप में इस क्षेत्र पर छायी है। खसों में आर्यों की भांति राजपूत और ब्राह्मण जाति के लोग थे। सामान्यतः ये जातियां मानी जाती हैं, लेकिन वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। ये उल्लिखित विविध संस्कृति और सांस्कृतिक परम्परायें हैं, जिन्होंने केदारखण्ड के इस क्षेत्र को प्रभावित किया था। एक के बाद दूसरी संस्कृति के लोगों ने एक दूसरे से कुछ लिया तो कुछ दिया भी। यही क्रम यक्ष, गंधर्व, नाग, कोल-किरात और खस तथा आर्य संस्कृति के लोगों के साथ चलता रहा। इस लम्बे सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रतिफल यह हुआ कि विविध प्रकार की संस्कृतियों का मिला-जुला रूप सनातन संस्कृति के साथ चलता रहा जो वर्णित महाजातियों विशेष रूप से किरात और खस संस्कृतियों की महानतम देन है। आर्य संस्कृति के लोग इस संस्कृति, जीवन दर्शन और आचार-विचार से कम प्रभावित हैं, तो भी प्रभावशाली खस महाजाति के नाम पर (जिसने किरात और किरातों के पूर्व फैली संस्कृतियों को आत्मसात कर, एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म दिया) खस संस्कृति प्रचलित है। संदर्भित विश्लेषण का निष्कर्ष यह है कि हिमालय के इस केदारखण्ड में मतमतान्तरों का ऐतिहासिक विश्लेषण निम्नवत् है :-

1- केदारखण्ड की आदिम जातियों की संस्कृति जो
 यक्ष, गंधर्व, नाग तथा कोल-किरातों के वंशज है।

2- खस संस्कृति जो किरातों और किरातों से पूर्व फैली
 संस्कृतियों से पूर्ण प्रभावित खस जाति या खस संस्कृति

के प्रतीक हैं तथा

3- आर्य संस्कृति।

इस क्षेत्र में विविध प्रकार की सांस्कृतिक परम्पराओं वाली जातियों के आक्रमण-प्रति आक्रमणों के कारण एक प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता का जन्म हुआ। इस धार्मिक सहिष्णुता के कारण आक्रमणकारियों ने, विजित जाति के सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्कारों को भी समयान्तर में स्वीकार कर लिया। किरातों के बाद इस क्षेत्र में आने वाली खस महाजाति (खसों) ने राजनीतिक प्रभाव के साथ धार्मिक रूप से भी यहां की जातियों को अपने विश्वासों को मानने के लिए विवश किया साथ ही उन्होंने किरातों के धार्मिक विश्वासों को भी ग्रहण कर लिया। इस प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का रूप, आर्यों के आने तक रहा। सामान्य रूप में अपनी इस धार्मिक सहिष्णुता के कारण यहां के निवासी खसों से लेकर सनातन धर्म के सभी देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं। सभी को इष्टदेव की तरह महत्व देते हैं। यह धार्मिक सहिष्णुता मन्दिरों में स्थापित अपने इष्टदेव के साथ अन्य मतावलम्बियों के देवताओं की मूर्तियों की स्थापना द्वारा दर्शित की गई है। शिव शक्ति और वैष्णव मन्दिरों में ग्राम देवताओं के साथ खसों के देवी-देवता भी पूजे जाते हैं।

धार्मिक स्थिति की विशेषताएँ

आर्य जाति के इस भूभाग पर अपना राजनीतिक प्रभाव जमाने और शासक जाति बनने तक का इतिहास शताब्दियों पहले का इतिहास है। यह लम्बा समय विविध संस्कृतियों के उत्थान और पतन का इतिहास है। यक्षों, गन्धर्वों नागों, कोलों, और किरातों की अपनी संस्कृति थी। इस सांस्कृतिक संघर्ष के बीच एक बार किरातों ने विजेता के रूप में, इस क्षेत्र के वासियों को नई संस्कृति दी तथा बहुत . कुछ इन सांस्कृतिक परिवर्तनों से लिया। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान से एक दूसरे के जीवन-दर्शन और धर्मगत विचारों में परिवर्तन आये, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। किरातों के पश्चात् खस महाजाति अपनी सांस्कृतिक विरासत और प्रशासनिक क्षमता को लेकर इस क्षेत्र में आयी, और पहली बार उन्होंने केदारखण्ड को प्रशासनिक रूप से सुदृढ़ किया। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग, कोल और किरातों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के पश्चात् खस संस्कृति का यह सबसे प्रभावकारी हमला था, जिसने सम्पूर्ण

केदारखण्ड की आदि संस्कृतियों को प्रभावित कर, उसे आत्मसात कर लिया। इसके साथ ही खसों ने स्थानीय लोगों से परस्पर सम्बन्ध भी स्थापित किये। फलस्वरूप इन संस्कृतियों का एक ऐसा मिला-जुला रूप खसों के आत्मसातीकरण के कारण विकसित हुआ जो इस महाजाति के नाम पर खस संस्कृति के नाम से विख्यात मिलता है। यह खस संस्कृति का मिला-जुला रूप है। इस खस संस्कृति के पीछे यक्षों, गन्धर्वों किन्नरों, नागों तथा कोल-किरातों का जीवन दर्शन, धर्म, रीति-रिवाज, हास-परिहास, धार्मिक-विश्वासों, देवी-देवता तथा संस्कारों का व्यक्त तो भी अव्यक्त रूप है। तात्पर्य यह कि खसों ने विजितों से जो लिया तथा उनको जो धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं दीं वे ही, इस महाजाति के नाम पर केदारखण्ड में, खसों की बहुलता के कारण, खस संस्कृति के नाम से जानी जाती हैं। इस केदार खण्ड क्षेत्र में शैव, शाक्त, वैष्णव, खस तथा नाथ-पंथ सभी मतमतान्तरों का समन्वित रूप प्रचलित है। ग्राम देवताओं से लेकर सनातन धर्मावलियों के सभी देवों की यहां पूजा प्रतिष्ठा की गई है। यहां परम शैव हैं तो, परमशक्ति और परम वैष्णव भी हैं। खस संस्कृति, जीवन-दर्शन और देवी-देवताओं का इन सभी पर किसी न किसी रूप में स्पष्ट प्रभाव है। केदारखण्ड की आदिम जातियों (आदिवासी-केदारखण्ड) की संस्कृति अपनी विशिष्ट परम्पराओं को लिए आज भी जीवंत है। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी मतमतान्तरों को यहां समान रूप से पूजा गया है। शैवों के शिव के नाम से ही यह क्षेत्र केदारखण्ड के नाम से जाना जाता है। शाक्तों के सिद्धपीठों को इस हिमालय में भरमार है तो नाथों का यहां अपना अलग ही रंग है और खस मत तो अपनी प्राचीनता की दृष्टि से सबसे सशक्त और केदारखण्ड के बहुसंख्यक लोगों के जीवन का मार्गदर्शक होने का ही दावा करता है। लेकिन इस क्षेत्र के "खस मण्डले" कहलाये जाने पर भी केदारखण्ड में नारायणीय मत आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ मत रहा है और आज भी है। आज श्री बदरीनाथ (नारायण) सनातन धर्म के श्रेष्ठ देवता के रूप में सारे भारत द्वारा पूजे जाते हैं। केदारखण्ड के ऐतिहासिक राजवंश ने परमशाक्त होने पर भी श्री बदरीनाथ (नारायण) को इष्ट देवता के रूप में पूजा है। उस प्राचीन युग से लेकर आज तक श्री बदरीनाथ केदारखण्ड के इष्टदेव हैं और नारायणीयमत श्रेष्ठ धर्म के रूप में पूजित होता आया है। नारायणीयमत की तुलना में शाक्त, शैव और नाथमत जाति धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुए जबकि नारायणी मत सनातन धर्मावलम्बी भारतीयों के जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक के रूप में सम्पूर्ण भारतीय जनता

का मार्ग-दर्शन करता है और व्यक्ति के स्थान पर राष्ट्रधर्म के रूप में पूजित है। शैवों का हिमालय के इस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव होने पर भी, शैवमत यहां राष्ट्रीय स्वरूप नहीं ले सका। यही स्थिति शाक्त सिद्धपीठें और नाथ पंथियों की है। खस संस्कृति का प्रभाव अन्य संस्कृतियों की तुलना में अधिक व्यापक है। इसके स्वरूप में अपने आदि विश्वासों की मौलिकता है। अतः केदारखण्ड गढ़वाल नारायण के सनातन स्वरूप का प्रतीक चिह्न है, नारायणमय हिमालय है, और उत्तर में सनातन संस्कृति का जीवंत स्वरूप है।[1]

---

1. 'हिमालय में मतमतान्तर,' श्री मोहनलाल बाबुलकर

लोकसाहित्य-खण्ड

अध्याय - 2

गढ़वाल का लोक साहित्य

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।[1] इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है जिसका लट् लकार में अन्य पुरूष एक बचन का रूप 'लोकते' हैं। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। अतः वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलायेगा। 'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में लोक शब्द के .. लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[2] वैदिक ऋषि कहता है कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत के लोगों की रक्षा करता है ।

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरूष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों ही अर्थों में किया गया है।[3]

उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में यथार्थ ही कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से जान सकता है ?[4]

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः ।
क एतद अस्य पुनरीहतो अथात् ।।

महावैयाकरण्या पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे ठम् प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा 'सार्वलौकिक' शब्दों की निष्पत्ति की है।[5]

---

1. सिद्धान्त कौमुदी, पृ0 427 (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1989)
2. ऋ0वे0 3/53/12
3. वही, 20/90/24
4. जे0उ0ब्रा0 3/28
5. लोक सर्वलोकावत्र । 5/2/44
   तत्र विदित इत्यर्थे। लौकिकः/अनुशतिका दित्वा दुभयवदवृद्धिः/सार्वलौकिकः ।

'सर्वत्र विभाषा गोः 6/1/223 सूत्र की वृत्ति को देखने से पता चलता है कि लोक और वेद में एड.न्त गो शब्द को पद के अन्त में विकल्प से प्रकृति भाव होता है।[1] इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की निष्पत्ति बताते हुए लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न प्रकार का समझना चाहिए।[2] वररूचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।[3] इन्होंने भी अनेक स्थानों पर इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि अमुक शब्द का लोक में अमुक रूप में व्यवहार होता है। महाभाष्यकार पतंजलि ने लोक में प्रचलित गौः शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में किया है।[4]

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्त्री संहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ (महाभारत) अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आंखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।[5]

महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोकयात्रा का उल्लेख किया गया है।[6] इसी पर्व में एक अन्य स्थान पर पुण्य कार्य करने वाले लोक का वर्णन उपलब्ध होता है।[7] महर्षि व्यास ने लिखा है:

'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' अथात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान सकता है।

---

1. बहुलं छंदसि 2/4/39 तथा 2/4/73, 2/4/73 सूत्रों की व्याख्या देखिए ।
2. लोकस्य वृणे। सि0कौ0 पृ0 267/6 वार्तिक सूची
3. महाभारत, आ0पृ0 2/84
4. पराणं चैन दित्यान्तं कल्पानां युद्ध कौशलम्। वाक्य जाति विशेषाश्र लोक यात्राक्रमा यः। आ0प0 1/69
5. गीता 3/3, 3/22, 3/24
6. गीता 3/20
7. डा0 द्विवेदी : 'जनपद' वर्ष । अंक । पृ0 65

भगवत्गीता में 'लोक' तथा 'लोकसंग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है[1] भगवान श्रीकृष्ण ने 'लोकसंग्रह' पर बड़ा बल दिया है।

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।[2] विश्व भारत, शान्ति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डा0 कुंज बिहारी दास ने लोक गीतों की परिभाषा बतलाते हुए 'लोक' शब्द की भी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है - लोकगीत लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते थे।

जन साहित्य :

'लोक' का पर्यायवाची शब्द 'जन' माना गया है। अनेक विद्वानों ने इस शब्द का पर्याय के रूप में प्रयोग किया है।[3] डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने लेखन में जनपदीय संस्कृति तथा जनपदीय साहित्य का प्रयोग किया है। डा0 अग्रवाल ने 'जन' का प्रयोग ग्राम के अर्थ में किया है। उन्होंने गांव के साहित्य सेवियों को ग्रामीण के स्थान पर जनपदीय लेखक कहना पसन्द किया है।[4] कतिपय विद्वानों ने लोक साहित्य और जनसाहित्य की प्राचीनता पर विचार करते हुये लोक शब्द को अधिक महत्व दिया है। उन विद्वानों में डा0 सत्येन्द्र प्रमुख हैं जिन्होंने लोक को व्यापक बोध कराने वाला तथा

---

1. जनगीत अथवा जनपदीय साहित्य एवं जनपदीय साहित्य परिषद इत्यादि
2. सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ-6
3. हिन्दी साहित्य कोश
4. कुमाऊँनी जनसाहित्य का अध्ययन

जनपद शब्द को संकीर्णता का द्योतक माना है।[1] डा० त्रिलोचन पाण्डे लोक शब्द को भ्रामक तथा जन शब्द को उपयुक्त मानते हैं।[2]कोन उचित है इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि 'जनपद शब्द' पुरातन प्रयोग पर आधारित है तो 'लोक' शब्द भी प्राचीनकाल से प्रयोग होता आया है। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि इनमें कोई विरोधक नही है। डा० श्याम परमार के इस कथन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है- हिन्दी का लोक शब्द फोक का पर्यायवाची है। 'जन' या 'ग्राम' यद्यपि फोक के अर्थ में प्रयोग होते हैं तथापि अपने सीमित क्षेत्र के कारण उन्हें लोक की व्यापकता के अनुरूप नहीं मानना चाहिए। 'जन' प्राचीन शब्द है। संस्कृत एवं पालि ग्रंथों में मानव समाज का बोध जन से ही कराया गया है। इस दृष्टि से लोक और जन में पर्याप्त सप्राणता है। पर प्रयोग और परम्परा के प्रचार में आधुनिक 'फोक' की अनुरूपता के लिए लोक ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिम्बात्मक है। न केवल इतना ही, बल्कि पूर्व संस्कारों के कारण वह 'फोक' से कहीं अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करता है।[4]

लोक वार्ता :

हिन्दी में 'फोकलोर' के लिए लोकवार्ता शब्द प्रचलित है। ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में 'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति और विषय व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 1886 में डब्ल्यु०जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा गूढ़ग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था। शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं और आज लोकवार्ता के क्षेत्र में वह भी आ जाता है, जिसे आरम्भ की परिभाषा में जन बूझकर बाहर रखा गया था। यथा लोकप्रिय कलाएँ तथा शिल्प दूसरे शब्दों में भौतिक और बौद्धिक संस्कृति भी। मुख्यत: टेलर, फ्रेजर तथा अन्य वैज्ञानिकों के उद्योगों के परिणामस्वरूप जिन्होंने यूरोपीय जन-निर्जन के गूढ़ग्रहों और परम्परागत रीति-रिवाजों की व्याख्या करने के लिए तथा उन्हें समझने के लिए निम्नस्तर की संस्कृति में मिलने वाले साम्य के उपयोग की ओर विशेष ध्यान दिया।...साधारण प्रयोग में 'फोकलोर' की सीमा को संकुचित अर्थ में, सभ्य समाज के पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है। फोकलोर (लोकवार्ता) का विषय लोक का समस्त व्यक्त-अव्यक्त जीवन है, जिसमें उसकी

---

1. मालवी लोक साहित्य पृष्ठ-3

सभी प्रकार की अभिव्यक्तियां धार्मिक, बौद्धिक, नैतिक तथा सामाजिक का ज्ञान हो जाता है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। जनता जो कुछ कहती और सुनती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है, वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है, उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है। लोकवार्ता शब्द को ढूँढ़ने वाले डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि लोकवार्ता एक जीवित शाखा है -- लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाले जन-जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति - इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है। एनसाइक्लोपीड़िया ब्रिटानिका में 'फोकडान्सिंग' पर लिखी गयी टिप्पणी में 'फोक' की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि आदिम जाति के वे सभी व्यक्ति, जिनके मेल से वह समाज बना है 'फोक' (लोक) है। और इस शब्द की यदि प्रशस्त दृष्टिकोण से व्याख्या की जाय तो इसका प्रयोग समस्त राष्ट्र के लिए भी किया जा सकता है। साधारण तौर पर पाश्यात्य सभ्यता और संस्कृति में इसका उपयोग संकुचित अर्थ में ऐसे लोगों के लिए किया जाता है जो कि नगर-संस्कृति की धाराओं तथा विधिवत शिक्षा से बाहर पड़ जाते हैं। जो अपढ़ अथवा कम पढ़े लिखे हैं और गांवों अथवा जनपदों में रहते हैं। स्पष्ट है कि 'फोकलोर' (लोकवार्ता) का विषय लोक का जीवन है और इसका विस्तार विस्तृत है।

लोकवार्ता के विविध आयाम :

लोक की समस्त अभिव्यक्तियां-गीत, कथायें, गाथायें, कहावतें, पहेलियां-लोकवार्ता का एक अंग है। क्योंकि प्रकृति,जड़-चेतन जगत के सम्बन्ध, स्वभाव, भूत-प्रेत, जादू-टोना, शकुन, रोग, आदिम असभ्य विश्वास, रीति-रिवाज, अनुष्ठान, धर्म, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक संगठन, इतिहास तथा बौद्धिक प्रदर्शन सभी लोकवार्ता के अंग हैं। और ये सभी लोकवार्ता के अन्तगत आते हैं। प्रकृति व्यापारों से लेकर लोक धरातल की अभिव्यक्तियों का इसमें समावेश होता है। लोकवार्ता शब्द की विस्तृत व्याख्या और 'सोफियाबर्न' के विचार के आधार पर कि 'लोक की मानसिक संपन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है, वह सभी इस क्षेत्र में है' हमारा यह मत है कि प्रकृति जिसका कि निकटतम साहचर्य आदि मानव को मिला है और जिसके फलस्वरूप वह सर्व प्रथम प्रभावित हुआ है, अभिव्यक्ति के इस रूप से लेकर आज तक जो

कुछ लोक द्वारा संरक्षित होता हुआ व्यक्त हुआ है, वह सभी लोकवार्ता के अन्तर्गत आता है। चाहे वह प्रकृति के आदि स्वरूप की परम्परायें हो अथवा मौखिक सुरक्षित परम्परागत लोक-साहित्य हो। यद्यपि फोकलोर के लिए लोकवार्ता शब्द के औचित्य के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है, तो भी 'लोकयान, लोकायन शब्दों से उपयुक्त हमें लोकवार्ता शब्द ही लगता है, जैसा कि विभिन्न विद्वानों द्वारा भी इसका उपयोग अंग्रेजी के शब्द 'फोकलोर' के अर्थ में स्वच्छन्दतापूर्वक किया जा चुका है। लेकिन लोक साहित्य और लोकवार्ता का विवेचन करते हुए डा0 सत्येन्द्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि 'ऐसा भी लोक साहित्य होता है, नहीं होता ही है, जो लोकवार्ता नहीं माना जा सकता'। आगे स्पष्ट करते हुए आप लिखते हैं कि 'लोकवार्ता में वही लोक-साहित्य समाविशित होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है।...'इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्ति का कोश कह सकते हैं, इस प्रकार के लोक-साहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके मूल में किसी आदि-भौतिक तत्व का प्रतिबिम्ब है कि आदिम मानव ने सूर्य और अंधकार के संघर्ष को, अथवा सूर्य और उषा के प्रेम को ही विविध रूपों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है, तो उसका यह रूप धर्मगाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य का वह अंश जो रूप में प्रकटतः तो होता है कहानी पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्रकृति व्यापार का वर्णन जो साहित्य स्रष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी है - वह धर्म गाथा कहलाता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन परम्परा से प्राप्त कथा तथा गीत-साहित्य भी लोकसाहित्य कहलाता है। धर्म गाथाओं और लोक साहित्य को भिन्न मानते हुए भी आप आगे लिखते है कि ...धर्म गाथायें भी हैं तो लोक साहित्य ही किन्तु विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथायें धार्मिक अभिप्राय से सम्बन्धित हो गई हैं। अतः लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है। धर्म गाथाओं को लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से बाहर मानते हुए डा0 सत्येन्द्र ने ग्राम साहित्य को भी लोकवार्ता के क्षेत्र से बाहर माना है। आपने लोक साहित्य के चार भाग होने की सम्भावना व्यक्त की है। लोकवार्ता के अन्तर्गत 1- धर्मगाथा, 2- साधारण लोकवार्ता साहित्य तथा लोक साहित्य के अन्तर्गत 3- ग्राम साहित्य और 4- नागरिक साहित्य।

जहां धर्म गाथा को लोक साहित्य से भिन्न मानते हैं, वहां साधारण धर्म गाथा के विकास की सम्भावनाओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आपने उन्हें धर्म गाथाओं की भांति मानव की शैशवावस्था

में ही जन्मी माना है। तदनन्तर उनमें आदि-मानव की धार्मिक आस्था हुयी और वे गाथा लोकवार्ता में लोक साहित्य का रूप ग्रहण करने लगीं। लोक साहित्य के उस स्वरूप के विषय में जो कि धर्म गाथा कहलाता है, जो लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकवार्ता साहित्य में धर्म गाथा साहित्य है और जिसके साथ-साथ ही साधारण लोकवार्ता साहित्य का विकास धार्मिक आस्था के अभाव में हुआ, जिससे भिन्न ग्राम-साहित्य तथा नागरिक साहित्य माना गया है, मूलतः लोक की रचना शक्ति के प्रतिफल हैं। हम उन्हें लोक की बौद्धिक शक्ति से बाहर की वस्तु नहीं कह सकते हैं। लोक की ये सभी अभिव्यक्तियां, जिनमें लोक रचना शक्ति के दर्शन मिलते हैं, लोक साहित्य है, और यह लोक साहित्य लोकवार्ता का अंग है। यह दूसरी बात है कि इन्हें हम अलग-अलग नामों से पुकारें, लेकिन जहां रचना का प्रश्न आता है वहां हम इन्हें लोक से भिन्न और बाहर की वस्तु नहीं कह सकते हैं। जैसा कि देवेन्द्र सत्यार्थी का कथन है कि जनता जो युग-युग से कहती और सुनती आई है अर्थात् मौखिक परम्परा की समूची सामग्री वह सब लोकवार्ता के अन्तर्गत आ जाती है।

लोक साहित्य का उद्गम :

लोक साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक गाथाएं उपलब्ध होती हैं जो उस समय गाई जाती थीं। शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी गाथाएं प्राप्त होती हैं। जिनमें अश्वमेघ यज्ञ करने वाले राजाओं के उदान्त चरित्रों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भारतीय शास्त्रों ने लोक में प्रचलित साहित्य के विभिन्न रूपों की कभी उपेक्षा नहीं की है। नवीन छंद, नवीन गीत पद्धति, नवीन नाट्यरूपक बराबर ही लोकचित्त से छनकर उच्च शास्त्रीय धरातल तक पहुंचते रहे हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र ने लोक प्रचलित नाटकों को भी अपनी विवेचना का विषय बनाया है।

संस्कृत के विशाल कथा साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गुणाढय की बृहत्कथा तथा सोमदेव के कथा सरित्सागर में जिन कथाओं का संकलन हुआ है वे वास्तव में लोक कथाएं ही थीं जो इस देश में विभिन्न प्रदेशों में फैली हुई थीं। कथा सरित्सागर की प्रस्तावना में बताया गया है कि इन कथाओं का मूल वक्ता कोई अभिशप्त गंधर्व था जो शाप वश विंध्यावटी में आ गया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि गुणाढ्य पंडित ने मूल रूप में इन कथाओं को नगर से दूर रहने

वाले ग्रामीण या वन्य लोगों से सुना होगा। मध्ययुग के अनेक श्रेष्ठ प्रकरणों, पंजूकाव्यों और निजंधरी कथाओं का मूल रूप लोक कथानक ही है। इस प्रकार भारतीय साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लोक साहित्य पर आश्रित है।

उपर्युक्त विवरणों से यह सिद्ध होता है कि लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य का मूल अत्यंत प्राचीन है तथा शिष्ट संस्कृति के साथ ही साथ लोक संस्कृति तथा साहित्य की धारा भी इस देश में पुरातन काल से प्रवाहित रही हैं।

लोक साहित्य का कार्य क्षेत्र :

लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोड्श संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्राय: उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं, व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसका प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अत: वाह्यजगत में इन परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है वह लोक गीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निराई, गुड़ाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरूषों के शौर्यपूर्ण कार्यो को गा-गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीररस का संचार करती है।

गाँव के बूढ़े जाड़े के दिनों में आग के पास बैठकर कहानियां सुनाया करते हैं। बूढ़ी दादियां तथा माताएं बच्चों को सुलाने के लिए लोरियां तथा छोटी-छोटी कथाओं का प्रयोग करती हैं। जनमन के अनुरंजन के लिए गांवों में **स्वांग** या नाटक भी खेले जाते हैं जिन्हें देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। ये लोक नाट्य ग्रामीण जनोंकेमनोविनोद के अन्यतम साधन हैं। गांव के लोग अपने दैनिक व्यवहार तथा वार्तालाप में सैकड़ों मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग किया करते हैं। छोटे-छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते हैं। ये सभी गीत तथा कथाएं लोक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा यह स्त्री, पुरूष, बच्चे जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लोक की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक अबाध गति से चल रही है। इसका प्रवाह अक्षुण है तथा कार्य क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है।

भारत में किये गये कार्य का उल्लेख :

भारतीय लोक साहित्य के प्रारंभिक अनुसंधान कर्ताओं में दो प्रकार के व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं - ﴾1﴿ अंगरेज सिविलयन तथा ﴾2﴿ ईसाई मिशनरी । ये इस देश पर शासन करने के लिए आए थे और ईसाई अपने धर्म प्रचार के हेतु दोनों इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि जब तक इस देश की विभिन्न भाषा तथा साहित्यों का सम्यक अध्ययन नहीं किया जाता तब तक जनता से संपर्क स्थापित नहीं हो सकता। धर्म प्रचार के लिए साधारण जनता की भाषा और साहित्य को जानना अत्यधिक आवश्यक था। अतः इसी समान प्रेरणा से प्रेरित होकर इन दोनों श्रेणियों के लोगों ने भारतीय इतिहास के शोध के साथ ही भारतीय भाषा तथा साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया।

भारतीय लोक साहित्य के अध्ययन का सर्वप्रथम सूत्रपात करने वाले जो अंगरेज सिविलियन थे उनके कार्यो की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। कर्नल जेम्स टाड ने इस पुनीत कार्य का श्री गणेश किया था। टाड राजस्थान के अनेक देशी राज्यों में रेजिडेंट था। अतः उसे वहां के स्थानीय इतिहास, रस्म-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा आदि के अध्ययन का अधिक अवसर प्राप्त हुआ था। टाड ने अनेक वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात् 'ऐनल्स ऐंड ऐंटिक्वीटीज आॅव राजस्थान' नामक अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सन् 1829 ई. में प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में राजस्थान के विभिन्न देशी राज्यों का इतिहास सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही विद्वान लेखक ने राजपूतों की सामाजिक अवस्था, रहन-सहन आमोद-प्रमोद, वेशभूषा आदि विषयों पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है। यह सत्य है कि इसमें लोक गीतों या कथाओं का संग्रह नहीं है, परन्तु कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ के निर्माण में राजस्थान में प्रचलित लोक

गाथाओं वीर कथाओं तथा चारणों द्वारा गेय गीतों से बड़ी सहायता ली है। भारतीय लोक संस्कृति के अध्ययन का प्रथम प्रयास टाड ने अपने उक्त ग्रंथ में किया है, इस कारण इस पुस्तक का विशेष महत्व है।

भारतीय लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति के संग्रह तथा संरक्षण में विलियम क्रुक का योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। क्रुक एक अंगरेज सिविलियन थे जो बहुत दिनों तक मिर्जापुर के क्लेक्टर थे। इन्होंने उत्तर प्रदेश के लोक गीतों का प्रचुर संग्रह तथा भारतीय लोक संस्कृति का गंभीर अध्ययन किया। विलियम क्रुक ने सन् 1891 ई0 में भारतीय लोक साहित्य तथा संस्कृति को प्रकाश में लाने के लिए 'नार्थ इंडियन नोट्स ऐंड क्वेरीज' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया जिसने लोक साहित्य की बड़ी सेवा की। इस पत्रिका के पृष्ठों में लोक गीतों तथा लोक कथाओं का बहुमूल्य संग्रह सुरक्षित है तथा लोक संस्कृति की अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। यह पत्रिका पाँच-छः वर्षों तक प्रकाशित होती रही। सन् 1896 ई0 में क्रुक ने पापुलर रिलिजन ऐंड फोकलोर ऑव नार्दन इंडिया' नामक विद्वतापूर्ण ग्रंथ की रचना की। इसमें जन साधारण के अंधविश्वास, टोने-टोटके, नजर लगने तथा ग्राम देवता, कुलदेवता, भूत-प्रेत, रीति-रिवाज आदि विषयों का बड़ा ही विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में भोजपुरी प्रदेश की प्रथाओं का वर्णन विशेष रूप से उपलब्ध होता है। क्रुक ने उत्तर प्रदेश की विभिन्न जातियों का विवरण चार भागों में 'कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आव् नार्थवेस्ट प्रोविंसेस' नाम से प्रकाशित किया है।

पं0 राम गरीब चौबे ने, जो हिन्दी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे, विलियम क्रुक के आदेश तथा प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के लोग गीतों का संग्रह किया था जिसे उन्होंने सन् 1893 ई0 में नार्थ इंडियन नोट्स ऐंड क्वेरीज नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। इनके द्वारा संग्रहीत गीतों में हरदौल के गीत, कोयल के गीत तथा शिशु गीत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने इंडियन ऐंटिक्वेरी में भी स्वसंकलित अनेक लोकगीत छपवाए हैं।

जे0डी0 ऐंडरसन ने सन् 1895 ई0 के आसाम राज्य की कछारी जाति के लोगों की लोक कथाओं तथा शिशु गीतों का संकलन 'क्लेक्शन आव कछारी फोकटेल्स ऐंड राइम्स' प्रस्तुत किया।

आर0एम0 लाफ्रेनैस ने सन् 1899 में 'सम सॉंग्स आव् दि पोर्चुगीज इंडियन्स' शीर्षक लेख प्रकाशित किया जिसमें गोवा निवासी भारतीयों के लोक गीतों का संकलन है।[1]

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते भारत के विभिन्न प्रांतों के लोकगीतों तथा कथाओं के कुछ संग्रह प्रकाश में आ गए। परन्तु यह संकलन कार्य अभी तक बहुत अल्प हुआ था। सिविलियन लोगों तथा मिशनरियों ने इस कार्य को आगे भी जारी रखा।

स्विनर्टन ने पंजाबी लोक कथाओं का संग्रह बड़े परिश्रम से किया है। इनकी 'रोमैंटिक टेल्स फ्राम पंजाब' का प्रकाशन सन् 1903 ई0 में हुआ। इस संकलन में राजा रसालू की सुप्रसिद्ध कथा का संग्रह किया गया है। जिसका प्रचार अन्य प्रान्तों में भी पाया जाता है।

बिहार के श्री शरच्चंद्र राय का कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। वास्तव में श्री राय लोक साहित्य-शास्त्री (फोकलोरिस्ट) नहीं प्रत्युत मानव विज्ञान शास्त्री (एंथ्रोपालोजिस्ट) थे। इन्होंने बिहार की मुंडा, उरॉंव, संथाल, बिरहोर आदि आदिम जातियों का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण तथा गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनकी सबसे प्रथम पुस्तक 'दि मुंडाज ऐंड देयर कंट्री' है जो सन् 1912 ई0 में प्रकाशित हुई थी। इसमें बिहार की मुंडा जाति के लोगों की सामाजिक व्यवस्था का सुंदर विवरण प्रस्तुत किया गया है।

गुजरात में लोक साहित्य की एकांत साधना में अपना समस्त जीवन खपा देने वाले स्वनामधन्य श्री झवेर चंद मेधाणी के कार्यो की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है। श्री मेधाणी ने गुजराती लोक साहित्य की जो सेवा की है, वह उन्हें अमरत्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। इन्होंने गुजराती लोगगीतों, लोक कथाओं, शिशु गीतों, वीरगाथाओं आदि सभी का विशाल संग्रह किया है।

20वीं शताब्दी के तृतीय दशक में पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों के संग्रह का प्रशंसनीय कार्य प्रारम्भ किया। इन्होंने बड़े श्रम से भारत के विभिन्न प्रान्तों की अनेक वर्षो तक यात्रा करके कई हजार लोकगीतों का संकलन किया। सन् 1929 ई0 में इन्होंने कविता कोमुदी (भाग-5) ग्राम गीत का प्रकाशन किया जिसमें उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत है। त्रिपाठी जी हिन्दी लोकगीतों के संग्रह कर्ताओं के सेनानी एवं अग्रणी हैं। इन्होंने 'हमारा ग्राम साहित्य' नामक पुस्तक

---

1. इंडियन ऐंटिक्वेरी, भाग 30, पृ0 400-6

भी लिखी है जिसमें लोकगीतों, कहावतों तथा मुहावरों का संग्रह है।

लोकगीतों के संकलन कर्ताओं में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। इन्होंने भारत, वर्मा, लंका आदि देशों में घूम-घूम कर लोकगीतों का संग्रह किया है। अपने जीवन के अमूल्य बीस वर्ष इन्होंने इस कार्य में लगाए हैं तथा लगभग तीन लाख लोकगीतों का संकलन किया है। सत्यार्थी जी ने लोक साहित्य संबंधी लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं। जिसमें 'बेला फूले आधी रात', 'धरती गाती है', 'बाजत आवे ढ़ोल' तथा 'धीरे बहो गंगा' अधिक प्रसिद्ध हैं।

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल तथा पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी ने लोक साहित्य के अध्ययन को बड़ी प्रगति प्रदान की है। सन् 1944 में चतुर्वेदी जी की प्रेरणा तथा प्रयास से ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ में 'लोकवार्ता परिषद' की स्थापना हुई।

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोक साहित्य के प्रेमियों को सदा प्रोत्साहित किया है। आपके 'पृथ्वी पुत्र' नामक ग्रंथ में 'जनपद कल्याणी योजना' का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। आपके तथा अन्य विद्वानों के उद्योग से मथुरा में 'ब्रज साहित्य-मंडल' की स्थापना हुई है। लोक साहित्य संबंधी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन कर इस संस्थान ने ब्रज साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है।

मध्य पहाड़ी की गढ़वाली बोली के लोक साहित्य पर भी श्रीयुत एटकिंसन महोदय के साथ, गढ़वाल के अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन विद्वानों में स्वर्गीय श्री तारादत्त गैरोला और पादरी मिस्टर ओकले साहब,[1] श्री आत्मा राम गैरोला, श्री गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल, श्री यमुनादत्त वैष्णव[2], श्री शिव नारायण सिंह विष्ट,[3]श्री भजनसिंह,[4] श्री नरेन्द्र सिंह भण्डारी,[5]डा0 गोविन्द चातक,[6]

---

1. फोकसांग्स ऑव गढ़वाल
2. गढ़वाली पखाणा
3. गढ़-सुम्याल
4. सिंहनाद
5. स्नो बॉल ऑव हिमालय
6. गढ़वाली लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

डा0 जनार्दन प्रसाद काला,[1] डा0 हरिदत्त भट्ट शैलेश[2] श्री अबोध बंधु बहुगुणा, श्री मोहन लाल बाबुलकर,[3] डा0 महावीर प्रसाद लखेड़ा, जन साहित्य परिषद् देहरादून और अब भागीरथी प्रकाशन टिहरी, लोक साहित्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियों के प्रकाशन के साथ, लोक साहित्य के संग्रह, संकलन और सम्वर्द्धन सम्बन्धी कार्य कर रहे है।

हिन्दी भाषा में किये गये कार्य का उल्लेख :

हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों-राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, गढ़वाली आदि में लोक साहित्य संबंधी शोध कार्य बड़ी लगन के साथ हो रहा है। सभी प्रादेशिक क्षेत्र अपनी मौखिक साहित्य सम्पत्ति को संजोकर रखने में तत्पर दिखाई देते हैं। इस दिशा में जितना अधिक तथा ठोस कार्य राजस्थानी में हुआ है उतना हिन्दी की किसी दूसरी बोली में नहीं। राजस्थानी विद्वान अपने राज्य में बहुमूल्य लोक साहित्य का संग्रह तथा प्रकाशन बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से कर रहे हैं। राजस्थान भारती, परम्परा, मरू भारती, लोक कला, वरदा आदि पत्रिकाएं इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। राजस्थानी के पश्चात् दूसरा स्थान भोजपुरी को दिया जा सकता है। अधिकारी विद्वानों ने भोजपुरी के भाषापक्ष तथा लोक साहित्य पक्ष इन दोनों का वैज्ञानिक पद्धति से गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोक गीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ब्रज में भी लोक साहित्य के क्षेत्र में अच्छा कार्य हुआ है जिसका अधिकांश श्रेय ब्रज साहित्य मंडल (मथुरा) को प्राप्त है। हिन्दी के अन्य क्षेत्रों में भी शोध कार्य हो रहा है। हिन्दी की प्रमुख बोलियों में मालवी, निमाड़ी, मागधी, मैथिली तथा कौरवी में प्रचुर साहित्य लिखा गया है और लोक साहित्य के विविध पक्षों पर शोध तथा लोकगीत, गाथाओं, कथाओं तथा लोकोक्तियों एवं पहेलियों के संग्रह और सम्पादन का कार्य हो रहा है।

हिन्दी की पहाड़ी बोली-भाषाओं में भी लोक साहित्य संबंधी कार्य प्रगति पर है। गढ़वाल विश्वविद्यालय के शोध छात्रों द्वारा लोक साहित्य के विविध पक्षों पर शोध प्रबंध लिखकर डी0 फिल् की

---

1. गढवाली लोक साहित्य का अध्ययन
2. गढवाली भाषा और लोक साहित्य
3. गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

उपाधि प्राप्त की गई हैं। मध्य पहाड़ी की उप बोलियों गढ़वाली और कुमाऊँनी में अनवरत शोधकार्य हो रहा है। कुमाऊँनी में डा0 त्रिलोचन पाण्डेय, डा0 मोहन उप्रेती, डा0 के0एन0 जोशी तथा डा0 नारायण दत्त पालीवाल ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। गढ़वाली में डा0 गोविन्द चातक ने जहाँ लोकगीत, गाथाओं और कथाओं का संग्रह कार्य किया है वहाँ श्री मोहन लाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन पुस्तक लिखकर गढ़वाली लोक साहित्य को नयी दिशा दी है। कालान्तर में डा0 गोविन्द चातक का गढ़वाली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन और डा0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' की गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य ने नये लेखकों और अन्वेषकों को आगे काम करने की प्रेरणा दी हैं। डा0 नन्दकिशोर ढौड़ियाल ने 'जागरों' पर विशेष कार्य सम्पादन कर, नवीन तथ्य उद्घाटित किये हैं। राजस्थानी, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, बुंदेलखण्डी में सर्वाधिक काम हुआ है। लेकिन पहाड़ी की बोलियों में किया गया कार्य अन्य की तुलना में सबसे अधिक है, विशेष कर गढवाली और कुमाऊँनी में।

गढ़वाली में किये गये कार्य का उल्लेख :

गढ़वाली लोक साहित्य के विवेचनात्मक और गढ़वाली लोकगीतों के सांस्कृतिक अध्ययन, संस्कारगीतों, प्रबन्ध गीतों, देवी देवताओं के जागरण गीतों तथा गढ़वाली लोकवार्ता-लोक साहित्य की विविध लोकाभिव्यक्तियों को उजागर करने के निमित्त, गढ़वाल के अनेक विद्वानों ने कार्य किया है। समग्र लोक साहित्य का पहली बार विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वालों में शीर्षस्थ नाम श्री मोहनलाल बाबुलकर का है। श्री बाबुलकर ने पहली बार गढ़वाली लोक साहित्य का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है तथा लोक साहित्य का विवेचन प्रस्तुत कर लोक साहित्य के विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक कार्य को आगे बढ़ाया है।[1] लोकवार्ता- लोक साहित्य के समग्र संग्रह और संकलन में डा0 गोविन्द 'चातक' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है। डा0 चातक ने पहली बार लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं लोकोक्तियों तथा पहेलियों का संग्रह किया है।[2] उन्होंने इन लोकगीतों और गाथाओं का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया।[3]

---

1. गढवाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन: श्री मोहनलाल बाबुलकर
2. गढ़वाली लोकगीत : डा0 गोविन्द 'चातक'
3. गढ़वाली लोक गाथाएं : डा0 गोविन्द 'चातक'

इससे गढ़वालियों को गढ़वाली के लोक साहित्य के अध्ययन में, सुविधा तो हुई ही, साथ ही हिन्दी भाषियों में गढ़वाली लोक साहित्य के अध्ययन के प्रति रूचि भी बढ़ी है। डा0 हरिदत्त भट्ट शैलेश का नाम भी गढ़वाली लोक साहित्य और गढ़वाली भाषा के साहित्य के लिए किये गये काम के लिए, उल्लेखनीय है। डा0 शैलेश ने गढ़वाली लोक साहित्य के साथ गढ़वाली भाषा, उसका विकास, व्याकरण और उसके साहित्य पर, विशेष बल दिया है।[1] लोक साहित्य पर श्री तारादत्त गैरोला और श्री ओकले की सबसे पुरानी पुस्तक है।[2] इस पुस्तक में पहली बार गढ़वाली लोकगीता, गाथाएं और कथाओं को संकलित करने का सुप्रयास किया गया है। 'हुड़क्या'[3] श्री बागा ने इन गीतों को गाया है। पुस्तक अंगरेजी भाषा में है। अंगरेजी भाषा में ही श्री नरेन्द्र सिंह भण्डारी ने गढ़वाली लोकगीतों का अनुवाद किया है।[4] इस पुस्तक में गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास देने की उन्होंने चेष्टा की है। गढ़वाल के प्रख्यात लेखक श्री भजनसिंह 'सिंह' ने अपनी विख्यात और बहुचर्चित पुस्तक 'सिंह नाद' में पहली बार लोकगीतों के साथ गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक आगे के लेखकों के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह मार्ग दर्शित करने वाली सिद्ध हुई है।

डा0 गोविन्द 'चातक' के बाद गढ़वाली लोक साहित्य[5] पर श्री जनार्दन प्रसाद काला ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। स्वर्गीय श्री जनार्दन प्रसाद काला का शोध प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित नहीं है। इस ग्रन्थ में गढ़वाली लोक साहित्य पर सूचनाएं दी गई हैं।[6] यह एक अच्छा कार्य हुआ है। डा0 गुणानन्द जुयाल के अन्वेषण का सीधा संबंध लोक साहित्य से नहीं है तो भी गढ़वाली भाषा के

---

1. गढवाली भाषा और उसका साहित्य : डा0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
2. फोकलोर आफ गढ़वाल - श्री तारादत्त गैरोला, श्री ओकले
3. हुड़क पर गीत गाने वाला -हुड़क्या
4. स्नोबाल ऑफ हिमालय
5. गढ़वाली की रवाल्टी उप बोली
   उसके लोकगीत और उसमें अभिव्यक्त लोक संस्कृति - डॉ0 गोविन्द चातक
6. गढ़वाली भाषा और उसका लोक साहित्य - डा0 जनार्दन प्रसाद काला

विश्लेषण के अनुशीलन में लोक साहित्य अछूता नही है।[1] डॉ0 महावीर प्रसाद लखेड़ा ने अपने शोध प्रबन्ध[2] में गढ़वाली लोक साहित्य के विविध अंगों लोक गीतों-गाथाओं-कथाओं-लोकोक्तियों और कहावतों के उद्धरण प्रस्तुत कर गढ़वाली लोक साहित्य की सम्यक विवेचना प्रस्तुत की है। डॉ0 शांति प्रसाद चन्दोला ने नाथ-पंत के हिन्दी कवि[3] शोध प्रबन्ध में नाथ-सिद्धों के साहित्य विशेषकर गढ़वाल के तंत्र-मंत्र साहित्य, गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में नाथ-परम्परा, साहित्य-दर्शन, साधना तथा नाथ वाणिया देकर गढ़वाल के लोक साहित्य पर उनके प्रभाव की विवेचना प्रस्तुत की है। गढ़वाली की शब्द सामर्थ्य पर डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश ने अपना शोध-प्रबन्ध[4] प्रस्तुत किया। ग्रन्थ में भाषा सम्बन्धी उपयोगी सामग्री दी गई है। डॉ0 अचलानन्द जखमोला के शोध-प्रबन्ध का भी यद्यपि सीधा संबंध गढ़वाली भाषा से नहीं है तो भी इसमें पहाड़ी भाषा पर नये ढंग से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।[5] डॉ0 सुधा नौटियाल के शोध प्रबन्ध में मध्य पहाड़ी की बोली गढ़वाली के लोक साहित्य पर प्रचुर सामग्री दी गई है[6] तो डॉ0 राम सिंह रावत ने हिन्दी लोकनाट्य की परम्परा में स्वांग के अन्तर्गत गढ़वाली की लोकधर्मी कला, लोकनाट्य में प्रयुक्त लोक भाषा के उद्धरण देकर, भाषा-रूप पर ध्यानाकर्षित किया है।[7] गढ़वाल और कुमाऊँ की लोक गाथाओं, जिनमें लोक भाषा में मूल गाथाएं दी गई हैं, का डॉ0 प्रयाग दत्त जोशी ने पहली बार संश्लिष्ठ विवेचना प्रस्तुत करने का सुप्रयास किया है।[8] डॉ0 प्रयाग जोशी ने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डॉ0 चतर सिंह रावत ने गढ़वाली साहित्यकारों की हिन्दी कृतियों का मूल्यांकन करते हुए गढ़वाली के साहित्य पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है।[9] पश्चिमी पहाड़ी की उप

---

1. मध्य पहाड़ी भाषा का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध - डॉ0 गुणानन्द जुयाल
2. गढ़वाली भाषा : डॉ0 महावीर प्रसाद लखेड़ा
3. नाथ-पंथ के हिन्दी कवि : डॉ0 शांति प्रसाद चन्दोला
4. गढ़वाली भाषा का अर्थ गौरव : डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश
5. हिन्दी कोश साहित्य का आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन : डॉ0 अचलानन्द
6. हिन्दी क्षेत्र के लोक साहित्य में देवी : डॉ0 सुधा नौटियाल
7. हिन्दी लोकनाट्य की पृष्ठभूमि में स्वांग का अध्ययन : डॉ0 रामसिंह रावत
8. कुमाऊँ और गढ़वाल की लोकगाथाएं : डॉ0 प्रयाग दत्त जोशी
9. गढ़वाल की हिन्दी साहित्य की देन : डॉ0 चतुर सिंह रावत

बोली जौनसारी भाषा पर डॉ0 उमाशंकर 'सतीश' ने विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।[1] उपरि उल्लिखित कार्य के अतिरिक्त गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य[2] गढ़वाल के साहित्य और संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव[3], गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन[4] और गढ़वाल का लोक काव्य[5] तथा नाथ पंथ और गढ़वाल पर डॉ0 विष्णुदत्त कुकरेती[6] ने अकथ परिश्रम करके नयी समझ दी है तथा उपेक्षित सामग्री को प्रकाश मे लाने की सुचेष्टा की है। इस मूल्यवान शोध ग्रन्थ में गढ़वाली लोक भाषा के प्राचीनतम् नमूने दिये गये हैं जिससे लोक भाषा की पुष्ट परम्परा का ज्ञान होता है।

बोली का साहित्य :

बोली के साहित्य की परिभाषा गढ़वाली बोली-भाषा के साहित्य की परिभाषा स्पष्ट है। ऐसा साहित्य जिसे गढ़वाल के कवि, लेखकों, साहित्यकारों, कहानीकारों तथा उपन्यासकारों द्वारा गढ़वाली लोक भाषा में सृजित किया गया है। प्राय: लोक साहित्य और बोली-भाषा के साहित्य के भेद को स्पष्ट समझने में विद्वानों द्वारा भी भूलें की गई हैं। निस्सन्देह किसी भी बोली-भाषा का लोक साहित्य जिसे अपौरूषेय वाङ्मय कहा जाता है, उस भाषा बोली में होता है, लेकिन उसके रचयिता अज्ञात होते हैं जबकि लोक भाषा का साहित्य उस क्षेत्र विशेष के साहित्यकारों की देन होती है। गढ़वाली बोली-भाषा का साहित्य विविध विधाओं में उपलब्ध है। इन्हें हम गढ़वाली लेखकों की रचनाएं मानते हैं। इस साहित्य में विशेषकर गीतों में, कुछ ऐसी लोकप्रिय रचनाएं जरूर मिलती हैं जो कालान्तर में, लोक-गीतों की श्रेणी में आ जाती हैं और लोक-भाषा की रचना के स्थान पर उन्हें लोक-गीतों में गिना जाता है। पुराने लेखकों की ऐसी बहुत सी रचनाएं हैं जो लोकगीतों की श्रेणी में आ गइ हैं तथा गढ़वाली लोक साहित्य का एक अंग बन गई हैं। ऐसी रचनाओं में 'रामी'[7] और 'वीर बधु'[8] तथा सिंहनाद[9] के लोकप्रिय

---

1. जौनसारी भाषा का अध्ययन : डॉ0 उमाशंकर 'सतीश'
2. डॉ0 श्रीमती आनन्दी जोशी
3. चन्द्रशेखर बडोला
4. चन्द्रशेखर कपरूवाण
5. बुद्धिराम बडोनी
6. नाथ पंथ और गढ़वाल : डॉ0 विष्णु दत्त कुकरेती
7. रामी - श्री बल्देव प्रसाद शर्मा
8. सिंहनाथ - श्री भजन सिंह 'सिंह'

गीत हैं। गढ़वाली भाषा के इन दोनों लेखकों के साथ 'मोछंग' के लेखक के गीत भी लोकगीतों की तरह गाये जाते हैं। आधुनिक काल में लोक भाषा गढ़वाली के बहुत से लोकप्रिय कवि हैं जिनके गीत लोकगीतों की तरह और कहीं-कहीं उससे भी बढ़कर लोकप्रिय होने पर, लोकगीतों की तरह गाये जाते हैं।

काल वर्गीकरण :

गढ़वाली लोक भाषा के लिखित साहित्य के विकास के कालक्रम को हम मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त करते हैं। हमारे इस वर्गीकरण का आधार, गढ़वाली लोक भाषा की लिखित परम्परा का उपलब्ध साहित्य है जो साहित्य की विविध विधाओं में प्रकाशित है तथा आज लोक भाषा गढ़वाली की ऐतिहासिक परम्परा का आधार स्तम्भ है। रचना काल की दृष्टि से विकास की ये अवस्थाएं है :-

(1) प्राचीन काल
(2) मध्यकाल
(3) आधुनिक काल[1]

गढ़वाली लोक भाषा की लिखित परम्परा के इस ऐतिहासिक कालक्रम के अतिरिक्त गढ़वाल के अनेक विद्वानों[2] ने गढ़वाली भाषा के विकास का विस्तृत वर्गीकरण भी किया है। इन विद्वानों में श्री भगवती प्रसाद पांथरी, श्री भजन सिंह 'सिंह', श्री अबोध चन्द्र बहुगुणा, डा0 गोविन्द चातक तथा डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश तथा श्री मोहन लाल बाबुलकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। श्री मोहन लाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक भाषा की लिखित परम्परा अपनी रेडियो वार्ता में गढ़वाली लोक-भाषा के विकास का ऐतिहासिक कालक्रम प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त विद्वानों द्वारा गढ़वाली लोक भाषा के विकास का किया गया विस्तृत वर्गीकरण, निम्नवत् है :-

---

1. गढ़वाली लोकभाषा का लिखित परम्परा : मोहन लाल बाबुलकर
2. डॉ0 गोविन्द चातक, डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश, श्री भजन सिंह, श्री पांथरी, और श्री अबोध चन्द्र बहुगुणा।

(1) आरम्भिक युग

(2) गढ़वाली युग

(3) 'सिंह' युग

(4) पांथरी युग

(5) आधुनिक युग

आरम्भिक युग :

गढ़वाली भाषा में लिखित परम्परा सन् 1800 में प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढ़वाली लोक-भाषा की लिखित परम्परा का समय सन् 1850 तो कोई 1892 और कई विद्वान 1900 मानते हैं। प्रारम्भ की श्री हरिकृष्ण दौर्गादित्ती, श्री हर्षपुरी और लीलानन्द कोटनाला की रचनाएं हैं। सन् 1892 में गढ़वाली भाषा में मिशनरियों ने बाइबिल प्रकाशित की[1] श्री गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल ने हितोपदेश का गढ़वाली में अनुवाद किया।[2] तदनन्तर सन् 1905 में गढ़वाली अखबार[3] प्रकाशित हुआ और इसके पश्चात् लोगों में अपनी भाषा और साहित्य के प्रति ललक हुई। आरम्भिक युग की गढ़वाली की आज कुछेक कविताएं ही मिलती हैं जो उस समय गढ़वाली पत्र में प्रकाशित होती थीं। इस आरम्भिक युग की दो कविताएं, बुरो संग [4] और चेतावनी[5] बहुचर्चित रही हैं।

---

1. श्री रामपुर मिशनरी
2. गढ़वाली हितोपदेश : श्री गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल
3. गढ़वाली : सम्पादक श्री विश्वम्भर दत्त चन्दोला
4. अकुलौ मां माया करी
कैकी बिनी जार तरी
बार बिथा सिर धरी
बेकुफी कु रोयेद
जखे तख मिसे जाद
जझ फीटा सैऊं खाद
दियुं लेयुं तने जाद
5. अलो, भायं क्या छ ?
कख तई पेडय रैंण घर
विर्देस्यन - देखा ?
कनि-कनि करयाले जगद
करा प्यारों अब त जतन कुछ अपणा
विषय मां न खोवा
हे चुचों, निज दिन अमोला मुफ्त मां

गढ़वाली युग :

गढ़वाली युग 'गढ़वाली' पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ सन् 1905 में प्रकाशित गढ़वाली के पहले अंक में 'उठा गढवालियों' कविता प्रकाशित हुई ।[1] इस कविता ने गढ़वाली जनमानस को झकझोर दिया, एक लहर सी उठी। सर्वश्री सत्यशरण रतूड़ी, चन्द्र मोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरोला, योगेन्द्र पुरी, चक्रधर बहुगुणा, तोता कृष्ण गैरोला, गिरिजा दत्त नैथानी और श्री विश्वम्भर दत्त चन्दोला सम्पादक गढ़वाली, इस युग के विख्यात कवि और सम्पादक थे। इस युग में रामी[2] जसी, सदेई,[3]फूलकंड़ी,[4] मोछंग[5] और प्रेमी पथिक[6] तथा जयविजय और प्रहलाद[7] नाटक प्रकाशित हुये। 'गढ़वाली छंद माला[8] और 'गढ़वाली परवाणा[9] जैसी कृतियों ने गढ़वाली लोक भाषा को पुष्ट किया।

श्री सिंह युग :

इस युग को श्री भजन सिंह 'सिंह' के कृतित्व के कारण ही 'सिंह' युग के नाम से जाना जाता है। श्री सिंह ने गढ़वाली लोक भाषा साहित्य की पहली श्रेष्ठ और मौलिक कृति 'सिंहनाद' का प्रकाशन किया। इस कृति से गढ़वाली लोक साहित्य की ओर श्री सिंह ने गढ़वाली समाज और प्रबुद्ध

---

1. श्री सत्य शरण रतूड़ी
2. श्री बलदेव प्रसाद शर्मा
3. श्री तारा दत्त गैरोला
4. श्री योगेन्द्र पुरी
5. श्री चक्रधर बहुगुणा
6. श्री तोता कृष्ण गैरोला
7. श्री भवानी दत्त थपल्याल
8. श्री लीलानन्द कोटनाला
9. श्री शालिग राम वैष्णव

लेखकों का ध्यान आकर्षित किया। इसे हम गढ़वाली लोक साहित्य की पहली भूमिका मानते हैं।[1] लोक साहित्य की ऐतिहासिक भूमिका देने के साथ ही श्री सिंह ने गढ़वाली लोक भाषा में 'खुदेण'[2] गीतों की रचना करके, पार्वत्य प्रदेश की महिलाओं के हृदय को जीत लिया। ये महिलाएं आज भी इन खुदेण गीतों को गाकर अपने मन के 'उमाल' को शांत करती हैं। इस युग के गीतकार और कवियों ने सामाजिक कुरीतियों और रूढ़िवादिता पर गहरा कटाक्ष किया है। श्री सिंह ने टका का विवाह, बुढ़ापे की शादी, शराब, मुकदमाबाजी, वाक्या,[3] छुआछूत तथा स्वीली[4]समस्या पर प्रहार किया और इन बुराइयों को समाज से समूल नष्ट करने के लिए अपनी लेखनी से तीखे प्रहार किये। अन्य साहित्यकार जिन्होंने सिंह युग में अपनी लेखनी चलायी, उनमें सर्वश्री कमल साहित्यालंकार, विशालमणि शर्मा, ललिता प्रसाद ललाम और श्री सत्यप्रसाद रतूड़ी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

पांथरी युग :

श्री भगवती प्रसाद पांथरी इस युग के कर्णधार थे। श्री पांथरी ने गढ़वाली लोकभाषा में गद्य तथा पद्य दोनों ही विधाओं में साहित्य की रचना की। बजु बांसुली,[5] हिलांस,[6] अधः पतन,[7] भूत्तों की खोह, बासन्ती,[8] तथा पाँच फूल[9] इस युग में प्रकाशित हुए। पाँच फूल श्री पांथरी का कहानी संग्रह है।

---

1. सिंहनाद श्री भजन सिंह 'सिंह'
2. ऐसे गीत जिनको गाने से दुःख और मायके की याद की स्मृतियाँ जाग उठती हैं और दिल का उमाल आंसुओं में फूट पड़ता है।
3. भविष्य बताने वाला
4. प्रसव सम्बन्धी समस्याएं
5. श्री भगवती प्रसाद पांथरी
6. श्री भगवती चरण निर्मोही
7. श्री भगवती प्रसाद पांथरी
8. श्री पुरूषोत्तम डोभाल
9. श्री भगवती प्रसाद पांथरी

इस युग में गढ़वाली शब्दकोश[1] प्रकाशित करने की चेष्टा की गई। गद्य और पद्य की बहुत सी कृतियां प्रकाशित हुई। कविता के क्षेत्र में श्री देवरानी, अबोध बंधु बहुगुणा, गिरधारी प्रसाद कंकाल, सच्चिदानन्द काण्डवाल, मुरली मनोहर सती, श्रीधर जमलोकी, उमाशंकर सतीश, योगेन्द्र कृष्ण, तथा उम्मेद सिंह नेगी के कविता संग्रह तथा सर्वश्री दामोदर प्रसाद थपल्याल, भगवती प्रसाद चमोला, डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश, डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल, जीता सिंह नेगी तथा डॉ0 गोविन्द चातक के नाटक प्रकाशित हुए।

आधुनिक युग :

इस युग में कविता, कहानी, गीत, उपन्यास, काव्य, महाकाव्य और नाटक तथा निबंध, एकांकी एवं लोकभाषा गढ़वाली में, मासिक पत्रों के प्रकाशन का श्रीगणेश हुआ। 'मैती' इन पत्रों में सबसे पुराना तथा अलकनन्दा तथा बुग्याल, आधुनिक युग की देन है। इस युग में डॉ0 जर्नादन प्रसाद काला, डॉ0 गोविन्द चातक, डॉ0 हरिदत्त भट्ट और श्री मोहन लाल बाबुलकर ने पहली बार गढ़वाली लोक साहित्य पर विवेचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। गढ़वाली लोकभाषा के साहित्य के कालक्रम सन् 1900 से 1925, सन् 1927 से 1951, और सन् 1952 से 1974 एवं सन् 1975 से आज सन् 1992 तक का प्रकाशित साहित्य और साहित्यकार हैं। इन साहित्यकारों में श्री भजन सिंह 'सिंह' से लेकर नयी पीढ़ी के कवि श्री ललित केशवान भी हैं तथा मासिक पत्रिकाओं में 'धैं' तथा 'गढ़-ऐना' दैनिक शामिल हैं।

साहित्यिक विधाओं का विवेचन :

. गढ़वाली लोकभाषा-बोली में आज विविध विधाओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाली में पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबंध प्रमुख रूप से उपलब्ध हैं। तो भी गढ़वाली लोकभाषा-बोली साहित्य की प्रमुख और लोकप्रिय विधा पद्य है। सन् 1800 से 1900 तक संस्कृत और हिन्दी की रचनाओं पर गढ़वालीभाषा-बोली का प्रभाव दर्शित मिलता है। सन् 1900 के तीसरे दशक के आगे पाँच वर्ष तक पद्य के साथ गद्य में, रचनाएं प्रकाश में आयीं। सबसे पहली कहानी, 'भाषा प्रकाश' में प्रकाशित है पूर्व और पश्चिम शूर-वीरों का मिलन, जिसका गढ़वाली तथा कुमाऊँनी की विविध इलाकाई बोलियों में अनुवाद किया गया है। दूसरी कहानी 'गणेशू कौकां मित्र स्वॉला पकोड़ा' है जो कलकत्ता से प्रकाशित हुई है।

---

1. श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल तथा घनानन्द घिल्डियाल

गढ़वाली (शैल वाणी: श्री अबोध बंधु बहुगुणा) के गद्य विकास में ईसाई मिशनिरियों की धर्म प्रचारक, छोटी-छोटी पुस्तकों[1] का भी विशेष महत्व है। इसमें ईसू का चरित्र और सामाजिक कुरीतियों पर महत्वपूर्ण सामग्री गद्य में दी गई है। गीत और कविता की पुरानी पुस्तकों के लेखकों में सर्वश्री भजन सिंह, तोता कृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती चरण निर्मोही, मनोहर लाल उनियाल श्रीमन, सदानन्द जखमोला, योगेन्द्र पुरी, विशालमणि उपाध्याय , (नारायण कोटी) और महाकाव्य रचयिताओं में श्री अबोध बंधु बहुगुणा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गढ़वाली में कहानी और निबंध लेखकों में डा0 गोविन्द चातक, डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला, श्री मोहन लाल नेगी, कैप्टन ठाकुर शूरवीर सिंह पंवार, श्री प्रेमलाल भट्ट और श्री दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल, प्रमुख हैं। गढ़वाली लोकभाषा में पत्र भी लम्बे समय से प्रकाशित हो रहे हैं। इन पत्रों में सबसे पुराना 'मैती' है। अलकनन्दा तथा बुग्याल नये हैं। इनकी भाषा गढ़वाली है। विधा गद्य-पद्य दोनों ही है जिनमें कहानी, नाटक, गीत, उपन्यास, निबंध और विविध समस्याओं से संबंधित लेख प्रकाशित होते हैं। शेष हिलांस,[2] कर्मभूमि,[3] सत्यपथ,[4] युगवाणी[5], तथा देवभूमि[6] में, हिन्दी के साथ गढ़वाली लोकभाषा में भी रचनाएं प्रकाशित होती हैं। गढ़वाली नाटकों की संख्या बहुत अधिक है। इनकी संख्या लगभग 67 है। नाटकों के लेखकों में श्री ललित मोहन थपल्याल, श्री स्वरूप ढौंडियाल, श्री अबोध बंधु बहुगुणा, श्री नित्यानन्द मैठाणी, डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला, डा0 गोविन्द चातक, डॉ0 उमाशंकर सतीश, श्री बल्लभ डोमाल और डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

---

1. सच्चो बाटो
2. संपादक : श्री अर्जुन सिंह गुसाई
3. संपादक : श्री भैरवदत्त धूलिया
4. संपादक : श्री ललिता प्रसाद नैथाणी
5. संपादक : आचार्य श्री गोणेश्वर कोठियाल
6. संपादक : श्री राम प्रसाद बहुगुणा

प्राचीन कवि :

गढ़वाली लोकभाषा की लिखित परम्परा के प्राचीन कवियों में सर्वश्री हर्षपुरी, लीलादत्त कोटनाला, हरिकृष्ण दौर्गादित्ति, आत्माराम गैरोला, शशि शेखरानन्द सकलानी, भवानी दत्त थपल्याल, सत्य शरण रतूड़ी, तारादत्त गैरोला, चन्द्रमोहन रतूड़ी, योगेन्द्र पुरी, और श्री शिव नारायण सिंह विष्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

मध्ययुगीन कवि-लेखक :

मध्ययुगीन कवि-लेखकों में प्रमुख हैं सर्वश्री केशवानन्द कैथोला, तोता कृष्ण गैरोला, बलदेव प्रसाद नौटियाल, सदानन्द जखमोला, भोलादत्त देवरानी, चक्रधर बहुगुणा, भजन सिंह 'सिंह', कमल साहित्यालंकार, भगवती चरण निर्मोही, तारादत्त लखेड़ा, सर्वेश जुयाल, अमरनाथ शर्मा, मुरली मनोहर सती, वसुन्धरा डोमाल, उमादत्त नैथाणी तथा श्री श्रीधर जमलोकी ।

आधुनिक कवि-लेखक :

आधुनिक कवि-लेखकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यह शुभ लक्षण है। कुछ विख्यात नाम हैं, सर्वश्री जीवानन्द श्रीयाल, कुलानन्द भारती, डॉ0 पुरूषोत्तम डोमाल, डॉ0 महावीर प्रसाद लखेड़ा, परशुराम थपल्याल, जीवसिंह नेगी, अबोध वंधु बहुगुणा, महिमानन्द सुन्दरियाल, गिरधारी प्रसाद कंकाल, सच्चिदानन्द काण्डपाल, प्रेमलाल भट्ट, सुदामा प्रसाद प्रेमी, राम प्रसाद गैरोला, जगदीश, भगवान सिंह रावत अकेला, शिवानन्द पाण्डेय, डॉ0 गोविन्द चातक, कन्हैयालाल डंडरियाल, नित्यानन्द मैठाणी, शेर सिंह गढ़देशी,डॉ0 पार्थसारथि डबराल, धर्मानन्द उनियाल, घनश्याम रतूड़ी, डॉ0 उमाशंकर सतीश, जग्गू नौडियाल, ललित मोहन केशवान, पारेश्वर गौड़, लोकेश नवनी, डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला, डॉ0 शिवानन्द नौटियाल, लक्ष्मी प्रसाद पैन्यूली, सत्येश्वर प्रसाद, आजाद, दामिणी दत्त चन्दोला, केशवानन्द ध्यानी, गुणानन्द पथिक, योगेश पांथरी, जयानन्द कुकसाल, महेश तिवाड़ी, डॉ0 चन्द्रमोहन चमोली, चन्द्रसिंह राही, दुर्गाप्रसाद घिल्डियाल, विनोद उनियाल, पूरन पंत 'पथिक,' नेत्रसिंह असवाल, नैनसिंह रावत, अनसूया प्रसाद उपाध्याय, प्रकाश पुरोहित, जगदीश बिजल्वांण, बालेन्दु बडोला तथा श्री मोहन लाल ढौंडियाल ।

सन् 1900 के पहले दो दस वर्षों को गढ़वाली लोकभाषा की लिखित परम्परा का प्रारम्भिक युग कहा जा सकता है। इन वर्षों में गढ़वाली लोकभाषा की लिखित परम्परा की वास्तविक आधार शिला के बीज-बिन्दु वे रचनाएं हैं, जो सन् 1900 से 1920 के समय में लिखी जाकर प्रकाशित हुई हैं। सन् 1901 में पं0 गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली लोकभाषा में 'राजनीति को पैलो भाग' पुस्तक प्रकाशित हुई। पं0 गिरिजा दत्त नैथाणी का 'मांगल' गीत प्रकाशित हुआ। महंत हर्षपुरी गुसांई की गढ़वाली कविताएं, जो सन् 1905 के बीच में प्रकाशित हुई, में गढ़वाली की प्रारम्भिक अवस्था की कविताएं हैं। सन् 1911 में पं0 भवानी दत्त थपल्याल का 'जयविजय' नाम से, गढ़वाली नाटक प्रकाशित हुआ।

पं0 सदानन्द कुकरेती ने सन् 1923 के विशाल कीर्ति मासिक में प्रसिद्ध कहानी गणेशू कौंका मित्र स्वाला पकोड़ा' लिखकर प्रकाशित कराई। यह कहानी हिन्दी की 'उसने कहा था' कि तरह गढ़वाली लोकभाषा लेखन की प्रथम कहानी है। पं0 भवानी दत्त थपल्याल का दूसरा नाटक प्रहलाद सन् 1914 में प्रकाशित हुआ।

सन् 1915 में गढ़वाली की विकसित होती लिखित परम्परा को एक नया मोड़ मिला। मिशनिरियों ने बाइबिल का अनुवाद गढ़वाली में किया। मंती रचित 1. सुसमाचार 2. जीवन की बाटो 3. सच्चो वचन तथा हरचा अरमिल' पुस्तकें प्रकाशित कीं। सन् 1914 में पं0 लीलादत्त कोटनाला की गढ़वाली छंद माला प्रकाशित हुई। इन दो दशकों में पं0 बलदेव प्रसाद शर्मा की, 'रामी' और 'जसी', पं0 तारादत्त गैरोला की 'सॉस ऑफ दादू' पं0 तोताकृष्ण गैरोला की प्रेमी पथिक, और शशि शेखरानन्द की 'पुष्पांजलि', प्रकाशित हुई। इस समय सत्यशरण रतूड़ी, भवानी दत्त थपल्याल, चन्द्र मोहन रतूड़ी, रत्नाम्बर चन्दोला और पं0 आत्माराम गैरोला के साथ गढ़वाली लोकभाषा के पत्र 'गढ़वाली' में सर्वश्री सनातनानन्द सकलानी, देवेन्द्र दत्त रतूड़ी, गिरिजा दत्त नैथाणी, मथुरा दत्त नैथाणी, सुरेन्द्र दत्त सकलानी, अम्बिका दत्त शर्मा, देवेन्द्र दत्त सकलानी, दयानन्द बहुगुणा और पं0 सदानन्द कुकरेती की गढ़वाली लोकभाषा की रचनायें प्रकाशित होती रहीं।

सन् 1920 के बाद, अगले 25 वर्षों का इतिहास गढ़वाली लोकभाषा के विकास में एक मील के स्तम्भ के रूप में माना जाता है। श्री भजन सिंह 'सिंह' की अपने ढंग की गढ़वाली लोकभाषा की पहली पुस्तक 'सिंहनाद' के प्रकाशन से गढ़वाली लोक साहित्य गीत-गाथाओं, कथाओं, कहावतों-पहेलियों एवं लोक वार्ता की ओर लोगों का ध्यान पहली बार आकर्षित हुआ। 'सिंहनाद' के खुदेड़गीत, पार्वत्य प्रदेश की महिलाओं के प्राण हैं। श्री 'सिंह' ने सामाजिक बुराइयों जुआ, शराब खोरी,टके का ब्याह, मुकदमाबाजी, वाक्या, बुढ़िया का विवाह और छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराइयों पर जबरदस्त प्रहार किया। श्री भजन सिंह 'सिंह' की इस कृति 'सिंहनाद' ने उन्हें प्रसिद्धि के ऊपरी शिखर पर पहुँचा दिया। इस युग के अन्य सशक्त हस्ताक्षर थे - सर्वश्री शिव नारायण सिंह विष्ट, योगेन्द्र पुरी, कमल साहित्यालंकार, चक्रधर बहुगुणा, विशालमणि शर्मा और पं0 ललिता प्रसाद 'ललाम'। इन दो दस और एक पॉच वर्ष की प्रसिद्ध रचनायें 'गढसुम्याल'-'फूलकण्डी','मोछंग','मनतरंग','विरहिणी','बाला'-'जुओ, अर जनानी','रैबार' और 'हिलांस', हैं।

सन् 1932 की पं0 शालिग्राम शास्त्री की 'नीति शतक' सन् 1935 के आस पास की कमल साहित्यालंकार की 'जमुना' श्री कर्त्तव्य बोध और पं0 'ललाम' की सासू-क्वारी कवितायें बहुत प्रभावी साबित हुई। पं0 शालिग्राम वैष्णव की सन् 1938 में 'गढ़वाली भाषा के पखाणा' पुस्तक प्रकाशित हुई। यह आज भी अपने आप में बेजोड़ है। इसी समय पं0 बलदेव प्रसाद नौटियाल ने 'छाया रामायण' गढ़वाली में लिखी, श्री नौटियाल ने 'गढ़वाली भाषा शब्द कोश' का भी सम्पादन किया। यह ग्रन्थ कोश अभी तक अप्रकाशित है। श्री नौटियाल के सुपुत्रों से साग्रह निवेदन है कि वे इस कोश को गढ़वाल के सुविज्ञ विद्वानों की समिति को सौंप दें ताकि उसका प्रकाशन हो सके। इन व्यक्तियों के अतिरिक्त इस युग के काव्य रचनाकारों मे श्री रत्नाम्बर दत्त चन्दोला, श्री केशवानन्द जदली और पं0 दयाशंकर भटट 'बन्दी' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पं0 रूप मोहन सकलानी का मेघदूत का गढ़वाली में अनुवाद, पं0 तुलाराम शर्मा की 'कर्मयोग' पुस्तक और पं0 विशालमणि शर्मा द्वारा सम्पादित 'वीर गढ़वाल' नामक कविता-संग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में राष्ट्रीय विचारधारा को प्रश्रय मिला है। गढ़वाली लोकभाषा में मौलिक चिंतन प्रारम्भ हुआ है तथा गढ़वाली में नयी विधाओं में नये-नये प्रतिभा सम्पन्न लेखक-कवि, नाटककार और कहानीकार पैदा हुये हैं।

इस अवधि में गद्य-पद्य दोनों ही विधाओं में गढ़वाली लोक भाषा में साहित्य रचा गया। कविता काव्य-कहानी लेख के साथ, इन वर्षों में गढ़वाली लोक भाषा के लेखकों ने पं0 भवानी दत्त थपल्याल की परम्परा को आगे बढ़ाया। 'जय विजय' और 'प्रह्लाद'नाटक के बाद अनेक नाटक लिखे गये और उनका मंचन हुआ। सन् 1930 में धनानन्द बहुगुणा का 'समाज', सन् 1922 में विश्वम्भर दत्त उनियाल का 'बसन्ती', सन् 1935 में ईश्वरी दत्त जुयाल का 'परिवर्तन' तथा 1936 में वाणी भूषण शर्मा का 'प्रेम सुमन', आदि नाटक प्रकाशित हुये। नाटकों के लेखन और प्रकाशन का क्रम आगे बढ़ता रहा। इसने गढ़वाली के रंगमंच को नयी दिशा दी। इन सशक्त रचनाओं में प्रो0 भगवती प्रसाद पांथरी का अध:पतन, भूतों की खोहें, दामोदर प्रसाद थपल्याल का-'मनखी' 'औंसा की रात', डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल का 'बुराँस', 'बिन्दरा' और डॉ0 हरिदत्त भटट 'शैलेश' की रामी नृत्य नाटिका 'ब्यो की बात' तथा 'छि: करू क्या?' उल्लेखनीय हैं।

गढ़वाली लोक भाषा के रंगमंच और नाटय लेखन शैली को नयी दिशा देने वालों में, पं0 ललित मोहन थपल्याल का सर्वाधिक योगदान है। श्री थपल्याल ने कई नाटक लिखे, कितने ही नाटकों में अभिनय किया और अनेक नाटकों को निर्देशित भी किया है। 'खाडू लापता' - इनका सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय नाटक है। अन्य अनेक गढ़वाली लोकभाष के नाट्य लेखक और उनके चर्चित नाम अनेक हैं। लगभग 65-70 नाटक इन्होंने गढ़वाली लोकभाषा को दिये।

ये नाटक और इनके लेखक इस प्रकार हैं :-

(1) जयविजय, (2) भक्त प्रहलाद, श्री भवानी प्रसाद थपल्याल, (3) बसन्ती, श्री विश्वम्भर दत्त उनियाल, (4) परिवर्तन - श्री ईश्वरी दत्त जुयाल, (5) प्रेम सुमन - वाणी भूषण शर्मा, (6) भूतों की खोह, (7) अध:पतन- श्री भगवती प्रसाद पांथरी, (8) आज आलस छोड़ी- श्री भगवती प्रसाद चन्दोला, (9) मनखी - श्री दामोदर प्रसाद थपल्याल (10) औंसी की रात - श्री दामोदर प्रसाद थपल्याल, (11) जंगली फूल- श्री गोविन्द चातक, (12) बुरांस (13) बिन्दरा-श्री पुरूषोत्तम डोभाल (14) श्रीकृष्ण नाटक- विशाल मणि शर्मा (15) भक्त बालक ध्रुव- श्री विशाल मणि शर्मा, (16) सीताहरण - श्री श्रीधर जमलोकी, (17) अनपढ़ (18) गैल्या (19) बेमान नौकर (20) आजकल की पंचैत (21)

शराब अर खराब (22) कन्या बेची- श्री सुरेन्द्र सिंह रावत, (23) मायी को लाल (24) अंतिम गढ़ (25) कच विटाल-श्री अबोध बंधु बहुगुणा (26) वन के फूल- श्री शिवानन्द नौटियाल, (27) खौल्या - श्री नित्यानन्द मैठाणी (28) ज्यूँ, (29) मांगण, (30) चौडन्डी- श्री नित्यानन्द मैठाणी, (31) सपूत- श्री मोहन डंडरियाल (32) कन्यादान- श्री बच्चीराम जमलोकी, (33) मूर्तियों की चोरी- श्री प्रेमलाल भट्ट (34) बंटवारो बैध- श्री गोविन्द राम पोखरियाल, (35) भारी मूल (36) मलेथा कि कूल-श्री जीतसिंह नेगी, (37) डॉडा की अयेड- श्री बुद्धि बल्लभ बहुगुणा (38) पाखाघसेरी, (39) औंसी (40) गवै, (41) चोली, (42) तिमला का तिमल्या खत्या-श्री पारेश्वर गौड़, (43) जुन्दालिरात - श्री दिनेश पहाड़ी, (44) कन्यादान- श्री सुदामा प्रसाद प्रेमी, (45) मालू सौकार (46) काखि नाक ना कखि सुनुना -श्री केशव ध्यानी, (47) टिंचरी-श्री चिन्तामणि बड़थ्वाल (48) खबेश (49) फिटकार-श्री मदन डोभाल (50) खाडु लापता (51) आछरयों का ताल (52) घरजवैं, (53) दुर्जन की कछड़ी (54) एकीकरणे- श्री ललित मोहन थपल्याल (55) इन भिचलद- श्री गिरधारी प्रसाद कंकाल (56) एक जो अगनैं- श्री वीरेन्द्र मोहन रतूड़ी (57) रगठग- श्री किशोर घिल्डियाल (58) दूजो जनम (59) कोठीचव्वा, (60) पुरिया नैथाणी (61) तीलू रौतेली-श्री मदन थपल्याल (62) चैत की एक रात- श्री विश्व मोहन बडोला (63) जंगजोड़- श्री राजेन्द्र धसमाना (64) अर्धग्रामेश्वर (65) सपूत- श्री कन्हैया डंडरियाल (66) कंसानुक्रम (67) अदालत- श्री स्वरूप ढौडियाल ।

लेकिन इन नाटकों का मंचन केवल दिल्ली तक ही सीमित है। इन चर्चित नाटककारों में मुख्य सर्वश्री ललित मोहन थपल्याल, भगवती प्रसाद चन्दोला, अबोध बंधु बहुगुणा, डॉ0 गोविन्द चातक, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', राजेन्द्र धस्माना, स्वरूप ढौडियाल और श्री विश्वमोहन बडोला हैं।

सन् 1950 के बाद आज तक के अगले चौतीस वर्ष, गढ़वाली लोक भाषा की लिखित परम्परा के उन्नयन और नवजागरण के शंखनाद के वर्ष हैं। इन वर्षों में गढ़वाली लोक भाषा में विविध विधाओं में बहुत कुछ लिखा गया और प्रकाशित हुआ है। गद्य-पद्य, गीत, कहानी, उपन्यास, काव्य और महाकाव्य भी गढ़वाली लोक भाषा में रचे गये। इसके साथ ही लेखकों का ध्यान तेजी से गद्य लेखन की ओर भी आकर्षित हुआ। गढ़वाली में गीत संग्रहों, काव्यों एवं महाकाव्यों के अलावा कहानी, नाटक और

उपन्यास भी खूब लिखे गये और प्रकाशित हुए। उल्लेखनीय कृतियां हैं- धुयॅाल-धरती का फूल, बासुली, तिड़का, नवॉण, डौल्या, मंगतू, मंडाण,रणं और पार्वती। सन् 1957 की पं0 लक्ष्मी प्रसाद पैन्यूली की मनख्याली, ज्योन्याली रात, डॉंडी-कॉंठी, जीवन साथी, उज्याली, गीत गंगा, गीता का ऑंशू, छवीं बात और जीवानन्द श्रीयाल की गढ़साहित्य सोपान आदि कृतियां प्रकाशित हुई ।

सन् 1968 में श्री मोहन लाल नेगी टिहरी की "जोनि पर छापु किलै" कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। सन् 1913 के 55 वर्ष बाद, गढ़वाली लोक भाषा का यह पहला कहानी संग्रह है। इस कहानी संग्रह में गढ़वाली भाषा ने अपने सम्पूर्ण विकसित रूप में अभिव्यक्ति पाई है। अन्य कृतियां- धुॅयाल, मेघदूत, मेघदूत, काव्य, पथिक के गीत- रैबार और मुरली मनोहर सती की गढ़वाली झॉंकी हैं। इस युग में कुछ महत्वपूर्ण सम्पादित संग्रह भी प्रकाशित हुए। हिंसर, बुग्याल, मौलयार-रंतरैबार-मैती और खुदेड़गीत सार उनमें प्रमुख हैं। सन् 1975 में श्रीमती विद्यावती डोभाल की 'तीन गढ़वाली गीतिका' नाम से एक महत्वपूर्ण पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

सन् 1975 के पश्चात् गढ़वाली लोक भाषा में नव जागरण की ललक के दर्शन होते हैं। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के नये आयाम सामने आते हैं। गढ़वाली लोक भाषा काव्यों और महाकाव्यों की भाषा बनती है। सन् 1977 में श्री अबोध बंधु बहुगुणा का 'भुम्याल' महाकाव्य इसका सुप्रमाण हैं। श्री लोकेश नवनी की 'फॅचि', दीन दयाल बदूमी का- हिमालय का देश, श्री किमोठी का-पितरों को तर्पण, श्री भगवान सिंह रावत 'अकेला' का 'माया मेंलुड़ी' उल्लेखनीय कृतियां हैं। कन्हैया लाल डंडरियाल की अंज्वाल, जग्गू नौटियाल की- समलौण और धैछ रचनायें उल्लेखनीय हैं। श्री प्रेम लाल भट्ट की सन् 1979 में प्रकाशित काव्य कृति 'उमाल' गढ़वाली लोक भाषा की महत्वपूर्ण कृति हैं। लोक भाषा की लिखित परम्परा को आगे बढ़ाने में श्री सत्येश्वर प्रसाद 'आजाद' के 'मैती' और सुश्री सरिता शर्मा द्वारा सम्पादित 'बुग्याल' ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

में ही श्री दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल का 'गारि' कहानी संग्रह और अबोध बंधु बहुगुणा द्वारा सम्पादित कविता संग्रह 'शैलवाणी' और 'गाड मेटि गंगा' प्रकाशित हुए। यह पुस्तक गढ़वाली लोक-भाषा की लिखित परम्परा का, पहला क्रमबद्ध इतिहास है। विद्वान सम्पादक ने पहली बार लोक भाषा के इतिहास को तारतम्य में लाने का सुप्रयास किया है जिसमें गढ़वाली के विकास की एक स्पष्ट तस्वीर सामने आती है। इन दोनों कृतियों ने भी गढ़वाली लोक भाषा की लिखित परम्परा को समृद्ध किया है। श्री अबोध बंधु बहुगुणा द्वारा सम्पादित 'शैलवाणी' में डॉ0 महावीर प्रसाद लखेड़ा की कविता 'सुपिन्यो रतव्याणी को' प्रकाशित हुई थी। डॉ0 लखेड़ा जी गढ़वाली गीत-कवितायें लिखकर तथा गढ़वाली भाषा शब्द कोश सम्पादित कर, गढ़वाली भाषा के लेखन को आगे बढ़ा रहे थे। लेकिन इसी बीच डॉ0 लखेड़ा के असामयिक निधन से, गढ़वाली लोक भाषा को बड़ा आघात लगा है। गढ़वाली का बड़ा अहित हुआ है। सन 1982 में एक और उल्लेखनीय गीत संग्रह प्रकाशित हुआ है। श्री ललित केशवान की इस उल्लेखनीय रचना का नाम 'खिल्दा फूल हँसदा पात' है। गढ़वाली लोक भाषा के इस काव्य-संग्रह में अनोखा व्यंग्य-विनोद है। इसकी भाषा में सतत् प्रवाह और काव्यात्मक निखार है। इस बीच सन् 1982 से आगे के वर्षों में गढ़वाली लोक भाषा में लेख और कहानियां खूब लिखी जा रही हैं। बम्बई के श्री भीष्म कुकरेती की भाषा का यद्यपि मानक रूप नहीं है तो भी कानपुर के श्री पूरन पंत और इलाहाबाद के श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने गढ़वाली लोक भाषा में 'धुंड्याघूर' और 'मेरि मूंगाकखहोली' जैसी सशक्त कहानियां लिखी हैं।

आठवें दशक में गढ़वाली भाषा के गद्य में तो नहीं पद्य में श्रेय और प्रेय की अधिकता रही। भाव और भावना तथा प्रेम और प्रेयसी के लावण्यमय स्वरूप को भी राष्ट्रीय भावनाओं के साथ अभिव्यक्त होने का सुयोग मिला है। कालिदर्पण, श्री आत्माराम फोदणी की काव्य कृति है। यह पद्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति है तो उधर बीसवीं शताब्दि के तीसरे दशक के पाँच-दस वर्ष के बाद कविता में मानवीय मूल्यों, व्यवहार, जीव-जगत और सत्य-असत्य तथा व्यक्ति के जीवन के यथार्थ के विविध पक्षों पर पहली बार, खरी और सच्ची बात 'कपाली की छमोट' में कही गई है। डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला ने अपनी इन इकसठ कविताओं में व्यक्ति, जीव, जगत और व्यक्ति के कार्यकारी जीवन तथा जन्म के यथार्थ एवं सत्य-असत्य के अंदर और बाहर के सत्य को अन्दर घुसकर उजागर किया है। सब कुछ जानते हुए भी लोक 'कपाली की छमोट' लगा रहे हैं ? तो भाई क्यों लगा रहे हो, कपाली की छमोट? ऊपर वाले से तो डरो।

आठवें दशक (1980) में प्रकाशित गढ़वाली भाषा की रचनाओं में सबसे बड़ी समस्या भाषा के मानक रूप की रही है। डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला की कविताओं और श्री आत्माराम फोदर्णी की कविताओं की भाषा का रूप मानक है, यह गढ़वाली का मानक स्वरूप है। ब्योलि नवोदित गढ़वाली के लेखक श्री दयाधर प्रसाद बमराड़ा की कृति है। श्री बमराड़ा का गढ़वाली भाषा का यह उपन्यास श्री मोहन लाल नेगी, डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला, श्री दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल, श्री सुदामा प्रसाद 'प्रेमी' श्री आत्माराम फोदर्णी और अन्य अनेक गढ़वाली के मानक पद्य-गद्य लेखकों की भाषा की परम्परा का प्रतीक है। श्री बभराड़ा ने पहाड़ की सामाजिक संरचना को लेकर अपने उपन्यास में मानवीय मूल्यों को उभारने की चेष्टा की है। बाजूबंद काव्य, श्री मालचन्द्र रमोला की गढ़वाली साहित्य की एक विभिष्ट शैली के गीत हैं। आज बाजूबंद शैली के गीतों का प्रचलन प्रायः बंद है। ये आशु कवियों की रचनाएं हैं कहें कि आशु रचनाएं हैं। यह एक शैली है, जिसमें माटी की सोंधी गन्ध मिलती है। बाजूबंद काव्य वास्तव में, श्री रमोला का एक अभिनव प्रयोग है।

बुराँश की पीड़, श्री मोहन लाल नेगी की, 'जोन्पिर छापु किलैं' की तरज पर, भाषा के उसी मानक रूप में, पीड़ की कहानियां हैं। 'जोनि पर छापु किलैं' के सामाजिक परिवेश से कुछ आगे बढ़कर, व्यक्ति के संवेगों, भावनाओं और अनुभूतियों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं एवं पहाड़ी जीवन के रीति-रिवाजों, विश्वासों एवं अंधविश्वासों के आसपास घूमती हैं ये कहानियां। पीड़ की ग्यारह कहानियों में नयी दृष्टि है और जीवन मूल्यों के प्रति अटूट आस्था है। श्री गोकुलानन्द किमोठी की किताब 'पितरू को रैबार' (1979) में सतरह गीत, सही माने में कविताएं मुद्रित हैं। इसमें एक सिपाही की जन्मभूमि के प्रति व्यक्त प्रेम की भावनाएं हैं।

अनुवाद, मौलिक लेखन से दुरूह होता है और वह भी ठीक-ठीक और सही-सही अनुवाद। गद्य और पद्य तो बहुतों ने लिखा लेकिन गढ़वाली में अनुवाद बहुत कम हुआ है। डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला ने यह शुरूआत की थी गीता के श्लोकों का गढ़वाली में अनुवाद करके। इस दिशा में शीर्षस्थ नाम है श्री आदित्य राम दुदपुड़ी का । श्री दुदपुड़ी एक मील का पत्थर साबित हुए हैं, गढ़वाली में अनुवाद के मामले में। नौवें दशक के तीन वर्षों में श्री दुदपुड़ी ने गढ़वाली में आठ पुस्तकों के अनुवाद किये हैं।

गढ़गीता सतसई (1989) श्री आदित्य राम दुदपुड़ी की एक ऐसी रचना है जिसमें उन्होंने गीता के अट्ठारह अध्यायों के प्रत्येक श्लोक का, संस्कृत से गढ़वाली और हिन्दी में पद्यानुवाद किया है। हिन्दी और गढ़वाली दोनों, दोहों की भाषा सरस, सरल-बोलचाल की मानक भाषा है। श्री आदित्यराम दुदपुड़ी की 'गढ़वाली महाभारत' (1990) में महाभारत की सम्पूर्ण कथा, गढ़वाली और हिन्दी के गेयपदों में की गयी है।

'गढ़वलि रामैण' (मई 1990) गढ़वाली और हिन्दी के दोहों में, काण्डानुसार राम कथा कही गई है। प्रश्नादि छः उपनिषद् (जून 90) में माण्डूक्य, एतरेव, तैतिरेव, श्वेतार एवं गर्भोपनिषद से सम्बन्धित प्रश्न हैं। 'स्टाइल वही है, श्लोकों का गढ़वाली और हिन्दी में पद्यानुवाद। गढ़नीति शतक (मई 91) श्री दुदपुड़ी द्वारा नीति शतक का, गढ़वाली और हिन्दी में किया गया पद्यानुवाद है। गढ़-चाणक्य-नीति, (जून 91) चाणक्य नीति का श्री दुदपुड़ी द्वारा गढ़वाली और हिन्दी में किया गया अनुवाद है। गढ़गीता-छन्दावलि (जून 91) गीता का गढ़वाली हिन्दी और अंगरेजी में किया गया भावानुवाद है। पद्य के साथ श्री आदित्य राम दुदपुड़ी ने गढ़वाली के गद्य के विकास में एक और कड़ी जोड़ दी है। गढ़-कथा कुसुम (1991) दुदपुड़ी जी की गढ़वाली भाषा की सत्तावन लोक कथाओं का संग्रह है। नौवें दशक के श्री दुदपुड़ी की इन लोक कथाओं के गद्य का सौष्ठव भी गढ़वाली भाषा के गद्य के विकास की बढ़ती प्रगति का सूचक ही है। इस गद्य में जो निखार है वह आगे के गढ़वाली भाषा के गद्य के लिए एक 'लैण्डमार्क' है। श्री आदित्य राम दुदपुड़ी एकाएक गढ़वाली भाषा के क्षितिज पर अवतरित हुए हैं। श्री दुदपुड़ी जी ने यह साबित कर दिया है कि गढ़वाली किसी भी भाषा की कृति के अनुवाद के लिए एक 'रिच' भाषा है ? इतने बड़े योगदान के लिए श्री आदित्यराम दुदपुड़ी को भुलाया नहीं जा सकता, ऐसे मूल्यवान कृतित्व के लिए। नौवें दशक के दो वर्ष तक की यह प्रगति, गढ़वाली भाषा के लिए अच्छे भविष्य की ही द्योतक मानी जायेगी। तो भी अभी कुछ और ऐसी रचनाएं हैं, जो इस विवेचन के बाहर छूट गई हैं। 'जय गढ़वाल' डॉ0 भगवती प्रसाद मिश्र (देवप्रयाग) का गढ़वाली भाषा में लिखा खण्ड काव्य है। सरल भाषा में, इन कविताओं में अनेक प्रश्न उठाये गये हैं, और तीव्र आक्रोश व्यक्त किया गया है।

गढ़वाली लोक साहित्य का वर्गीकरण

जनपदीय लोक साहित्य का विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने ढंग से वर्गीकरण किया गया है। यहाँ पर हम जनपद के सम्पूर्ण लोक साहित्य के सर्वसम्मत वर्गीकरण की ओर पाठकों का ध्यान

आकर्षित करेंगे। उपलब्ध लोक साहित्य को हम नौ बड़े विभागों में बांटते हैं -

1. गीत साहित्य
2. गाथा साहित्य
3. कथा साहित्य
4. पखाणा (कहावतें)
5. आंणा (पहेलियां)
6. चुटकला: साधारण प्रचलित रूप
7. ढोल सागर: ढोल सागर, ढोल ताल स्वर सम्बन्धी संगीत विद्या है। इसकी शब्दावली संस्कृत तथा जनपदीय बोली की है।
8. औसर स्वाँग: गद्य-पद्य दोनों में सामग्री मिलती है।
9. भक्ति भाव: लिखित साहित्य। इस साहित्य को अधिकतर पद्य रूप में लिखा गया है : ये भक्ति विषयक प्रार्थनायें, आरतियां अथवा विभिन्न देवताओं के गीत हैं।

कथा साहित्य:

जनपदीय लोक साहित्य में विभिन्न विषयों पर कथायें उपलब्ध होती हैं। सामान्यतः बिना सच्ची-झूठी का विवेचन किये ही कथाएं कही जाती हैं। कुछ कथाओं को 'सच्ची कथा' कहकर सुनाने से पहिले कथाकार कह भी लेता है। विषय और उपयोगिता के आधार पर ही कथाओं का वर्गीकरण किया जा रहा है।

(1) देव गाथायें: देव गाथायें गाथा साहित्य (विभाजन 2) के अन्तर्गत आने वाली हैं। इनका पूरा विवरण आगे दिया जा रहा है।

(2) कथा-धार्मिक अभिप्राय से कही-सुनी जाने वाली धार्मिक कथाओं को जनपद में 'कथा' कहा जाता है। 'सप्ताह' (भागवत) सत्यनारायण तथा राम-कथा (रामलीला) को सामूहिक श्रवण की कथा कहा जाता है। इन कथाओं का परम्परागत प्रचलित रूप यहाँ मिलता है।

(3) व्रत कथायें: व्रत कथायें व्रत से सम्बन्धित व्रत कथायें हैं। (अ) पूर्णमासी व्रत कथा (ब) बैकुंठ चतुदशी व्रत कथा, (स) शिवरात्रि व्रत कथा (द) संकट चौथ व्रत कथा, (य) चतुदशी व्रत कथा, (र) सोमवार व्रत कथा, (ल) इतवार व्रत कथा, (ब) मंगलवार व्रत कथा, (स) भैया दूज व्रत कथा, (ष) कन्या पूजा व्रत कथा, (श) पूजन व्रत कथा और (ह) एकादशी व्रत कथा आदि कथायें प्रचलित हैं।

(4)उपदेशात्मक कथायें: उपदेशात्मक कथाओं के भी तीन भाग मिलते हैं - (अ) पक्षियों की कथायें, (ब) पशुओं की कथायें (स) ज्ञान की कथायें। उपदेशात्मक कथाओं का उद्देश्य ही उपदेश देना है। पशु-पक्षियों के माध्यम से कथायें कही जाती हैं।

ज्ञान की कथायें ऐसी हैं जिनमें जीवन के शाश्वत सत्यों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया मिलता है।

(5) मनोरंजक कथायें: इन कथाओं में लोक के सभी वर्ग के लिए उच्च कोटि का हास्य मिलता है। स्तर कहीं भी नहीं गिरने पाया है।

(6) भूतों की कथायें: सभी कथाओं में भूतों की करामातें, आश्चर्यजनक कार्य, कहीं दया, सहानुभूति तथा कहीं विनाशकारी रूप मिलता है।

(7) परियों की कथायें: परी राजकुमारियों की इन कथाओं में अद्भुत शक्तियों के दर्शन मिलते हैं। राजकुमार-राजकुमारियों का पत्थर बनना, छूने से पुनः राजकुमार या राजकुमारी बनना, तोते को पकड़कर मारना और साथ ही राक्षस का मर जाना इत्यादि हमें इन कथाओं में मिलता है।

(8) समाधान मूलक कथायें: इन कथाओं द्वारा समस्याओं का समाधान किया गया है। अधिकतर साधुओं द्वारा बचन कहे गये हैं तथा उन्हीं वचनों की परख के लिए कथाओं को गढ़ा गया मिलता है। आणा (पहेली) की तरह इनके मूल में समस्या प्रस्तुत की गई है तथा उन्हीं समस्याओं की सत्यता कथाओं द्वारा सिद्ध की गइ है। इन वचनों में लोकानुभव होता है और उसी अनुभव के आधार पर ये कहे गये हैं। इनका एक दूसरा रूप भी मिलता है, जिसमें शब्द चातुर्य द्वारा गम्भीर अर्थ रहस्योद्घाटन किया जाता है।

(9) अन्य कथायें: इन कथाओं में तिलस्मी करामातों वाली कथायें आती हैं। जादुई करामातों का उल्लेख इनमें अधिक है।

4. पखाणा: (कहावतें)। हिन्दी में हम जिन्हें कहावत कहते हैं गढ़वाली भाषा में उन्हें पखाणा कहा जाता है। जनपद में ये पखाणा बहुत बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। इनके संग्रह का श्रेय श्री भजनसिंह 'सिंह' तथा श्री शालिग्राम को है। पखाणा दो रूपों में मिलते हैं:-

1. स्थान विशेष में प्रचलित। 2. पूरे जनपद में प्रचलित। स्थान विशेष में प्रचलित पखाणा गांव की सीमा में ही चलते हैं। गांव से बाहर इनका प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार भिन्न-भिन्न गांवों में स्थानीय पखाणा उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ एक गांव में प्रचलित पखाणा दिये जा रहे है:-

'सैन्वा लड़िक, 'नट्ट शिब्बा', 'सतरू डून्डू', बचन्वी ब्बै', 'गंगै गालि'।

इन स्थानीय कहावतों में प्रचलित पखाणों के साथ एक विशेष कथा चलती है जिसमें किसी विशेषता की ओर उल्लेख किया मिलता है। इसी विशेषता के कारण स्थान विशेष में उक्त प्रकार की उक्ति प्रचलित हो जाती है।

दूसरे प्रकार के पखाणा पूरे जनपद की सीमा तक प्रचलित मिलते हैं। विषयों के आधार पर पखाणा निम्न भागों में विभाजित किये जाते हैं:-

1. स्त्रियों के लिये प्रयुक्त। 2. पुरूषों के लिये प्रयुक्त। 3. समान रूप में प्रयुक्त। 4. नीति विषयक। इसके तीन उप-विभाग हैं। (1) साधारण शिक्षाप्रद (2) नीति-निर्देशक (3) अनुभूत संकेत विषयक। (4) आलोचनात्मक व (5) जाति विषयक।

आणा:- यानी पहेलियां, पखाणा की तरह स्थानीय बोली में पहेलियों के लिए प्रयुक्त नाम हैं। लगभग सभी आणा लोक जीवन और व्यावहारिक वस्तुओं के ऊपर मिलते हैं। इसलिये विषयों के आधार पर आणा (पहेलियों) को हमने 7 भागों में बाँटा है।

1. व्यावहारिक वस्तु सम्बन्धी, 2. जीव सम्बन्धी, 3. साग सब्जी भोजन सम्बन्धी, 4. प्रकृति व्यापार सम्बन्धी, 5. शरीर (अंग) सम्बन्धी, 6. खेती और खेती के हथियार सम्बन्धी, 7. मिश्रित ।

गाथा - साहित्य

जनपद में प्रचलित गाथाओं को हम मोटे तौर पर दो भागो में बांट सकते हैं :-

(1) जिनमें पोराणिक गाथाओं, देवाताओं, महाभारत के पात्रों तथा स्थानीय मध्य देवों की उपासना है। इन विषयों को लेकर चलने वाली गाथायें यहां जागर तथा वार्ता दो भिन्न नामों से पुकारी जाती है । (2) ऐतिहासिक - अनैतिहासिक स्थानीय पुरूषों के कार्यकलापों के विवरण। इनकी स्थानीय बोली में पंवाड़े, पंवाड़ा कहा जाता है। गाथाओं का विषयगत विभाजन इस प्रकार है:-

(अ) देव गाथायें ।

(ब) लोक गाथायें ।

देव गाथाएं

(1) कृष्ण-रूकमणी, रूकमणी-चन्द्रावली, पण्डो, निरंकार, गरूडासन।

(2) भैरों, नरसिंह, आच्छरी, नार्गजा, हंत्या, नगेला, भुम्याल, बिनसर ।

लोक गाथाएं

(1) ऐतिहासिक पुरूषों सम्बन्धी गाथायें ।

(2) ऐतिहासिक-अनैतिहासिक स्थानीय पुरूषों से सम्बन्धित गाथायें ।

(3) वीरांगनाओं की गाथायें ।

गीत साहित्य

जनपदीय गीत साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं । उपलब्ध गीत इस प्रकार हैं :-

(1) स्तुति गीत- स्तुति गीतों में कार्यारम्भ से पहिले देव विशेष की आराधना की गई है। मंगलाचरण की तरह शुभारम्भ के लिए इनका प्रचलन लोक में मिलता है।

(2) मंत्रतंत्र, भूत, जादू-टोना सम्बन्धित आवाहन गीत। इन गीतों द्वारा विभिनन उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। इनमें भूत, भूतात्माओं का जागरण एवं उनके भगाये जाने के तरीकों का उल्लेख मिलता है।

(3) मांगल गीतों में विवाह संस्कार की मंगलमय कामना के साथ बारात, पहुंच, धूलिअर्घ, पौणा-मिठाई, फेरा-भौंरा, बारात की विदाई, घर पहुंचकर होने वाले सभी संस्कार, बेटी का दुःख, मां-बाप की सहृदयता आदि सभी प्रकार के गीत मिलते हैं।

(4) थड़्या गीत- इन गीतों में लम्बे-चौड़े कथानक वाले गीत हैं। ये गीत गाथा गीतों से विस्तार में छोटे होते हैं। विषय विस्तार पँवाड़ों की तरह इनमें नहीं होता है। इनमें स्त्री-पुरूषों के गीत समान रूप से उपलब्ध होते हैं।

(5) खुदेड़ गीत:- इन गीतों में बहू-बेटियों के यातनामय जीवन की झांकियां मिलती हैं। मां-बेटी और बहू के हृदय की करुण भावनायें हैं। इन गीतों में झुमैलो (शब्द विशेष) टेक के रूप में दुहराया जाता है।

(6) चौंफुला- इन गीतों के साथ एक विशेष प्रकार का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें नृत्य के साथ गीत का गायन होता है ।

(7) कुलाचार- ये गीत वर्ग विशेष 'ओजियों' अथवा दर्जियों द्वारा चैत के महीने में गाये जाते हैं। इन गीतों को गाते समय उक्त वर्ग पसार। (अनाज मांगना) माँगता है। दानी-धमी राजाओं के गीत प्रस्तुत किये जाते हैं ।

(8) जागर गीत- जागर गीत स्थानीय देवताओं के गीत हैं। इन देवताओं को हमने मध्य देवों की श्रेणी में रखा है। इनमें कुछ गाथाओं के रूप में उपलब्ध होते हैं, जो कि गाथाओं वाले अध्याय में देवगाथाओं के अन्तर्गत दिये गये हैं।

(9) होरी- होली सम्बन्धी गीत बहुत कम हैं और जो भी हैं वे हिन्दी में पाये जाते हैं। लोक की अपनी मौलिक विरासत इन्हें नहीं माना जा सकता है।

(10) बारहमासे- ये बारहमासे विरह गीत हैं जो कि साल के आने वाले प्रत्येक महीने को सम्बोधित करके गाये जाते हैं। इन गीतों में शिशिर, हेमन्त, बसन्त, शरद, वर्षा, ग्रीष्म सभी कुछ हैं।

(11) जातियों के गीत- इन गीतों में औजियों के गीत, हुड़क्यों की गीत, बादि्दयों के गीत हैं। औजियों के गीत, चैत के महीने गाये जाते हैं। इन गीतों में दानी-धर्मी राजाओं के आख्यान होते हैं। इन्हें औजी पसारा मांगते हुए गाते हैं। हुड़कियों के गीत अधिकतर पँवाड़े माने जाते हैं क्योंकि आज भी पँवाड़े अधिकतर ये ही लोग गाते हैं। जाति विशेष में बादि्द प्रमुख हैं। गढ़वाल के इस वर्ग को हम गंधर्वों की संज्ञा देते हैं। आदिकाल से आज तक इनका पेशा गीत गाना और गीतों को बनाना रहा है। इस जाति द्वारा बहुत बड़ी संख्या में गीतों का निर्माण किया गया है। इनके गीतों के जनपद में दो विषय रहे हैं (1) असाधारण असामयिक घटनाओं का घटना, और उन असामयिक घटनाओं का काल्पनिक अत्युक्तिपूर्ण वर्णन। (2) सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं नव जागृति के सॉचे में ढले हुए मस्तिष्क की देन। असाधारण, असामयिक घटनाओं और घटना के कार्य-कलापों को लेकर चलने वाले गीत वही हैं जिन्हें 'बाजूबन्द' (गोविन्द चातक) तथा 'चात्खुल्या' (अबोध बन्धु बहुगुणा) नाम गढ़वाली लोक गीत तथा धुंयाल पुस्तक में दिया है। इन गीतों में गयेली, छुमा, र्‍यूड़ी आदि के गीत हैं। जिनके निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय बादि्दयों को है। समय और परिस्थिति के बदलते रूप और रूख के वे गीत हैं जो नये परिवर्ततनों, बदलती समस्याओं, नये जमाने, शिक्षा-दीक्षा, दुनियां का रूख, संस्कृति और देशों की अवस्था, जागृति के गीत, देश प्रेम की राष्ट्रीय भावना के गीत, देश के नेताओं के गीत, 'पलटन' में भर्ती के गीत, भुखमरी तथा खुशहाली सभी विषयों पर बनाये गये हैं।

(12) बच्चों के गीत- जनपद के बच्चे कितने ही खेलों में पद्य का उपयोग करते हैं। कुछ प्रचलित खेल गीत हैं (1) अटगंण-बटगंण-अटगंण-बटगंण द्री दांणीं ममा ल्है छौ सात कटोरी, एक कटोरी, फूट गई, घोड़ै टांग टूट गयी। (2) अक्कू-मक्कू तिल्य तमाखू, भल्लू बेटा सौ। (3) घुघूती बसूती क्या खांदी, दुध भाती, मैं बि देई, जुठू च, ढ़ेस जांदौं, छौं होली, मां देली, मां झुला धोणू जार्यी, त्वेक क्या लौंणां, वेंल दांणी। (4) नौना कती, पंद्र बीस, खांदि क्या छै जौ का झीस, रौंदी, कख, डुमणां

नीस (5) ताति ताति पूड़ी घ्यु मां झकोड़ी, राबण झोली घ्यू, की कमोली।

(13) लोरी गीत· बच्चों को खिलाते तथा सुलाते समय गाये जाने वाले गीत।

(14) जनपदीय नये कवियों द्वारा विरचित गीत - जनपदीय कवियों द्वारा विरचित रचनायें भी लोक साहित्य का एक अंग हैं। इनका गढ़वाली गीत नाम से उल्लेख किया जा रहा है। लोक गीतों की भांति इन्हें भी लोक-मानस ने सहज रूप में अपना लिया है। इसलिये इन गीतों का लोक साहित्य में अपना विशेष स्थान है। लोक प्रचलित उल्लेखनीय कवियों के कुछ नाम इस प्रकार हैं:- (1) सर्वश्री आत्माराम गैरोला (2) चक्रधर बहुगुणा (3) तोता कृष्ण गैरोला (4) भजन सिंह 'सिंह' (5) भगवतीचरण निर्मोही (6) सदानंद जखमोला (7) भोला दत्त देवरानी (8) चन्द्रकुंबर बड़थ्वाल (9) रतलाम्बर चन्दोला (10) योगेन्द्र पुरी (11) गिरधारी प्रसाद कंकाल (12) अबोध बंधु बहुगुणा। उपरोक्त सभी जन कवियों ने सामाजिक समस्याओं को लेकर गीत रचे हैं। सामाजिक समस्याओं का सुधारात्मक पहलू ही गीतों का मुख्य विषय रहा है। इनके अतिरिक्त हिन्दी की सामाजिक कृतियों का भी गढ़वाली बोली में कवियों द्वारा गीत के रूप में अनुवाद किया गया, लेकिन प्रथम प्रयास के इन अनुवाद और गीतों की भाषा सरस और प्रभावोत्पादक नहीं है। इसलिए इनकी जनप्रियता आज भी विवादग्रस्त है। गढ़वाली गीतों के क्षेत्र में सरसता, प्रभावोत्पादकता और अनुकूल शब्द चयन का श्रेय श्री भजन सिंह 'सिंह' दिवंगत श्री योगेन्द्र पुरी, श्री भगवती चरण निर्मोही तथा श्री गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' को है। सरल और सरस बोली में रचे गये इनके गीत आज लोक की 'जवान पर' छाये हैं। श्री भजन सिंह 'सिंह' का मेरी जिकुड़ी मां ब्वै कुयेड़ी सि लौंकी' तथा 'वीर बंधु' दिवंगत श्री योगेन्द्र पुरी का 'ई जिन्दगी को इक दिन आलो' तथा 'ढांगा की अपील', निर्मोही जी का 'या ढ़िम-ढ़िम क्यांकी' तथा 'इकतारा वाला नाथ' और श्री गिरधारी प्रसाद कंकाल का 'हमारो प्यारो हिमवन्त देश' तथा 'समलौण', श्री बलदेव प्रसाद का 'रामी गीत' तथा तारादत्त गैरोला का 'सदेई' को लोक हृदय कभी भी भुला नहीं सकता है। श्री अबोध बन्धु बहुगुणा ने एक नवीन प्रयोग गढ़वाली बोली में सूक्ति दोहावली प्रारम्भ कर किया है। साहित्य के क्षेत्र में गढ़वाली बोली में यह प्रयोग नवीन ही नहीं कवि की सूक्ष्म बुद्धि का परिचायक भी है, जिसमें लोकानुभव दोहों के रूप में साकार हो उठा है।

गढ़वाली लोक गीतों का वर्गीकरण

जनपदीय लोक साहित्य के वर्गीकरण के अन्तर्गत उपलब्ध गीतों के विभिन्न स्वरूपों का उल्लेख किया गया है। गीतों की यह तालिका उपलब्धि के आधार पर दी गई है। यहां हम लोक गीत साहित्य का सभी विद्वानों द्वारा मान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे। विषय और 'तकनीक' को दृष्टिगत करते हुए गीतों के अध्ययन और वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर हम इन्हें निम्नांकित वर्गों में विभाजित करते हैं। वैज्ञानिक आधार पर किया गया हमारा यह वर्गीकरण इस प्रकार है :-

(1) संस्कारों के गीत,

(2) देवी-देवता स्तुति-पूजा त्योहार गीत,

(3) खुदेड़ गीत

(4) ऋतु सम्बन्धी (विरह) गीत

(5) सामूहिक गेय गीत

(6) तन्त्र-मन्त्र के गीत

(7) लघु गीत

(8) जातियों के गीत

(1) गढ़वाली लोक गीतों का सभी विद्वानों द्वारा मान्य वर्गीकरण (तालिका)

(1) संस्कारों के गीत

- जन्म — आनुष्ठानिक
- विवाह — आनुष्ठानिक मांगल
- मृत्यु — आनु-ष्ठानिक; गुणगान की परम्परा (गद्य रूप)
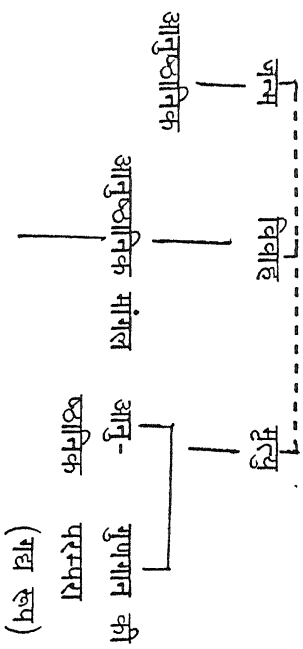
1. स्तुति गीत, 2. न्यूता, 3. बांद, 4. वस्त्र, 5. बारात अलदेन के गीत, 6 तैयारी के गीत, 7. वारात आगमन के गीत, 8. वारात पहुंचने के गीत, 9. धूलि अर्ध के गीत, 10. वर देखने के गीत, 11. कन्या के रूप विषयक गीत, 12. कन्यादान के गीत, 13. फेरों के गीत, 14. छोलके के गीत, 15. ब्याह के बाद के गीत, 16. खाना खिलाते समय के गीत, 17. खाते समय के गीत, 18. दुःख के गीत, 19. बारात प्रस्थान के समय के गीत, 20. कन्या की कौतूहलता के गीत, 21. खुदेगीत, 22. गृह प्रवेश गीत, 23. गाली गीत, 24. जुठा-पिठा के गीत, 25. कंगण खोलने के गीत, 26. गोत्राचार की गाली

(2) देवी-देवता व्रत त्योहार स्तुति पूजा गीत

1. हीत स्तुति 2. धरती माता के गीत 3. कूर्म देवता के गीत 4. भूमिया के गीत 5. हरियाली स्तुति के गीत, 6. पृथ्वी-सूर्य-आकाश विषयक गीत, 7. मण्डाण नृत्य के स्तुति गीत, 8. खितरणाल पूजन 9. हनुमान पूजा गीत, 10.देवी के गीत 11. नगेला, 12. नरसिंग, 13. अग्नि, 14. गंगा माई के गीत, 15. होरी गीत।

(3) खुदेड़ गीत (झुमैलो 'बहू-बेटियों के विरह गीत)

1. माँ को सम्बोधित कर गाये गीत, 2. मायके को सम्बोधित कर गाये गीत, 3. पिता को सम्बोधित कर गाये गीत, 4. भाई को सम्बोधित कर गाये गीत, 5. ऋतुओं को सम्बोधित कर गाये गीत, 6. फल-फूलों को सम्बोधित कर गाये गीत, 7. रीति रिवाजों को सम्बोधित कर गाये गीत, 8. सार-ननद-देवर-जेठ-पति-जेठांण और ससुर के व्ययवहार से ऊब कर गाये गये गीत, 9.चैत महीने को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 10. भादौं को सम्बोधित कर गाये गये गीत।

(4) ऋतु सम्बन्धी — बाहरमासे

1. आषाढ़ महीने को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 2. सावन को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 3. भादौं को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 4. असूज को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 5. कार्तिक को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 6. मंगसिर को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 7. फागुन को सम्बोधित कर गाये गये गीत, 8. चैत को सम्बोधित कर गाये गये गीत।

विरह गीत — सुख-दुःख रीति-रिवाज

9. सास-श्वसुर के अत्याचारों के गीत, 10. ब्याज-कर्ज के गीत, 11. देवर-जेठ के अत्यारों के गीत, 12. पति की उपेक्षा के गीत, 13. सन्देश (रैबार) के गीत, 14. कुरीतियों के गीत।

(2) गढ़वाली लोक गीतों का सभी विद्वानों द्वारा मान्य वर्गीकरण (तालिका)
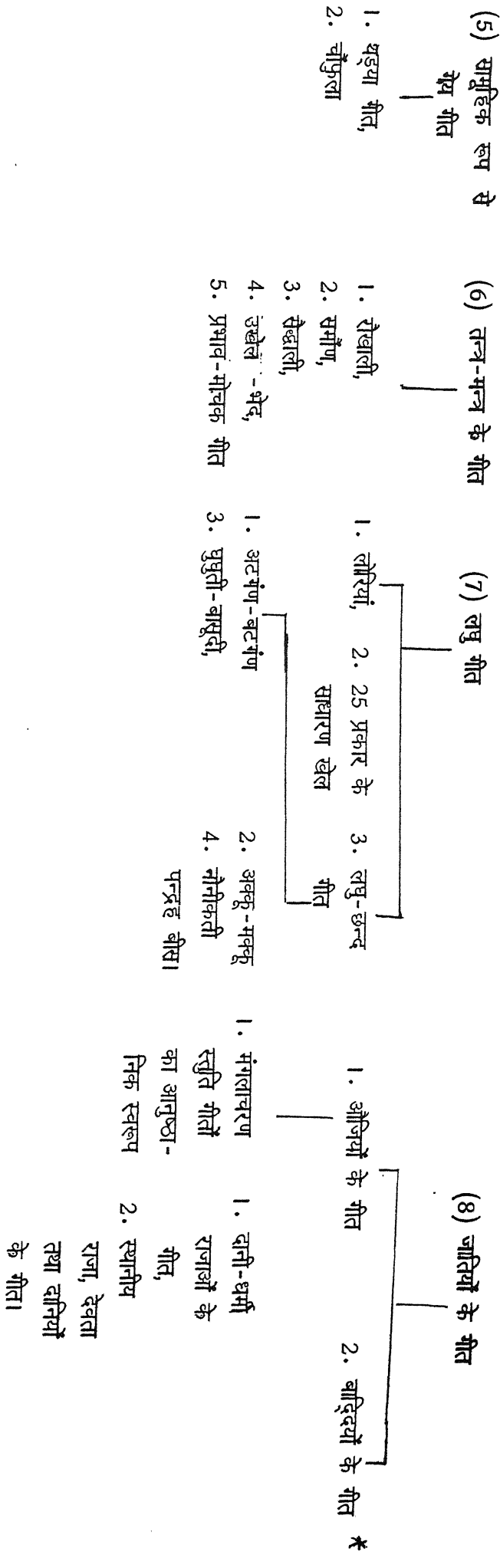
संस्कार गीत

भारतीय धर्म और संस्कृति में संस्कारों की बहुत बड़ी महत्ता है। जीवन की सार्थकता विभिन्न संस्कारों के पूरे होने पर मानी जाती है, अन्यथा उसे अपूर्ण ही कहा जाता है। जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने वाले सोलह संस्कार माने जाते हैं। इन सोलह संस्कारों में (1) जन्म, (2)विवाह, (3) मृत्यु, सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। जनपद में जीवन के इन विभिन्न संस्कारों के दो रूप मिलते हैं। 1. आनुष्ठानिक, 2. लौकिक या लोकाचार वाला रूप। आनुष्ठानिक ब्राह्मणों द्वारा विधि-विधानानुसार सम्पन्न होता है। आनुष्ठानिक पूजा पाठ की पद्धति है। लौकिक या लोकाचार में लोक की मंगलमय वाणी के दर्शन मिलते हैं। लोकाचार का यह रूप गेय है और अधिकतर स्त्रियों द्वारा निभाया जाता है। पुत्रोत्पत्ति पर एक गीत मिलता है, जिसमें लड़की पुत्र-पुत्री के जन्म विषयक समाचार को भौंरे द्वारा अपने माँ-बाप तक पहुँचाती है-

जादौं भौंरा माँजी का पास हमारी,
कुशल मंगल बोली, कल्याण बोल आयी।
जादौं भौंरा बाबा जी का पास, हमारा,
कुशल मंगल सुणैं आयी, कल्याण बोल आयी।
धियान तुमारी बोलण भौंरा,
जाल तोड्यो-रण जीत्यो,
कल्याण बोल आयी, कुशल बोली आयी।

प्रस्तुत गीत में भूमि के देवता भुम्याल, धरती माता, कूर्म देवता, गणेश और नौरण (नारायण) की आराधना की गई है। लोकाचार में मंगल का यह प्रथम रूप है :-

बोला-बोला सगुन बोला, बोला-बोला सगुना बोला।
जौ जस देने कूरम देवता, जौ जस देने धरती माता।
जौ जस देने खोली का गणेश, जौ जस देने मोरी का नारैण।
जौ जस देने भूमि को भुम्याल, जौ जस देने पंचनाम देवता।

जौ जस देने पितर देवता,

तुमारी थाती मायो कारिज वीर्यो, यो कारिज सुफल फल्यान।

लोकाचार में देवताओं को इस सगुन कार्य में एक गीत में न्योता (निमन्त्रण) दिया गया है। न्यूते गये देव ब्रह्मा, औजी, हल्दी का खेत, मंगल्यारी और धान के खेत हैं।

पैल्हे न्यूते पैल्हे न्यूते वेद मुखी बरमा।

आज चैंदा बरमा जी को काज।

तब, तब न्यूते, तब न्यूते औजी को बेटा।

आज चैंदा बढ़ाई का काज।

आज न्यूति याले मैना हलदान बाड़ी,

आज चैंदा हलदी को काज।

आज न्यूति याले मैन मंगल्यानी नारी,

आज चैंदा माँगल को काज।

आज न्यूति याले मैन जंड़ी पड़ी गाई,

आज चैंदा गोबर को काज।

आज न्यूति याले मैना सट्यूंकी सटेड़ी,

आज चैंदा मोतियों को काज।

मंगल स्नान के लिये तैयार बैठी लड़की का, सुहागिन स्त्रियों, सखियों एवं भाभी के लिए आमन्त्रण के लिए आग्रह है-

न्यूति बुलावा सुहाग सुहागणी

न्यूति बुलावा बैणी दगण्यार्यों।

न्यूति बुलावा तुम बौजि मेरी,

करावा मैं मंगल असिनान।

मंगल स्नान के लिए बैठी लड़की अथवा लड़के को देवतुल्य समझा गया है। वर को ब्रह्मा, शिव का बेटा तथा कन्या को पार्वती, सती, सावित्री माना गया है। ममता-मोह में पाली अपनी लड़की को

देव कन्या के रूप में लोक ने देखा है। कुंडी (स्नान का स्थान) का पानी कौज्याल (गँदला) हो गया है। सूर्य की कान्ति धीमी पड़ गई है। धौली का पानी मटमैला हो गया है और सिन्धु में लहर उठ रही है। क्योंकि उनकी लाड़ली स्नान कर रही है। उनकी लाड़ली (कन्या) लक्ष्मी, पार्वती, सीता की कन्या जो है।

केन होये केन होये कुण्डी कौज्याल,
केन होये केन होये सुरीज धुमीलो।
नहेंण लागी लछमी जी कि लाडी,
तब होये तब होये कुण्डी कौज्याल, सुरीज धुमीलो।
केन होये केन होये सिन्धु छल्वार,
नहेंण लागी पार्वती जी कि लाडी।
तब होये तब होये सिन्धु छल्वार।
केन होये केन होय धौली धुमैली,
नहेंण लागी सीता जी कि लाडी।
तब होये तब होये धौली धुमैली।

वेदी बनाते समय मंगल्यारियाँ यह मंगल गीत गाती हैं:-

के केकी बुबाजी बेटी चिणैल्या।
के केका बुबाजी अस्तम धैंटैल्या।
के केका बुबाजी सुतर सरैल्या,
के केका बुबाजी आसण बिच्छैला,
के केका बुबाजी आसण पुरैल्या।

बेटी की उत्कण्ठा पर पिता, आत्म विभोर होकर बेटी को धीरज बंधाते हैं- सोना-चाँदी की बेदी, रूप के स्तम्भ, सोने के सुतर, केसर कुमकुम से वेदी को 'छीपनें' और मोतियों से चौक भरने के लिए कहते हैं :-

सोना चांदी कि मैं बेदी चिणौलो,

रूप का मैं दिव्य असतंभ घैंटोलो।

सोना का मैं ओ सुतर ससैलो।

केसर कुमकुम मैं बेदी छिपौंलो।

गज मोतियों को मैं चौक पुरौलो।

मंगल स्नान में लड़की-लड़के दोनों को 'बाँद' दिये जाते हैं। इस क्रिया में सुहागिन स्त्रियाँ 'टुवले' (दूर्वा) के गुच्छे को तेल तथा हल्दी में भिगोकर प्रथम पैर फिर घुटने पश्चात् कन्धे और अन्त में सिर से छुआकर अपने सिर पर छुआती हैं। यह क्रिया पांच बार होती है। इसे 'बाँद' देना कहा जाता है। मंगल गीत इस प्रकार है :-

बाँद देली दीदी स्वार्गीणा,

बाँद देली चाची स्वार्गीणा।

बाँद देली बौजी स्वार्गीणा,

बाँद देली माँजी स्वार्गीणा।

लड़की के वस्त्र पहने पर -

पैर-पैर लाडी मेरी यों कपिड्यो,

बाबा जी तेरा लैना बजार मुलैकी,

माँजी ना तेरी पिटारी साजी,

पैर-पैर लाडी मेरी रेशमी कपड़ी।

सहेलियाँ कन्या के गहने देखती हैं। गहनों के लिए कन्या का दिल बाँसों उछलता है। इस गीत में सहेलियों द्वारा कन्या की गहनों की माँग को दुहराया गया है। गीत में उसने गहनों से लादी जाने की कामना की है। हाथी और घोड़ों को लादकर सोने और चाँदी की माँग की है :-

मैं देण बाबा जी कड़ा झयोंरी,

मैं देणा बाबा जी हाथ की पौंछी, गला को हार।

मैं देणा बाबा जी नाक नथूली, सुहाग बेंदी,

मैं देणा बाबा जी शीश-फूल चलमांदो,

मैं देणा बाबा जी हस्ती लादी सोनो।

मैं देणा बाबा जी घोड़ा लादी चाँदी।

बारात कन्या के घर के समीप पहुँचती है। बारात के आगमन पर एक गीत में कौन दल-बल सहित आये, कौन बारात लेकर आया? पिता जी को सतर्क करने की भावना तथा पिता द्वारा वर नारायण को पिठाई लगाने के भाव व्यक्त किये मिलते हैं-

कै भड़ को आई होलो यो दल बल,

कै भड़ की आई होली या पिंगली पालकी।

केकू सेन्दा बाबा जी निन्द सुनिन्द,

यै गेन बाबा जी जनती का लोग।

नी सेन्दू बेटी मैं निन्द सुनिन्द,

तेरी जनीत कांदा ओगी लौलू।

बरमा जी करला गणेश की पूजा,

वर तैं लगौलू मंगल पिठाई।

इस मांगलिक पर्व पर वर को मीठी चुटकियाँ दी जाती हैं। ये मीठी चुटकियाँ गाली हैं। इन गालियों को मंगलमय समझा जाता है। गीत में बहिन, फूफू लाने के लिए कहा गया है, तथा उनके नीच जातियों द्वारा लूटे जाने की गाली दी गई है।

ये खुली केकू आयो बंदड़ा, फूफूजी निलायो।

लौंण कोत लाई गेछौं, चमारून लूटे।

येखुली केकू आयो बँदड़ा, दीदी जी निलायो,

लौंण कोत लाई गेछौ, बलारून लूटे।

द्वार पहुँचे वर का धूलि-अर्ध संस्कार होता है। पण्डित मन्त्रोच्चार करता है। लोकाचार में वर को पहिचानने की उत्कण्ठा का समाधान वर की वेश-भूषा की ओर संकेत करके किया गया है और उसे अर्ध देने के लिए गीत में कहा गया है-

जाणदो निछौं मीं पछांणदों निछौं,
कै देण धूलि अरघ ?
कै देण शंख कि पूजा ?
जैको होला-जैका होला पांऊ खड़ाऊ,
ओ हो लो धिया को धुमैलो, सीस कि शोभा।
वयी देवा धूलि अरघ, शंख कि पूजा।
जैका होला हाथु कंगण,
कानू कुण्डल, सीरो, सिरमा पगड़ी,
जैको होलो झिलमिल जामो,
मोत्यों जड़ित दुशालो, पीताम्बर धोती,
वई देण वई देण धूली अरघ।

कन्यादान की महत्ता सर्वविदित है। जनपद में कन्यादान के समय गाये गये इस गीत में अन्न-धन, तथा गज-दान से कन्यादान सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है। इसलिए गीत में कन्यादान सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है और कन्यादान देने के लिए पिता से आग्रह किया गया है:-

दे देवा बाबा जी कन्या को दान,
दानू मा को दान कन्या को दान।
जिमिदान भूमिदान सब कोई देला,
तुम देल्या बाबा जी कन्या को दान।
हीरा दान मोती दान सब कोई देला,
को भागी देलो कन्या को दान,
हेम दान गज दान सब कोई देला,
तुम देवा बाबा जी कन्या को दान।

तुम ह्वेला बाबा जी पुण्य का भोगी,

तुम देल्या बाबा जी गौ कन्या दान।

कन्यादान के पश्चात् 'भाँवर' संस्कार होता है। भाँवर को जनपद में 'फेरा फेरना' अथवा 'फेरा भौंरा' कहा जाता है। लोकाचार में फेरा फेरती हुई कन्या क्वांरी के माँ-बाप, सहेलियाँ, चाची, भाई के प्रेम के साथ सुहागन होने का उल्लेख मिलता है -

पैलो फेरू फेर लाडी, कन्या छै कुंवारी,

दूजो फेरू फेर लाडी, मां जी कि प्यारी।

तीजो फेरू फेर लाडी, बाबा जी कि प्यारी।

चौथू फेरू फेर लाडी, सासू जोड़ियो कि प्यारी।

पांचौं फेरू फेर लाडी चाची कि प्यारी।

छटो फेरू फेर लाडी, भाई की पियारी।

सातौं फेरू फेर लाडी ह्वेगेयी पराई।

बारात प्रस्थान करने को होती है। उदास वातावरण के बीच अपरिचित स्थान की कल्पना से वधू का मन भयभीत हो उठता है और पिता द्वारा लड़की के भाई भेजने, दलबल के साथ हाथी-घोड़े, दास-दासी, और भैंस बकरियों की तांद (झुण्ड) देने का विश्वास दिलाया गया है -

काला डांडा पीछ, बाबाजी काली छ कुयेड़ी,

बाबाजी यखुली मैं लगदी छ डौर

येखुली मीं कनकै जौंलो, बिराणा विदेश।

आगी दिउलो बेटी, त्वे सकल जनीत,

पीछ दिउलो बेटी, त्वे-हाथी घोड़ा।

त्वे दगड़ जाला लाडी, तेरा दिदा भुला,

त्वेतैं बेटी येखुली नि भेजू।

आगे दिउलो बेटी त्वे दास व दासी,

पीछ दिउलो त्वे भैंसों की खरक।

गायों को गुठ्यार दिउलो,

बखरियों की दिउलो गोठ।

पर मेरी लाडी त्वे येखुली नि भेजूं।

आनुष्ठानिक रस्मों के बाद वधू का गृह-प्रवेश होता है। प्रवेश करती हुई वधू साक्षात् लक्ष्मी का रूप होती है। एक गीत में शुभ घड़ी में प्रवेश करती इस साक्षात् लक्ष्मी की महिमा का बखान किया मिलता है-

शुभ घड़ी शुभ दिन आयी सुहागिन,

हम घर, हम-घर, आयी सुहागिन,

अमरित सिंचदी आयी सुहागिन।

शुभ-दिन, शुभ-घड़ी आयी सुहागिन,

कोठड़ी दिपकण लैगे सुहागिन।

शुभ-घड़ी, शुभ-दिन आयी सुहागिन।

'थापगा' (जहां पर वर के संस्कारों की पूजा होती है) के सामने कंगन तोड़ने का संस्कार सम्पन्न होता है। वर-वधू की अन्त में आरती उतारी जाती है तब लोक की मांगलिक वाणी गूंज उठती है-

बणांवा बणांवा मैदा का दिवड़ा बणांवा,

कर रम्भा आरती।

कपिला गौ को होलो दधि दूद शुद्ध,

ये दूध अर्घ देउला।

रेणू पिठाई होली राम सगूनी,

ईं रेणू शीस चढ़ौला।

गंगा-जमुना को जल चपवेतर,

ये नीर अर्घ चढ़ावा।

प्रभातकालीन पुण्य पर्व पर जागरण के लिए स्तुति की गई मिलती है -

प्रभात को परब जाग, गौ सरूप पृथ्वी जाग,
धर्मस्वरूप आकाश जाग, उदयकारी कांठा जाग।
भानु पंखी गरूड़ जाग, सतलोक जाग।
मेघ लोक जाग, इन्द्र लोक जाग।
सूर्य लोक जाग, चन्द्र लोक जाग।
तारा लोक जाग, पवन लोक जाग।
बरमा का बेद जाग, गौरी का गणेश जाग।
हरो-भरो संसार जाग, जन्तु जीवन जाग।

इस गीत में भी देवी-देवताओं की स्तुति की गई है-

'बीजी जावा बीजी हे, खोली का गणेश,
बीजी जावा बीजी हे, मोरी का नारैण।
बीजी जावा बीजी हे, खतरी का खैडौं।
बीजी जावा बीजी हे, कुन्ती का पंडौं।
बीजी जावा हुवेगे उदैगिरी कांठ्यो उदकारो।
बीजी जावा बीजी हे, नौ खण्डी नरसिंग,

स्थानीय हीत देवता की स्तुति में यश की कामना की गयी है-

'पोखरी का हीत जय-जश दे।
तेरि थाती आयो जय-जश दे।
भेंट्रलि क्या लायो, जय-जश दे।
सोवन धुषाणी लायो जय-जश दे।
मोत्यूं भरी थाली लायो जय-जश दे।
थाती तेरी आयो जय-जश दे।
पोखरी का हीत जय-जश दे।

प्रस्तुत गीत में निर्विघ्न कार्य के लिए स्तुति की गयी है:-

देव खितरपाल घड़ी-घड़ी का विघ्न टाल।
माता महाकाली का जाया, चंड भैरों खितरपाल,
प्रचण्ड भैरों खितरपाल, काल भैरों खितरपाल,
माता महाकाली को जायों, बूढ़ा महारूद्र को जायो।
तुम्हारो ध्यान जागो, तुम्हारो ध्यान जागो।

इस स्तुति गीत में नगेला देव की कृपाओं का उल्लेख है -

नगेलो आयो, जसिलो देवता।
नगेलो आयो, रैति देंद जस।
नगेलो आयो, मुलक लगे धेऊ,
नगेलो आयो, बजीरा की गादी।
नगेलो आयो, तै मौतू का सिर।

स्थानीय भगवती ज्वालपा की पूजा करती हुई एक युवा लड़की समवयस्क पति पाने के लिए प्रार्थना करती है :-

मेरी देवी ज्वालपा, सौंजड़्या दे मिलाई।
सौजड़्या की खौरी, सौंजडेया दे मिलाई।
तेरी जातरा आई, सौंजड़्या दे मिलाई।
त्वेकु भेंटलु लायी, सौंजड़्या दे मिलाई।
सोना की धुपाणी, पाथा सेली चौंल।
मेरी मैत की देवी सौजड़्या दे मिलाई।
सौंजड़्या की खैरी, सौंजड़्या दे मिलाई।
मेरी देवी ज्वालपा सौंजड़्या दे मिलाई।

आदि शक्ति जगदम्बा के भव्य-स्वरूप की आराधना के इस गीत में सृष्टि के निर्माण और जगदम्बा के शक्ति-स्वरूप के दर्शन होते हैं:-

जै जगदम्बा भाख बाणी,

सर्वाणि चंडिका माई।

आदि संसार की आदि माया,

यो पिण्ड तैने उपजाया।

महालक्ष्मी महा नारैणीं,

जै जगदम्बे तेरो ध्यान जागो।

जनपद में पँय्या को पवित्र और शुद्ध माना जाता है। मांगलिक कार्यों में इसका पूजन होता है। लोक प्रचलित एक गीत में धूप-दीप से पंय्या का पूजन किया मिलता है:-

'सेरा की बिंडोली नै डाली पंय्या जामी,

कूली का ढिसोली नै डाली पंय्या जामी।

चला दीदी भुल्यौं नै डाली पंय्या जामी।

क्वी भीटो काट्योंला नै डाली पंय्या जामी।

क्वी ढुंगा चाड्योंला नै डाली पंय्या जामी।

दु पत्ती हूंवे ग्याय नै डाली पंय्या जामी।

द्यू करा धुपाणों नै डाली पंय्या जामी।

रैमासी के पुष्प शिव-पार्वती को बहुत भाते हैं। देव-दर्शन व अर्चना के लिए रैमासी पुष्प चाहिए। इस गीत में पूजा के लिए इस पुष्प के विषय में वर्णन मिलता है :-

'रैमासी को फूल कविलास,

कै मैना फूल लो कविलास।

को जालो हूँचला कविलास,

कै देब सुहालो कविलास।

मादेव सुहालो कविलास।

पारवती सुहालो कविलास।

पूजा को चहेंद कविलास।

गंगा के स्वरूप को सुहागन का स्वरूप कहकर स्तुति की गई है :-

'गंगा माई इनी मातमी माई।
त्वैन उत्पत्ति लीनी हिमालय की गोद।
विष्णु चरण से छूटी शिव जटा समाई।
शिव जटा छूदे मृत्यु मंडल आई।
तेरी जातरा औंदा देशू-देशू का लोग।
सोवन की जटा माता।

पर्व- 'त्यौहारों' में जनपद में होली की खुशी में गाये गीत मिलते हैं। लगभग सभी गीत स्पष्ट हिन्दी भाषा में मिलते हैं, जिन्हें त्यौहारों के अवसर पर पुरूष वर्ग द्वारा गाया जाता है-

(1)

'ब्रज मंडल देश देखो रसिया।
हमरे मुलक में गेहूं बहुत है।
पीसत नारी पकावत पूरी, छको रसिया।
हमरे मुलक में धान बहुत है।
कूटत नारी पकावत भात, छको रसिया।'

(2)

'भोले नाथ दिगम्बर सब दुख मेरो हरो
चन्दन चावल बेल की पतिया शिवजी के माथे धरो।
होरी खेलें सदा शिवजी घननन् घना,
चलत पिचुकारी सननन् सना।
भोले नाथ दिगम्बर सब दुख हरो मेरो।'

(3)

'हे जी द्रोपद राज, लाज राखो हमारी,
दुरपति स्वयंबर में भूपति आये,
आये बड़े महिपाल, राखो लाज हमारी।
सूर्या को बेटा करण धुनधारी,
हार गयो मछि भेद, राखो लाज हमारी।
तब तो सभा में अरजुन आया,
छेद लियो मछिभेद, राखो लाज हमारी।

खुदेड़ गीत

पर्वतीय प्रदेश के विस्तृत निर्जन भू-भाग, ऊंची उठी पर्वत श्रेणियाँ, घने जंगल, सटे डाँडे और धनेरे धुन्ध ने, गीतों की एक नयी श्रृंखला को जन्म दिया है। जनपद में प्रकृति की यह विषमता जहाँ इस विशेष शैली के गीतों की अभिव्यक्ति में सहायक रही है, वहाँ स्थानीय परम्पराओं ने भी बहुत हद तक इन्हें पोषित किया है। अल्पकाल में ही माँ-बाप, भाई-बहन, ग्राम और जानी-पहिचानी भूमि से दूर, बहुत-दूर कितने ही डाँडों के पीछे दुःखी बाला के ये गीत हैं, जिन्हें उसने माँ-बाप, भाई-बहिन, मायके, ऋतु, फल-फूल, रीति-रिवाज, ससुराल के व्यवहार और अपनी असहाय अवस्था में "मायके की याद से विकल' होकर गाया है। उन बेटियों और बहुओं के ही ये घुटन गीत हैं, जिन्हें जनपद में 'खुदेड़' गीत नाम दिया गया है। इन गीतों में 12 महीनों की बाहर रस्में, छ ऋतुओं की मादकता, प्रकृति का नित नया रूप, भाई-बहिन, माँ-बाप की ममता, ऋतुओ की रस्याल, 'बुलौण्यों' और 'पठ्यौणों' से की गई मिन्नतें, अभागिन की मातृविहीन अवस्था में अपने को कोसने की भावना, जनपद के रीति-रिवाज, त्यौहार-व्रत, सामाजिक कृत्य, ऊंची उठी चोटियों की निर्दयता, प्रकृति को कोसने के भाव, पशु-पक्षी और व्यथित हृदय के रैबार (सन्देश) सभी कुछ हैं। बसन्त पंचमी के अवसर पर बालिका का हृदय मायके जाने के लिए रो उठता है। 'आई पंचमी मऊ की' गीत में मायके जाने की उत्कण्ठा और मन को समझाने की ओर संकेत दिया मिलता है :-

'आई पंचमी मऊ की,

बाँटी हरियाली जऊ की।

आयो मैना चैत को,

बाटो बतै मैत को।

मैत वाली मैत होली,

निरमैतीण रोली इखुली।

एक दूसरे गीत में चैत के महीने में फूलों के खिलने और पेड़ों के हरे-भरे होने के साथ छोटे भाई की 'खुद' की ओर संकेत किया गया है:-

मैना आयो चैत को,

हरी ह्वेन डाली बबै,

मी खुद लगीं भुलौं की।

बाबा मी बुलौंदु नी,

खुद लगीं मैत की।

जौलू अब मैं मैत,

जै क खुद विसरौलू,

छकी रोलू बूबै मूँ।'

मिलते-जुलते भाव वाले इस गीत में ऋतुओं के आगमन और मायके बुलाये जाने के 'बगत' (समय) के साथ भाग्यवान् और भाग्यविहीन बालिका के मनोभावों का तुलनात्मक विवरण मिलता है-

'उलार्या मास यैगे खुदेड़ बगत,

बारा ऋतु बौड़ी ऐन, बारा फूल फूली गैन।

औंदौं की मुखड़ी हेरद्,

जाँदौं की फिल्वाड़ी।

निर मैतीण छोरी बोदी मैं उमलीऔं,
भाग्यानों का भाग होला जौंका पीठी जौंल भाई,
मैत बुलाला रीत जणाला।

जनपद में प्रचलित इस खुदेड़ गीत में प्रकृति रूपी नवेली वधू का वह आकर्षक रूप देखने को मिलता है, जिसने उस बालिका को झकझोर दिया है -

'आई गैन ऋतु बौड़ी, दांई जस फेरो,
फूली गैन बणँ बीच ग्वीराल बुरॉस,
झपन्याली डाल्यूँ मा घूघूती घूरली,
गैरी-गैरी गदन्यो मा म्योलड़ी बोलली।
ऊँची-ऊँची डाल्यूं मा कफू बांसलो।
मौलली भाँति भाँति की फुलेर डाली,
गेऊँ जौ की सारी सैरी पिंगली ह्वे न।

भादों का महीना आने पर उसे मायके जाने की आशा हो जाती है। गीत में वह अपने मन को बुझाती है और बेटियों के मायके आने, ससुराल की बात लगाने और सामूहिक रूप में गीत गाने की कल्पना करती है-

'भादौं कु मैना बौडिकी यैगे
खुदेड़ पराणीं उलार लैगी
द्वि दिन अब मैत मैं जोलूं
मै-बाप तैं मिलीकी ओलू
सैसुर की ब्वारी अब मैत आली
सासु सैसुरियों का हाल बताली
घास पात कू बौंण जाली
ब्वै मांगीत मन का लाली।'

आशा और निराशा के बीच उसका मन झूलता रहता है। उसे अभी तक मायके नहीं बुलाया गया है। कफ्फू को वह प्रस्तुत गीत में गाने के लिए कहती है ताकि उसके मायके वाले सुनें, उसकी माँ सुने और उसे जल्दी से मायके बुलाये -

बास-बास कफ्फू भैझुमैलो, मेरा मैत्यो का चौक भैझुमैलो
मेरा मैती सुणला झुमैलो, ऊँ खुद लगली झुमैलो
जोड़ी सौजोडियों भैंझुमैलो, बाडुली लगली झुमैलो
मेरि बोयी सुणली झुमैलों, भैजी मेरा भेजली झुमैलो
मेरि माँ की चुल्ली भैझुमैलो, आग भभराली भै झुमैलो।'

जहां एक ओर वह कफ्फू से अपना रैवार भेजती है वहीं दूसरी ओर एक गीत में घुघती को मायके की ओर 'बासने' से रोकती है -

'मेरा मैत का देश न बास, न बास घुघती।
बोई सुणली आंसू ढोलली, बाबा सुणलो सासु मानलो
नणद सुणलीताणा मारली, ना बास घुघती।'

त्यौहार लौटकर आ गये हैं लेकिन उसे लेने मायके से कोई नहीं आया है:-

'फेर बौडीगे स्यो झुमैलो, फूल-संगराँद भैंझुमैलो
पापड़ी त्यौहार झुमैलो, बातुल्या तमाशा झुमैलो
जौंको क्वी होली मैं झुमैलो, कौथिक मिललो मैं झुमैलो
अपणा-बिराणा झुमैलो, मिठायी ल्याला भैं झुमैलो
निरमैत्या घियाण झुमैलो, बंणु-बंणु बयाली झुमैलो
च्वींण् को अपणो झुमैलो, चांथपियारो भैं झुमैलो
येकुली नारी भैं झुमैलो खरड़ी डाली सी झुमैलो।'

ऋतु गीत

ऋतुओं सम्बन्धी विरह गीत वर्गीकरण के अन्तर्गत जनपद में प्रचलित वे सभी गीत आते हैं जिनमें स्त्रियों द्वारा अपनी विरह वेदनाओं को व्यक्त किया गया है। दाम्पत्य जीवन के अभाव इन गीतों में वेदना बनकर अभिव्यक्त हुए हैं। इन गीतों के एक वर्ग को बारहमासा भी कहा जाता है। साधारण रूप से इस वर्गीकरण के अन्तर्गत वे सभी गीत आ जाते हैं, जिनमें स्त्रियों की विरह वेदनाओं की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। बारहमासा गीतों में विभिन्न महीनों में विरहिणी के शरीर पर बीतने वाली असह्य वेदनाओं का चित्रण मिलता है। ये गीत उन सभी धरती की पुत्रियों के हैं जो बहू बनकर इन्हें गाती हैं और हृदय की दाह बुझाती हैं। चौमासा में बाट जोहती वियोगिनों की अन्तर्वेदना गीत में साकार हो उठी है :-

आऊ-आऊ चौमासा त्वे जागी रयो
मेरा स्वामी को मन निठुर होयो
घर-बार छोड़ीक विदेस रयो
हाय मेरा स्वामी क्या खोये मैंन
तुम्हारी प्रीति से न्यारि होयो।

समानार्थी इस दूसरे गीत में पति घर लोटने के लिए वह प्रार्थना करती है :-

'भादौ की अंधेरी झकझोर, ना बासना-बास पापी मोर
ग्वेरू की मुरली तू तू बाज, भैस्यों की धांड्योंन डांडू गाज
तुम मेरा स्वामी कनी सूझी, आँसून चादरी मेरी रूझी
तुम्हारा बिना क्या लाणी-खाणी, मन की मन माँ रैन गांणीं
अब आला स्वामी करदू गांणी, आख्यों की रोयी नी सकदू थामी।'

जनपद में प्रचलित इस दूसरे गीत में भी नारी के हृदय की समानार्थी अभिव्यक्ति मिलती है-

'आयो महीना चैत को हे दीदियों।
उठीक फुलारी झुस-मुस लै गैन काम
मैना आयो बैसाख को सुख कीनी आस
ग्यों जौ का पूलौं मूड़ी कमर पड़ीगी झास।
आयो महीना जेठ को भक्को ह्वेगी भौत
स्वामी मेरू घर नी समझी रह्यो भौत
मास पैलो बसगाल को आयो वो असाड़
मैं पापणी झुरी-झुरी मास रयो न हाड़।

पति वियोग और ससुराल की यातानाओं से दुःखी बहू अपने भाग्य के लिए रोती है -

निरदयी स्वामी नी देंद चीठी
निरदयी स्वामी नी औंद घौर
फुलू मा फूल सब फूली गैन
निरदयी स्वामी भी भूली गैन
जौं बैण्योन काटी रौल्यों को घास
सो बैणी ह्वेन मिडिल पास
जौ बैण्योंन सारी तौल्यों पाणी
सी बैंणी ह्वेन राजौं की राणी
बाबान देन खुटू का बूट
कर्मन बोली झंगोरू कूट
बाबान देन दस रुप्या फीस
किस्मतन बोली मँडुवा पीस।

गीत की निम्न पंक्तियों में तो नारी हृदय स्वतः ही फूट पड़ा है। अपने को रोकती-रोकती वह कह ही उठती है 'मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी' :-

सामूहिक गेय गीत

गीतों के इस वर्गीकरण में हमने जनपद में प्रचलित उन गीतों को रखा है, जिनमें सामूहिक वृत्ति पाई जाती है। सामूहिक वृत्ति से हमारा उद्देश्य, लोक की उस सामूहिक वृत्ति से है, जिसकी सन्तुष्टि के लिए स्त्री-पुरूष सामूहिक रूप से विभिन्न अवसरों पर गीत गाते हैं। इस प्रकार विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले 'सामूहिक वृत्ति वाले' गीतों को हमने सामूहिक रूप से गाये जाने वाले अथवा सामूहिक गेय गीत नाम दिया है। इन सामूहिक रूप से गाये जाने वाले गीतों में जहां गाने की सामूहिक प्रवृत्ति मिलती है वहां इनमें नृत्य (अभिनयात्मकता) की भी प्रधानता है। एक विशेष प्रकार के नृत्य (जिन्हें नृत्यों के वर्गीकरण के अन्तर्गत थड़्या गीत नृत्य तथा चौफुला नृत्य) के साथ इन सामूहिक वृत्ति वाले गीतों का गायन मिलता है। जनपद में मुख्यतः दो विशेष अर्थ बोधक नामों से इन्हें पुकारा जाता है-

(1) थड़्या गीत तथा (2) चौफुला। इन गीतों की यह सामूहिक वृत्ति, अर्थ विशेष की द्योतक है। साधारणतया सामूहिक रूप से गाये जाने वाले इन गीतों में लोक नायकों के ही चरित्र हैं लेकिन इन गीतों का विषय-विस्तार लोक गाथाओं की भाँति नहीं है। गजेसिंह का एक ऐसा ही गीत जनपद में प्रचलित है:-

'राणीहाट नी जाणों गजेसिंग, हलजोत का दिन गजेसिंग,
छी दारू नी पीण गजेसिंग, राणिहाट नी जाणू गजेसिंह,
हौंसिया छैं वैख गजेसिंह, बड़ा बाबू को बेटा गजेसिंग
त्येरा कानु कुण्डल गजेसिंग, त्येरा हाथु धागुला गजेसिंह,
त्वे राणी लूटली गजेसिंग, राणिहाट नी जाणं गजेसिंग।

नर-बलि प्रथा भी प्राचीन काल में प्रचलित थी। प्रस्तुत गीत में एक ऐसी ही बलि का वर्णन है जिसमें बहू को बलि देने से पहले उसके मायके भेजा जाता है :-

जीरी झमकौ तै बड़ेरी सेरा जीरी झमकौ,
जीरी झमकौ अैं कूल नी औंदी जीरी झमकौ

लोखारी सेरी भै जीरी झमकौ साणी हैगैन बाँणी

हमारी ई सेरी जीरी झकौ केको होऐ दोष

बोनो क्या च मैन जीरी झमकौ मनखी बलि चैंद

नौना का बाबा जी जीरी झमकौ क्या बुद करला

छोटा भुला की बँवारी जीरी झमकौ तू मैत जायौदों जीरी झमकौ

ब्वे बाबु देख्योदौं झमकौं भै बैणौ भेट्यौ दौं जीरी झमकौ

गोविन्द फुलारी और रानी विसल्या की प्रेम गाथा का गीत प्रस्तुत है:-

'जैका झार गोविन्द फुलारी जैका झार

येक हाथ लेन्द, रूपसी हिगोसी

दूजा हाथ लेन्द सोबन ठोपरी

फूलू को पियारो फूलू संग रौंद

जै लाग्यो गोबिन्द फूलू का बागृवान्

राणी विसल्या फूलू की पियारी

राणी का रंग न छलेगे फुलारी

राणी विसल्या पूछण लगीगे

× × ×

का गयो गोविन्द पांण्डो को पियारो।'

बेटी की अकस्मात् मृत्यु से मां को गहरी चोट लगती है। गीत में मां की ममता साकार हो उठी है :-

'भेरि उन्याल्या माड़ी ब्वे बीजी जा दी

लाडुली बेटुली हे बीजी जादी

तेरी कनी निदंरा हे बीजी जादी

सिरवाणी को धाम हे बीजी जादी

पैताण्यो आयीगी हे बीजी जादी

दंगड़ा की पंद्यारी हे बीजी जादी

पांणी ल्ही की यैन हे बीजी जा दी

दंगड़ा का दगण्याणी हे बीजी जा दी।'

खाती राजा अर्जुन स्वप्न में वासुदेवा (नाग कन्या) को देखता है और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वह नाग-लोक चलने की तैयारी करता है। गीत में स्वप्नावस्था से जागकर अर्जुन वासुदेवा की प्रशंसा करता हुआ नागलोक जाने की इच्छा व्यक्त करता है। रानी उसे मनाती है लेकिन राजा नहीं मानता तो वह भी साथ चलने की अपनी इच्छा व्यक्त करती है :-

'क्या सुपिनो होये मेरा राजा, राती का विखैमा मेरा राजा

सुपिना मा देखे मेरी राणीं, वसुधरी कोठा मेरी राणी

जै रांणी को होलो ठैं-ठैं को रंग।

कोठायों झुलालो मेरी राणीं

स्यूदोलो दिखेंद मेरी राणीं

चैली जैसो फाट मेरी राणीं।'

सभी सखियां अपने पतियों के साथ झूम-झूम कर चौंफुला गा रही हैं लेकिन वह उदास है क्योंकि उसका पति साथ नहीं है :-

'सबून चौंफुलो गाये झूमी

ईश्वर तू कैका रंग भूली

तू बी गयो मऊ पूस आयो

नी आयो स्वामी मी जागीरयो।'

तन्त्र-मन्त्र के गीत

इस वर्गीकरण के अन्तर्गत जनपद में प्रचलित वे सभी गीत आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध भूत-प्रेत जैसी अनिष्टकारी आत्माओं से है और मन्त्र-तन्त्रों की विशिष्ट पद्धति द्वारा जिन्हें भगाया जाता है अथवा जिनके प्रभाव से ग्रसित व्यक्ति को मुक्त किया जाता है। इन मन्त्र-तन्त्रों के गीतों का प्रचलन जनपद में बहुत मिलता है। गीतों की भाषा उत्तेजक और प्रभावोत्पादक है। प्रस्तुत गीत में भूत के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए गुरू गोरखनाथ से प्रार्थना की गयी है:-

'ओं नमो बभूत माता बभूत पिता बभूत तीन लोक तारर्णी
ओं नमो बभूत माता बभूत पिता सर्व दोष की निवारर्णी
ईश्वर औंणी गौजाली छाँर्णी
अनन्त सिघौं ने मस्तक चढ़वाणी
चढ़े बभूत निपड़े हाऊ
रच्छा करे आतम विस्वामीगुरू गोरकनाथ
जरे-जरे घरे तरी फले धरेती माता गायत्री चरे।'

प्रस्तुत गीत में रोग ग्रसित व्यक्ति के उपचार के लिए विभिन्न देवों की मनौती की गई हैं:-

'रच्छा करी बटुक नाथ भैरों
चौड़िया नारसिंग, वीर नैंरतिया नारसिंग
ढ़ौंढ़िया नारसिंग, चौरंगी नारसिंग
फोर मंत्र ईश्वरो वाच।
ओम नमो आदेश, गुरू को आदेश
प्रथम सुमिरो नादउद भैरों
द्वितीय सुमिरोब्रम्हा भैरों
तृतीय सुमिरो मछेन्द्रनाथ भैरों

चतुर्थ सुमिरो चौरंगीनाथ मुन्ड को मुडारो उषेल,

गति को ज्वर उखेल,

पीठी को सलको उषेल,

बार विथा छत्तीस बलई तू उषेल रे वीर बाबा।'

मनौती का एक गीत प्रस्तुत है :-

'ॐ मनो रे बाबा गुरू को आदेश जल मसांण

जल मसांण को भयो थल मसांण

थल मसांण को भयो वायु मसांण

वायु मसांण को भयो वर्ण मसांण

वर्ण मसांण को भयो वह तरि मसांण।'

तन्त्र-मन्त्रों द्वारा एक दूसरे का अनिष्ट करने की प्रथा मिलती है। गीत में अनिष्टकारी प्रभाव से बचने के लिए बलिष्ट मैमन्द वीर का आवाहन किया गया है -

'कौन देश जायी जटा फिकराई,

सौमण लुवा सांगुल कसि की पंग मुड़ी बंधाऊं

आऊ रे मेरा मैमन्द वीर, वेग मंत्र वेग ताऊ गांजतो आऊ गाजतो जाऊ

चढ़तो आऊ चढ़तो जा किलकतो आऊ किलकतो जाऊ

इस पिण्डा की सुपति विथा की सोत्र मार देखद आंखी मार

बोलादो विथा को जिभ्या मार, कणादी, विथा की हाथ मार।

साधारण भूतों से अधिक अनिष्टकारी मुस्लिम (सैद) भूत समझे जाते हैं -

'काला कलुवा काला कलुवा काली राती

तोई हंकाद्ध रे कलवा आदी राती

हाथ मा गोसा को दीमड़ लीजै

तुर्त मेरा काम करी दीजै
मेरा सतुर वैरी का मुष वंथै
चोरू का हाथ पांऊ वंथै।'

लेकिन प्रचलित विश्वास है कि अतृप्त मृत आत्मा भूत बनकर अपनी संतुष्टि के लिए घर वालों को ग्रसित करती है। ऐसे ही प्रस्तुत है पुरुष का आवाहन :-

'ओ ध्यान जागी जा, ध्यान जागी जा
गाड़ का बग्या को, ध्यान जागी जा
भेल का लमड्या, को ध्यान जागी जा
सर्प का डस्या को ध्यान जागी जा
फांस खैकी मर्‌या को ध्यान जागी जा।'

स्त्री का आवाह्न -

'तेरी छोड़ी च बोई, चाखुड़ी सी टोली
तेरो होली बोई जसि माता सी पराणी
होली बोई परांणी जसि पापड़ सि पार्णी
कनो रई होली बोई तेरो ऊ प्राण रीटदो
कन रई होलो बोई तोई ऊ कालाछेंपदो
जसी होली बोई तेरी द्यूराणी जिठाणी
तिन बोली होलो ब्वै मी हर्ष देखलू
कै काल न डाली होल्वो बौंजोड़ी मा विछोण
यखी बैठ्यूच ब्वे तेरा सिर को छतर
देखी भाली जादूं अपर्णी यी गैरी भीतरी
देखी जा दौं बोई यीं रौंत्याली गंवाड़ी।'

प्रस्तुत गीत में आछरी को प्रलोभन दिया गया है :-

'सुवा पंखी त्वे साड़ी द्योलो
नौरंगी त्वैकू चोली द्योलू
वैणी कुसी त्वै दैजू द्योलू
न्यूतीक बुलौलू, पूजीक पठौलू
गिंली पिठाई न रँग्योलू
औंला सारी त्वैडोला घोलू।'

लघु गीत-

लघु गीतों के अन्तर्गत मोटे तौर पर दो प्रकार के गीत आते हैं -

(1) बच्चों की लोरियां
(2) खेल के गीत

खेल के गीतों में (1) गारी खेलना (2) पत्ते की ताच (3) लुक छिप (4) कोणां वूड (5) गौड़ी बाछी (6) ब्योला-ब्योली (7) लच्चा टांगड़ी (8) घट्ट टिंगाणा (9) फुकणां-फुकणा (10) पत्ता घट्ट (11) अयांर पूजन (12) धारा पूजन (13) फूल संगरांद (14) कूड़ी भाण्डी (15)भैंला - भैंला (16) उसै-उसै (17) हलसुगी (18) कंधा-घोड़ी (19) कुटण पिसण (20) छौपादौड़ी (21)रिंगापोती (22) बाग बाखरी (23) बागी-बागी (24) माछी माछी डौंकू (25) आती पाती और (26)टोपी-टोपी के खेल मुख्य हैं। बच्चों की लोरियाँ ही प्रमुख अभिव्यक्तियां हैं। प्रस्तुत है एक लोरी गीत :-

'अटगण-बटगण द्वी दांणी
ममा लै छै, (मामा लाये थे)
सात कटोरी, (सात कटोरियां)
एक कटोरी, फूट गयी
घोड़ै टांग टूट गयी।'

दूसरा 'घुघती-बासुती' लघु-छन्द गीत है। इसमें लड़कियां छोटे बच्चों को घुटनों पर बैठाकर दोनों हाथों से बच्चे का हाथ पकड़ कर स्वयं गीत गाती है :-

'घुघुती वासुती, (घुघती (पक्षी) बोलती है अथवा घूरती है अथवा बासती है।)
क्या खॉदी ?
दुध-भाती, (दूध और भात)
मैं भी देयी, (मुझे भी दे)
जुठू च, (जूठा है)
'भितरन दी दौं, (भीतर रसोई से दे)
मां-माल्ली। (मां मारेगी)
मां-कख गयीं च, (मां कहां गयी हैं)
झुला धोंणौं। (कपड़े धोने के लिए)
त्वै कू क्या लौंण ? (तेरे लिए क्या लायेगी)
बेलै दांणी' (बेल का फल)

'रावण-झोली' में बच्चे झूलते हुए गाते हैं :-

'ताति-ताति पकोड़ी, (गरम-गरम पकोड़ियाँ)
घ्यू मा झकोड़ी (घी में सनी हुयी)
रावण - झोली,
घीकी कमोली।

इस गीत को गाकर बच्चे एक दूसरे को खूब चिढ़ाते हैं :-

नौंना (नौनी) कती ?
पंद्र बीस ।
खाँदी क्या छैं ?
जौ का झीस ।
रौंदी कख ?
[illegible] ।

आती: पाती की लोरी प्रस्तुत है :-

'आती - पाती,

तुम हो,

सात गधों के नाती,

तुम लाओ......?

(जैसे ढाड़िम की पाती)

जातियों के गीत :

जातियों में जनपद में प्रमुख दो जातियां हैं। (1) औजी तथा (2) बाद्दी । इनके अपने-अपने गीत हैं। औजी जनपद में पेशे से दर्जी का काम करते हैं। गांव में औजी का एक घर होता है जो कि कपड़े सीने के साथ-साथ मांगलिक अवसरों पर बढ़ायी भी बजाते हैं। मांगलिक अवसरों तथा सामाजिक कृत्यों में इस वर्ग को, 'मंगलवादक,' होने के नाते सम्मान और सत्कार की दृष्टि से देखा जाता है। इनके वाद्ययंत्र ढोल दमौ का ऐसे सुअवसरों पर पूजन होता है और प्रथम 'पिठाई' 'ढोल' को लगती है। जनपद की सामाजिक प्रथाओं के अनुसार इनका हर फसल पर 'हक' होता है और प्रत्येक घर से इन्हें अन्न खलिहान से लाकर लोग देते रहते हैं। इसीलिये इनकी आर्थिक स्थिति बहुत कुछ उच्च वर्ग की रहनुमायी पर आश्रित रहती है। सामाजिक सत्कार और सम्मान की सीमा गांव तक ही सीमित नहीं है। गांव की कन्याओं के साथ अन्यत्र इनका अधिकार और सम्मान ससुराल की ओर से भी होता है। कन्या के प्रथम पुत्रोत्पत्ति पर पांच अथवा ग्यारह साल की अवस्था में औजी को विशेष रूप से ससम्मान 'अन्न-धन्न' वस्त्र देकर विदा किया जाता है। इस सामाजिक कृत्य को 'बढ़ौ' देना कहा जाता है। वर्ष के ग्यारह महीने यह वर्ग उच्च वर्ग की सेवा करता है। एक महीने मांगने-खाने का ये अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हैं। जनपद के रीति रिवाजों के अनुसार चैत के महीने में ये घर-घर जाकर 'बढायी' बजाते हैं और अन्न-धन्न तथा वस्त्र मांगते हैं। औजियों के इस मांगने को 'चैती पसारा' कहा जाता है।

प्रस्तुत गीत में औजी द्वारा ठाकुरों की समृद्धि, अमरता तथा राज्य-विस्तार की कामना की गयी है:-

'मंगलाचार, मंगलाचार बड़ा सरकार बड़ा दरबार,
राजा मुहल्ली राजा मुस्सदी, जुग-जुग जीवे राजाधिराज
पूरवी पछमी घाट को राज बढ़े,
उत्तरी-दक्षणी घाट को राज बढ़े,
बेटी-बेटा को राज बढ़े, नाती-पूतान को राज बढ़े
कुल का दिवता सब पर नेह करे,
दाता घाता गुण से भरपूर करे,
ज्ञानी पंडित सदा गरीब रये, छत्री का हाथ रच्छा का शस्त्र रये
भूसा घांड पैरावे दुंला बैठे, कागा घांड पैराये देस फिरे,
चखल-पखल जागीर मा,
जै सिरी ठाकुरी जै-जै कार सामन्या ठाकुरी सामन्या'।

'चेती पसारा' मांगते हुए औजियों द्वारा गाया जाने वाला हरिश्चन्द्र का यह गीत जनपद में, बहुत प्रचलित हैं :-

'दान्यो मा को दानी होलो बल राजा हरिचन्द,
सात छन राणी तैकी, सात छन भैः बैराणी
दान्यो मा को दानी होलो बल राजा हरिचन्द
सातू मा को तैको जब मूसू भी नि जल्म्यो,
अन्न-दान भूमि दान देन्द राजा हरिचन्द
दान लैंण तैमू भेष धारी देवता यैगे,
बचनू को दानी रये बल राजा हरिचन्द
राज हरिचन्द को बाज्यो बल नाजा सेलौ।'

औजियों के गीतों के पश्चात् अब हम जनपद में पायी जानी वाली दूसरी जाति 'बाद्दी' और इनके गीतों का विशद विवेचन करेंगे। समाज की बदलती स्थिति, विघटन, आर्थिक परिवर्तन और नव चेतना का बादि्दयों के जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है और उनकी रचना-शक्ति को भी इस

अदला-बदली ने नए मोड़ दिये हैं इसलिए सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं नवजागृति की लहर को लेकर चलने वाले गीत, इनके महत्वपूर्ण गीत हैं और लोक ने इन्हें अपनाया भी है। लोक भाषा का यह वाड्गमय आशु कवियों ने रचा, जनमानस ने इसे सुना, इसका आनन्द लिया और दिन प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं, प्यार, प्रेम, शक्ति, साहस और त्याग-तप तथा आत्मोत्सर्ग के अद्भुत उदाहरणों के कारण नये किस्से गढ़े जाते रहे और पुराने किस्से भुलाये जाते रहे। डांडा के सौड़ की मूंगा को तो हम नहीं जानते कि वह मालू के पात में भली-भली हिंसर खाने के लिए आई कि नहीं, लेकिन श्री मूँगा बाद्दी और बाली बाद्दी की आशु कविताएं जरूर हमारे दिल-दिमागों में रची-बसी हैं। लोक भाषा की इन गेय काव्य रचनाओं में प्रायः एक पट (पद) निरर्थक होता है जिसे दूसरे पद के जोड़ने अथवा उसके साथ तुक मिलाने के लिए मूल भाव के साथ जोड़ा जाता है। श्री मूँगा और श्री बाली और उनकी जाति एवं समुदाय के अनेक लोग इन एक पट निरर्थक शैली के गीतों के जनक माने जाते हैं। इन गीतों के एक पट को निरर्थक नाम, पार्वत्य प्रदेश के महान् साहित्यकार श्री भजन सिंह 'सिंह' ने दिया है। इनके उक्त कथन के पश्चात ही इन्हें एक पद-निरर्थक शैली वाले गीत कहा जाने लगा है। श्री मूँगा और श्री बाली और उसकी परम्परा द्वारा विरचित इन गीतों को प्रायः चलते अथवा चाखुल्या गीत नाम दिया है। गढ़वाली लोक गीतों के वर्गीकरण में भी इन्हें चलते अथवा चाखुल्या गीतों के अन्तर्गत ही वर्गीकृत किया गया है।

ये गीत इस प्रकार मौखिक रूप से बाद्दियों द्वारा बिरचित होने पर भी लोक गीतों की तरह किसी के द्वारा रचित नहीं माने जाते हैं। ये प्रायः लिखित नहीं है। मौखिक ही याद रहते हैं और एक के बाद दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित किये जाते हैं। वैसे आज कहीं-कहीं इन गीतों को छापा भी गया है। इस तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित होते ये गीत और आशु कविता शैली की यह परम्परा श्री मूँगा और श्री बाली की विलक्षण परम्परागत विरासत की देन है जो शायद ही किसी अन्य समाज अथवा वर्ग विशेष या लोक भाषा साहित्य की परम्परा में हो कि एक पीढ़ी आशु कविता की विरासत दूसरी पीढ़ी को सौंपती हो और वह पीढ़ी पुरानी-नयी के अन्तर को पाटती हुई नये चयन के अनुरूप लोक भाषा में गीतों की रचना करती हो। श्री मूँगा और श्री बाली की यह विरासत धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। सही यह है कि यह परम्परा समाप्त हो गई है। कारण कि इस वर्ग की अपनी पैतृक, बौद्धिक विलक्षणता में ह्रास हो गया है। इसके साथ ही आजकल नये गीतों का चलन और गायन भी प्रायः बन्द जैसा लगता है। महफिलों के समाप्त होने (जिसे हम समाज के लिए कल्याणकारी

ही मानते हैं) के साथ गीत भी (इसे हम लोक भाषा के लिए घातक मानते हैं) समाप्त हो गये हैं जिसका बहुत कुछ आधार पैतृक, पेशेगत प्रतिबद्धता और सामाजिक ताना-बाना था।

माँसल देह की कमनीयता के फूहड़ गीत-रयूड़ी, गयेली और छुमा के अनैतिक-सामाजिक कुकृत्यों का लांछन युक्त गेय रूप, जिसको समाज चटकारे मारकर और होठों-होठों में मंद मुस्कराकर, मजा लेता रहा, की समाप्ति के साथ एक वर्ग विशेष की बहू-बेटियों के सार्वजनिक रूप में नाचने की अपमानजनक परम्परा, थोड़ा बहुत बंद तो हुई है लेकिन अभी भी यह अमानवीय परम्परा पूरी तरह बंद नहीं हुई, के साथ बाद्दी वर्ग की बौद्धिक विलक्षणता जिससे सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक और सांस्कृतिक तथा साहित्यक पक्ष को अभिव्यक्त करने वाली लोक भाषा की एक बहुआयामी विधा और लोक भाषा में आशु कविता का अक्षुण्ण खजाना, जो समाज को उपलब्ध होता था तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस वर्ग द्वारा विरासत के रूप में संरक्षित रहता रहा, भी नष्ट हो गया है।

सामाजिक परिवर्तनों, विघटन, आर्थिक परिवर्तन और राजनीतिक तथा सामाजिक नवचेतना का समाज के सभी वर्गों के लोगों के जीवन पर भारी प्रभाव पड़ा। बाद्दी वर्ग के जीवन को खासतौर से नवचेतना और अभिनव परिस्थितियों ने विशेष रूप से प्रभावित किया। बाद्दियों की रचना शक्ति को इस बदला-बदली ने नया मोड़ दिया और गढ़वाल के सामाजिक जीवन को अध्ययन का आधार प्रदान किया। एक सामाजिक चेतना का उदय हुआ, बाद्दियों के संगीत और नृत्य से। इस नृत्य और संगीत ने बाद्दियों को खूब धन दिया जिससे लोक भाषा में गीत-रचना की यह अद्भुत परम्परा निरन्तर बढ़ती रही और बाद्दियों की रचना शक्ति का निरन्तर विस्तार होता रहा।

नव जागरण आया। राजा, रईसों और सामन्तों का युग बीता आर्थिक और सामाजिक स्थिति में तबदीली आई। रईसों की मुट्ठियां सख्त हुईं। इन ढीली मुट्ठियों के सख्त होने के कारण इस वर्ग की आर्थिक स्थिति में, बड़ा बदलाव आया और इनका कार्य क्षेत्र भी जनसाधारण का आंगन बन गया। इस क्षेत्र में इन्होंने गीत तो गाये लेकिन बदले में उन्हें रईसों की ढीली मुट्ठियां नहीं मिलीं। इस तरह इस बदले हुए कार्य क्षेत्र और स्थिति का सबसे अधिक प्रभाव उनकी रचनाधर्मिता पर पड़ा। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने सब कुछ किया, सब कुछ गाया और सभी घटनाओं पर ये गीत रचना करने लगे।

गीत रचनाओं के विषय अवश्य बदल गये। पहले जहां इन्होंने राजा-रईसों के अनुकरणीय चरित्रों को गीतों में गाया वहीं अब आर्थिक स्थितियों की विषमता के कारण ये वांछनीय-अवांछनीय सभी तरह की घटनाओं के खाके मस्तिष्क में खींचकर उन पर गीत रचना करने लगे। इन गीतों में अश्लीलता का पुट अधिक रहता था। इसलिए ये प्रायः गांव के 'ओबरों' में गाये जाते रहे। ये ही गीत आगे चलकर एक पद निरर्थक शैली के अथवा चाखुल्या अथवा भाभा, रयूड़ी, गयेली और छुमा के गीतों के नाम से पुकारे गये। तो भी ये, ओबरो तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि खुले खलिहानों और गाँवों के चौकों, पंचायती चौकों तथा नये रईसों के घरों में गाये गये। इन्हें स्त्री-पुरूष सभी होठों और मन में मंद-मंद मुस्कराते सुनते रहे चाव से। एक के बाद एक नायक और नायिकायें आयीं डिबली भकम बम सरेला से लेकर कुसुमा, भामा, रयूड़ी गयेली और छुमा तक खूब धूम रही इनकी। लेकिन एक के बाद दूसरे भूलते और भुलाये जाते रहे जैसे कि आज छुमा भी प्रायः भूली जा चुकी है।

स्थिति बदली और परिस्थितियों ने फिर पलटा खाया। क्षेत्र के साथ प्रदेश और राष्ट्र के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नवजागरण का बिगुल बज उठा। समाज का ध्यान इस शंखनाद की ओर आकर्षित हुआ। आन्तरिक क्रान्ति का बीजारोपण हुआ। बौद्धिक क्रान्ति में साहित्य विशेष तौर से कविता ने नेतृत्व किया और समाज में जान फूँक दी। सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध होने लगा। इस बाद्दी वर्ग ने भी समाज के रूख और पसंद के अनुरूप अपनी रचना-शक्ति को मोड़ा। इस तरह जागृति की इस लहर के साथ इस वर्ग की रचनाधर्मिता पहली बार सही दिशा की ओर मुड़ी। इनके इन गीतों में राष्ट्रीयता, सामाजिकता सहभागिता और नवजागरण था, इसलिए जनता ने भी इन्हें खूब पसंद किया। इनकी इस रचनाधर्मिता का स्वागत किया। यह स्वागत इतना जोशपूर्ण था कि लोगों ने बाद्दियों के इन गीतों को अपनाया ही नहीं बल्कि गाया भी। बदलती परिस्थितियों के अनुसार इनके गीतों का ढाँचा भी बदलता रहा।

बाद्दियों की आशु कविता भी इस विरासत का प्रायः एक रूप ही है जो महत्वपूर्ण है और वह है सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं नवजागृत ढाँचे में ढली हुई रचनाएं। ये रचनाएँ नवजागृति और नयेपन की प्रतीक हैं। सम्वत् दो हजार में होने वाले नये परिवर्तन को देखें, किस तरह इन रचनाकारों ने अंकित किया है। नये जमाने की नयी रीति आई है। लोग चाय पीना सीख गये हैं, मोटरें दौड़ रही

हैं, पहाड़ घाटे जा रहे हैं, नये सिक्के ढाले गये हैं। यह है, सम्बत् दो हजार का चमत्कार जो बादि्दयों की आशु कविता में प्रगट हुआ है:-

कनू जमानों आयो भायो सो बिन्दी का साल जी, होरी धाणी फुॅन्दू फूका, चा जरूर चैंदि जी, जौं पौडू पठालू पखाणू माराज, गोणिनि गैन बादर जी, तो पौड़दू पखाणू दौड़िकी, मोटर आई गैन जी, ढूँगा पड़टन गिड़-गिड़-गिड़-गिड़ भाटो पड़द दमादम, मोटर सारी छुट्टन हिरि रि रि रि रिं धमाधम, आज का भौना इकन्नी-दुअन्नी भोल का मैना पैसा जी, सरकारी मोटर छुटीन जन, कुमैया भैंसा जी।

प्रस्तुत गीत में, अन्नकाल, बढ़ते भाव, फिजूलखर्ची तथा नये-नये शौकों के बारे में एक ओर वर्णन है तो दूसरी ओर आदमी की नयी-नयी आदतों पर व्यंग्य भी किया गया मिलता है-

सूणां सूणां भाई बॅदो भारत को गीत जी
कना कना हाल ह्वेन, कन ऐन रीत जी
रूप्या पाथु चालू ह्वेगे, गेऊँ की निदांड़ी जी
पाॅच-पाॅच सौ का भैंसा, ह्वेन, दूध नी माणीं जी
भैंसा का मोल गोडा ह्वेगी, गौडा मोल बरबरी जी
सौदा खाणुक पैसा नीच्च कनि ह्वेई अकरी जी
गऊँ गउँ मा आकरी ह्वेगी, मिलेदी नी चीनी जी
हौर चीजी फुंड फूको चा जरूरी पीणी जी
डेरा मु मैं मान आयुँछ खांदु रूपया रोज जी
ज्यादो क्यों नि ज्यादों चुजा, विसौं का खोज जी।

धर्म, रीति-रीति और मान-मर्यादा का स्वरूप देखिए, इनकी कलम से-

दुनिया की हवा देखा किले या रूखी छ
दया धर्म की डाली बोल किले सूखी छ
भगवान की आरव्यों या निन्द आई छ
गरीबू की तरफ, फेर अंध्यारू किले छ

हम नादान गरीबू की प्रभु हाई करव जाली
हम बाग बगीचा छाँ तुम बाग का माली
जैकि बेटी छ ज्वान, तेकू भारी छ गुमान
घर बर नि देखदान तौंको, रुप्यों माछ जान
बोदो मैं बाइस सो ल्योलो, पौणा द्वी मंगौलो
ओबरा चिर्णैद बेदी यो दान कनोछ
बेटी का रूप्यौन वो सेठ बणी कनोछ
द्वी ऐन गलेदार सेठ्जी ठगे गैन
स्यो तौ रूपया देदे, ब्याज का लोभ
गोवर जु बन्दकरीन व्यमीन छंन बणौंणा
रग डौंमा सेरा केन या भूख किले छ ।।
सुई धागो सब्बुमूछ स्यूँद किलैंनी
जु गो कु मुखिया तेमू क्व्वी किले छ
तेन गौरी करी टुकड़ी मरजात तोकी बिगड़ी
वो गौं कु परधान विश्वास किलैंनी छ।
जमाने के. रंग की बानगी देखें
तेरू रंग बदल्यू छ हेरे जमाना
दुनियाँ का देख ढंग चढ़्यू छ कच्चो रंग
भेद भौं कुछ नी छ सब एक समान
छै रूपया को कोट सिले ले सब चलद बांगों
जेब मा वैका धेला नी चुफलो वैको नागों
कली हुक्का कोणा रख्या, बीड़ी पेंद जाँद
कोणा पर, बीड़ी सुलगे रजै फुके आधा
नोना को भैसों व्यांण बुड्या लग्यूँ सास

ब्वारि कर दी सैर और सासू काटदी । घास

सासु कर दी कुटणी पिसणी, ब्वारि ह्वैगि स्यार्णी

नोंनों मूक्ष्वा को गिलास बुद्या मु पज्वाणी

जोखीं मूड़ी फुन्डू ढोली, चिपली करी दाढ़ी

घर की जनानी कु धोती नी, रंडी कु लौद साड़ी

हाथ पर बीड़ी लेदी, गिच्चा पर पान

बुढया-बुढयोन जोखी मूड़ी, हम भी होंदा ज्वान।

इन गीतकारों की नजर तीखी और दूर तक रही है, उन्होंने यथार्थ को तो व्यक्त किया ही है तीखा कटाक्ष करने में भी वे कभी चूके नहीं हैं। गढ़वाल में पड़े अन्नकाल में जब बाजरे की मांग बढ़ गयी तो कोदो का स्थान बाजरे द्वारा लिए जाने पर वे व्यंग्य करने में चूके नहीं -

बाजरों हे बाजरों दनादन

चुला को खादों हे चुला को खादों

कोदो बाजरा मु बोदो भी बरम लोक जॉदू

लोण पीसी गारी हे लोण पीसी गारी

बाजरू डरै बरूम्या बोदू अगनै मैं धारी

चाक्यों कु छुम्मा हे चाव्यों कु छुम्मा

कोदो बाजरा मा बोद गढ़वाल मेरा जुमा

गुलैर की गारि हे, गुलेर की गारि

मुंडमा च टोप धयूँ, पीठी मा च भारी

ओर लाभ की कुछ बात ही निराली है।

प्रथम और दूसरे विश्व युद्ध में गढ़वाल का काफी योगदान रहा। गढ़वाल को सिपाहियों का देश कहा जाता था। शायद ही तब एक इलाके के इतनी बड़ी संख्या में सिपाही रहे हों? जवानों के सेना में भर्ती होने के दिन हैं। गीत में केसरू के पलटन में भर्ती होने, ट्रेनिंग लेने और सिंगापुर में लड़ाई

लड़ने विषयक वर्णन -

भरती होई जाणा के सुरू ठमठम पलटन मा
बिलमी को पीच विलमी को पीच
भरती होइ गया केसरू द कालो छोणी बीच दा
पाकी जाली कोणी पाकी जाली कौंणी
टरेनिंग कुचलीगे केसदा जबलपुर छोंणी
डाली काटी दुखुमा, डाली काटी दुखुमा
लाम मा जाण कु, ऐगे सरकारी हुकुम
बुती जाली तोर, बूती जाली तौर
लड़ाई मा जाया केशरू दा सिंगापुर पोर
हींग भोरी तोला। हींग भोरी तोला
ऐंच बिटी न छुटणा छन छैः छै मण का गोला
नारंगी की सोली नारंगी की सोली
पेली लगी केशरूत्वै पर धेड़ गोली
सुपि भोरिक थान सुपि भोरि थान
अमर रयान जोधा केशरू गरीबी का बाना
पैसा का द्वि धेला, पैसा का द्वि धेला
दूधी तिन पीने भैरे, माई मरदू का चेला
चाँदी को बरग चाँदी को बरग
लाम मा जो मोरिजाद ज्यूँदि व स्वरग।

भारत की आजादी के लिए लड़ने वाले राष्ट्रवासियों को इन गीतों में देशभक्त गाँधी की पलटन के सिपाही कहा गया है। इन्हें देखने के लिए लोग घरों से बाहर सड़कों पर उमड़ पड़ते थे। कुछ ऐसे ही भाव इस गीत में हैं:-

चला भायौं देखी औला गांधी की पलटन दा

पकी जाली खीर दा

अगने गाँधी सुबेदार पिछने जवाहिर दा

चिलमी को बीच-दा

पैलु तिरंगू झण्डा उठै लंदन का बीच दा

बुणी जाली बोरी दा

जौन तिरंगू झण्डा छीनी अंगरेजू कु मोरी दा

बाजी जाला बाजा दा

मोती लाल कु वीर जवाहिर भारत कु राजा दा

चला भायों देखी औला गांधी की पलटन दा।

राष्ट्रीय नेताओं पर भी लोक भाषा गढ़वाली में बादि्दयों ने गीत बनाये हैं। इनमें प्रमुख हैं- गाँधी, जवाहर और नेता जी। गाँधी जी विषयक इस गीत में गाँधी जी के चरित्र, उनके तप और त्याग की विशेष चर्चा है :-

मातमा गाँधी बडू भागी छ:

देश सेवा कु अनुरागी छ

बारबरी कुदूद वो खॉदू छ

खादी कु लाणु वो लॉदू छ

पन्द्रह अगस्त हमूँ दिलेगी वो

अगरेज्यू संण भगैगि वो

आजादी हमु दिलैगि वो

राज किसानु दिलैगि वो

मातमा गाँधी बडू त्यागी छ

देश सेवा कु अनुरागी छ।

नेहरू (श्री जवाहर लाल नेहरू)

धान की सवाई नेरू धान की लवाई
अंगरेजी जमानु नेरू गरीब की तवाई
चीण्यों त पगार नेरू चीण्यों त पगार
अंगरेजी जमानु नेरू भेंट छै बेगार
भैस्यों की छान नेरू भैंस्यों की छान
अंगरेजी जमानु नेरू, अमीरू की शान
हलकु फालों नेरू हलकु फालू
जनता का मुख नेरू कना लग्या ताला
लिखी जाती पाटी नेरू लिखी जाती पाटी
गरीबू की कमाई नेरू अमीरू न बांटी
घुघुती कु घोल नेरू, घुघुती कु घोल
देश पर प्राण देली नेरू कांगरेसी टोली
काटी त घास नेरू काटी त घास
भारत का गरीब नेरू तेरा ही सासु.

नेता जी (श्री सुभाष चन्द्र बोस)

जै हिन्द । अखोड़ की खाई नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । बर्लिन पौंछीन नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । आजादी लाई नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । आरमी को ऐन नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । हिटलर मिलीगे नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । सिंगापुर गैन नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द । लुवा गढ़ी सरी नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, सिंगापुर जै कि नेताजी जै हिन्द

जै हिन्द, फौज खड़ी करी नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, कपड़ा की गाजी नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, प्राण की बाजी नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, फाँटी जाली ऊन, नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, सुफल फलीगे नेता नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, तुम्हारी, खून नेताजी जै मिलद
जै हिन्द, बाखरी की गूदी नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, धनी वू माता पिता कु नेता जी जै हिन्द
जै हिन्द, जौंन पिलाई दूभी नेता जी जै हिन्द
जै हिन्द, लंगोटी बाद नेता जी जै हिन्द
जै हिन्द, त्वैम लड़ी नेताजी जै हिन्द,
जै हिन्द, हम होया आजाद नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द। धारू गाडू पार नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, मा गूंजीगे नेताजी जै हिन्द
जै हिन्द, हिन्द को नारो नेता जी जै हिन्द।

सामाजिक सुख-दुख का भी बाद्दियों के इन गीतों में समान रूप से वर्णन किया मिलता है। नारी की मांसल देह से इतर सामाजिक सुख की भी इसमें सामूहिक अभिव्यक्ति हुई है। खिर्तू में स्कूल खुलने और बच्चों के लिए बनने वाले 'बोर्डिंग हाउस' को भी बादियों ने अपने गीतों का विषय बनाया है। जहाँ दूर-दूर तक भी पानी नहीं है, वहाँ बोर्डिंग बन रही है। यहाँ मजदूरों को छः आना मजदूरी मिल रही है। हमारे नजदीक अब स्कूल खुल गया है। अब तो हमारे बच्चे कोटा खाकर भी स्कूल में पढ़ सकेंगे। इस वर्ष यह एक अजीब बात हो गई है कि यहाँ स्कूल खुल गया है। इस खुशी को लोग इकट्ठे होकर मना रहे हैं। इस लोकप्रिय गीत के बोल हैं :-

' 'खिर्सू बोर्डिंग लग्यूँ व निर-पाणी का डाँडा' '

सतपुली की घटना पर लिखा गया यह गीत -

द्वी हजार आठ भादों का मास
सतपूली मोटर बोगीन खास
से जावा भे बन्दों अब रात ह्वेगी
रूण-झुण रूण-झुण बारीश लैगे
काल कि सिडौर निंदरा ऐगे
घनघोर निन्दरा जु सबू ऐगे
मोटर का छत पाणीं भरैगे
भादो का मैना रूण-झुण पाणीं
हे पाणी नयार क्या बात ठाणीं
सबेर उठीक जब औंदा भैर
बोगीक औंदान सादण खैर
डरैबर कलेण्डर सबि कटठा होया
अपणि गाड्यों या पत्थर भोरा
गरि व्हे जलि गाड़ी रूकि जालु पाणीं
हे पापी नैयार क्या बात ठाणीं
अब तोड़ा जदेऊ कपड्योंऊ खोला
हे राम-हे राम, हे शिव बोला
डरैबर कलेंडर सबि भैंटि जोला
व्याखन बिटिन एखुलि रौला
भाग्यानु कि मोटर छाला लैगी
अभाग्यों कि मोटर डूबण लैगी
शिवानन्दी को छयो गोबरदन दास
छी हजार रूप्या छया वेका पास
गाड़ी बगदी जब तैंन देखी
रुप्यों कि गडोली नयार फेंकि

हे पापि नयार कमाई त्वेकु
मगसीर का मैना व्योछयो मेरू
सतपूलिका लाला तुम धौर जेल्या
मैरि हालत मेरि माँ मा बोल्यान
मोरि माँ का बोल्यान तू माजि मेरी
नी रयो माँजी, गोदि कुतैरी
मेरी माँ को बोल्यान नी रई सास
सतपूली मोटर बौगीन खास।

यह अंतिम रचना जो हमें सुनने को मिली, सन् 1951 की है। इसके बाद लोक भाषा में बाद्दियों द्वारा आशु कविता की अविछिन्न धारा की सतरंगी उड़ान की कल्पना का क्रम प्रायः टूट गया मिलता है। इन्होंने कितने थोड़े शब्दों में सरल और सुबोध बोल-चाल की भाषा में लिखा। इस परम्परा ने एक ऐसे लोक काव्य की रचना की, जिसने गढ़वाली लोक भाषा को मानक रूप प्रदान किया और लोक भाषा की एक सहज प्रवाहमान धारा प्रवाहित की, जनकाव्य के रूप में।

कितनी सरल भाषा है, इन आशु कवियों की गीत रचना की। लोक भाषा का यही रूप हमें अपने पुराने कवियों की रचनाओं में भी मिलता है। इससे सरल और सुबोध ढंग से कोई बात कविता में और कैसे कही जा सकती है :-

(1) कनूँ जमानो आयो भायो सो बिन्दी की साल जी
'सूणां-सूणां भाई बन्दो भारत कु गीत जी' 'दुनिया की
हवा देखा किलै' या रखीद्द 'तेरू रंग बदल्यूँ
छ हेरे जमाना, 'भरती ह्वेई जाण केशरू ठम-ठम
पलटण मा', मातमा गाँधी बड़ु भागी छ,' 'भारत का गरीब नेरू तेरा ही सास,
'जै हिन्द नेताजी जै हिन्द' और 'खिर्सू बोर्डिंग लग्यूँ छ निरपाणी
का डाँडा तथा 'द्वी हजार आठ भादौं का मास,
सत - पूली मोटर बौगीन खास।'

इस तरह की बोली भाषा में काव्य रचा है, इन आशू कवियों ने। यह काव्य गढ़वाल का लोकप्रिय काव्य माना जाता है।

इस धारा से आज लोक भाषा वंचित हो गई है। है, कोई आज ऐसा कवि जिसके काव्य की भाषा ऐसी है ? इतनी सरल, सुबोध और जनमानस की बोलचाल में? उत्तर है, नवोदित लोकभाषा के कवियों में, किसी की भी भाषा ऐसी नहीं है जो श्रीयुत मूँगा और श्रीयुत बाली बाद्दी की भाषा की तुलना में खड़ी हो सके। इलाकाई मोह और उच्चारण के वैविध्य ने आज के कवियों (क्योंकि अधिकतर आज कविताएं ही लिखी जाती हैं, गद्य बहुत कम लिखा जाता है) की भाषा को इतना लचर और मनमौजी बना दिया है कि यह बता पाना आज मुश्किल है कि गढ़वाली लोक भाषा का मानक रूप है क्या? और कौन सा है ? असामाजिक और अनैतिक घटनाओं पर गढ़े फूहड़ और अश्लील गीतों की इति का तो स्वागत है लेकिन इसके साथ जुड़े गीतों के उक्त सामाजिक स्वर की धारा के अवरूद्ध होने का बहुत दुःख है क्योंकि इसने एक वर्ग विशेष की बौद्धिक विशिष्टता को सदैव के लिए समाप्त कर दिया है। साहित्य का जो बहुआयामी विकास इस धारा से होता रहा, उससे आज हम वंचित होते जा रहे हैं। बहुत बड़ा योगदान दिया है। बाद्दी वर्ग ने लोक भाषा के साहित्य के विकास में। एक बहुत बड़ा खजाना है इन गीतों का हमारे पास, जो आज धीरे-धीरे क्षीण और भूला तथा भुलाया जा रहा है। 'व्हाई डिड यू नॉट कम टू मूँगा डॉंडा का सोड़ मां' की, मूँगा को तो हम नहीं लौटाना चाहते लेकिन बाद्दियो की बौद्धिक विलक्षणता की वापसी के अवश्य आकांक्षी हैं, जिसने लोक-भाषा और लोक साहित्य को समृद्ध बनाया है।

अध्याय - 3

गढ़वाल की लोक गाथाएं

गढ़वाल की लोक गाथाओं के हमें मोटे तौर पर दो विषय मिलते हैं:-

(1) जिनमें पौराणिक देवताओं तथा स्थानीय मध्य देवों की उपासना है। इन विषयों को लेकर चलने वाली गाथाओं को यहां जागर अथवा वार्ता कहा गया है।

(2) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक तथा स्थानीय पुरूषों के कार्यकलापों के विवरण।

विषयगत विभाजन के आधार पर गाथाओं का वर्गीकरण निम्नवत् है -

(1) देव गाथाएं (जागर, वार्ता, बाजा) इन देव गाथाओं के भी तीन विभाग हैं -

  (1) कृष्ण चरित्र, रूक्मिणी चन्द्रावली सम्बन्धी गाथाएं
  (2) निरंकार, गरूड़ासन भैरों, नरसिंह, आछरी, हंत्या, विनसर सम्बन्धी गाथाएं
  (3) पंण्डौ से सम्बन्धित गाथाएं

(2) लोक गाथाएं। लोक गाथाओं में भी तीन प्रकार की गाथाएं उपलब्ध हैं -

  (1) ऐतिहासिक पुरूषों सम्बन्धी गाथाएं
  (2) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक स्थानीय पुरूषों की गाथाएं

(3) वीरांगनाओं की गाथाएं

लोक गाथाओं की वर्गीकृत तालिका

गाथाएं

देव गाथाएं			लोक गाथाएं		
कृष्ण चरित्र रूक्मिणी चन्द्रावली शिव-पार्वती बैकुंठ चतुर्दशी	निरंकार गरूड़ासन भैरों,नरसिंग हंत्या,आछरी देवी	पाण्डव अर्जुन नागलोक की कथा, भीम, नकुल,सहदेव, द्रोपदी, कुंती	ऐतिहासिक पुरुष	ऐतिहासिक अनैतिहासिक स्थानीय पुरुष	वीरांगनाएं

आकार एवं गायन पद्धति के आधार पर गाथाओं का वर्गीकरण-

देवगाथाएं

कृष्ण रुक्मिणी	रुक्मिणी-चन्द्रावली	भैरों, नरसिंग, आछरी
(प्रबंध गीत)	(प्रबंध गीत)	नागर्जा, हंत्या, नगेला
पंडौं	शिव-पार्वती	भुम्याल, विनसंर
(प्रबंध गीत)	(प्रबंध गीत)	
निरंकार	गरूड़ासन	
(प्रबंध गीत)	(प्रबंध गीत)	

लोक गाथाएं-

(1) ऐतिहासिक पुरुष-

(1) राजा मान शाह

(2) अजय पाल

(3) मालू साही

(4) जगदेव

(5) प्रीतम देव

(2) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक, स्थानीय पुरुष-

(1) सुरजू कुंवर

(2) कफ्यू चौहान

(3) गढू सुम्याल

(4) कालू भण्डारी

(5) बागा रावत

(6) काली हरपाल

(7) मालू रजवा

(8) भाग देऊ

(9) बरमी कौल

(10) सोनू-विरमू

(11) जीतू बगड्वाल

(12) हंसा कुंवर

(13) गंगू रमोला

(14) बिध्नी बिजैपाल

(15) रणूं रौत

(16) ब्रह्मदेव

(17) सुमेरू रौतेला

(18) धामदेव

(19) भानु भौपेला

(20) आशा रौत

(21) हंसा हिंडवाण

(3) वीरांगनाओं की गाथाएं

(1) तिलू रौतेली

(2) जोतर माला

(3) पत्थर माला

(4) ध्यान माला

(5) चन्द्रावली

(6) सुरमा

(7) सरूकुमैंण

(8) नौरंगी राजूला

(9) वरूणा

(10) अमरावती

देवगाथायें-

देवगाथाओं का विषयगत एवं आकार तथा गायन पद्धति के अनुसार वर्गीकरण पीछे दिया गया है। यहां हम देवगाथाओं और उनकी विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं। जनपद में हमें इनके पूर्व वर्णित दो रूप उपलब्ध होते हैं। साधारणतया इनको एक ही नाम से भी पुकारते हैं। विषयगत भिन्नता के कारण ही इन्हें अलग-अलग नाम दिये गये हैं। स्पष्ट तौर पर इन्हें दो भिन्न-भिन्न नामों से भी पुकारा जाता है। स्थानीय बोली में देवगाथायें देवताओं के जागर या वार्ता हैं। जागर स्तुति गीत हैं जिनमें देवताओं के अवर्णनीय गुण, शौर्य-वीर्य, पौरूष और अद्‌भुत शक्तियों का गान किया जाता है। जनपदीय परम्परा के ये जागर असुप्त अवस्था के प्रतीक हैं। इनका गान देव विशेष का आह्वान है। स्थानीय देव जिनमें प्रमुख नागराजा, नरसिंह, हंत्या, आच्छरी, भैरों, नगेला, भुम्याल, निरंकार और बिनसर प्रमुख हैं, सबके अपने-अपने "दोष लगना", दोष के चिह्न प्रगट होना, "पोथी न्यूतना", देव विशेष के दोष का उबरना और अन्त में आह्वान द्वारा देव विशेष का नचाया जाना एक ऐसी पद्धति है जो कि पूर्णरूपेण स्थानीय विश्वासों पर आधारित है। विश्वास फल देता है और देव विशेष के दोष से परिवार विशेष मुक्त हो जाता है। इन आह्वान गीतों में एक विशिष्ट स्थिति का निरूपण किया जाता है। धामी (वादक) डौंर-थाली (वाद्य यंत्र) बजाता हुआ देव विशेष का आवाहन करता है। देवता वाला (जिस पर देवता आता है) धामी के सामने बैठा होता है। आह्वान गीत के साथ एक विशेष प्रकार का ताड़ा "अग्याल" (चावल का बीज), धामी देवता वाले पर मारता है।

इस प्रकार वाद्य यंत्र और आह्वान गीत के बल पर देवता वाले के हृदय में एक अलौकिक कंपन होता है और वह अपनी स्थिति को भूल कर नाच उठता है। यह अलौकिक कंपन ही महत्वपूर्ण है। जिसके द्वारा देवविशेष की आत्मा का साक्षात्कार जीवन आत्मा (देवता वाले की आत्मा) से होता है। वह सम्मोहन या निचेत अवस्था में देव-विशेष की आत्मा से प्रभावित होकर स्वयं देव विशेष के अनुकूल अभिनय करता है। अद्‌भुत शक्ति का प्रदर्शन करता है और दोष का कारण बता कर संतुष्टि की ओर संकेत करता है। देवता के रूप में वह नाचता है और आश्चर्यजनक करतब दिखाता है। मनुष्य के ऊपर बढ़ी यह सम्मोहन या प्रभाव की अवस्था ही देवता का आना है। कुछ लोग इनका एक मात्र उद्‌देश्य रात्रि जागरण मानते हैं। लेकिन वस्तुतः यह ऐसा नहीं है। देवताओं से सम्बन्धित इन

कथाओं को हम देवगाथा नाम देना ही उचित समझते हैं। देव-कथा या देवगाथा गीत में पूरी गाथा चलती है। जिसमें देवताओं के पौरुष का एक ही पक्ष लम्बे-चौड़े रूप में मिलता है। इन गाथाओं का गान सोद्देश्य होता है। मनोरंजन या'जोकरिंग' जैसी मनोवृत्ति इनके पीछे नहीं है।

नरसिंह, नागराजा, भैरव, निरंकार जैसे देवों की देवगाथाओं का सामूहिक श्रवण और गायन किसी व्यक्ति विशेष या परिवार विशेष से असंतुष्टि की अवस्था में सन्तुष्टि प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसलिये देवगाथाओं का गायन केवल अवस्था विशेष एवं समय विशेष में ही किया जाता है। यद्यपि कहीं-कहीं यह देखने को मिला है कि सामूहिक धार्मिक आयोजनों (बैकुंठ चतुर्दशी, पंचमी, मेला, खेला), में लोग डौर-थाली बजाते हुए देव गाथाओं को गाते हुए चलते हैं लेकिन इन गाथाओं में अधिकता कृष्ण सम्बन्धित गाथाओं एवं शिव सम्बन्धित गाथाओं की ही पायी जाती है। नरसिंह जैसी देव गाथाओं का प्रचलन ऐसे समय पर नहीं किया जाता है। जनपदीय प्रचलित परम्पराओं में भूत-प्रेतों को काफी महत्व और स्थान दिया गया है। भूतों के पूजन की एक आम सी पद्धति यहां मिलती है। विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी सामग्री का उपयोग भूत की सन्तुष्टि के लिए किया जाता है। भूत-गाथायें लम्बी-चौड़ी मिलती हैं जिन्हें स्थानीय बोली में सैद्वाली (राशा) भी कहा जाता है। इन गाथाओं के विषय बलिष्ठ आत्माओं (प्रेतों) के यशगान हैं, जिनमें देव-आत्माओं की महत्ता मिलती है और शक्तिशाली देवता की गाथा सुनकर भूत (असुर) प्रभावित व्यक्ति को छोड़ कर संतुष्ट हो जाता है अथवा डर कर भाग जाता है। अधिक शक्तिशाली देव अथवा भूत के यशगान से प्रभावित मनुष्य भूत के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। इन भूत-गाथाओं की भाषा कड़ी और शब्दों का प्रयोग बड़ा वीभत्स-सा है। देव गाथाओं में अधिक प्रचलित और प्रमुख कृष्ण जीवन गाथा है। कृष्ण जीवन की इस देव गाथा में कथोपकथन, घटनाएं, पात्र और स्थान पौराणिक हैं। स्थानीय भाषा, पद्धति, संस्कृति और विश्वासों का देव गाथा पर पूरा-पूरा प्रभाव मिलता है। कृष्ण (नागर्जा) की यह गाथा द्वारिका से प्रारम्भ होती है।

रूक्मिणी-कृष्ण के संवाद "बैखू मा बैरव" और "बांदू मां बांद" (पुरूषों में पुरूष और रूपसियों में रूपसी) से प्रारम्भ होकर चन्द्रावली वरण की देवगाथा के रूप में उपलब्ध होती है। रूक्मिणी कृष्ण को "आणा" (उलहना) देती है। कृष्ण की शक्ति की परख करती है। स्त्री की बात से पुरूष

(कृष्ण) के मन की शान्ति छिन जाती है। उसको मन का जंजाल हो जाता है। वह चन्द्रावली को ब्याह कर लाने का प्रयत्न करता है। असफल होकर कृष्ण रुक्मिणी की बार-बार मिन्नतें करते हैं। वे चन्द्रावली को नहीं ठग पाते। अन्त में रुक्मिणी को दया आ जाती है, वह कृष्ण को चन्द्रावली को ठगने की तरकीब बता देती है। कृष्ण चन्द्रावली को ठगने में समर्थ होते हैं। चन्द्रावली बहुरूप धरती है, लेकिन अन्त में कृष्ण की होकर रह जाती है। गाथा में कृष्ण के छकाये जाने और चन्द्रावली की विलक्षण बुद्धिवादिता का परिचय मिलता है। तीन बार कृष्ण का ठगा जाना, खीजकर रुक्मिणी के पास आना, रुक्मिणी से मनसूबा पूछना और अन्त में रुक्मिणी का "भेष" बनाकर चन्द्रावली को ठगना एक ऐसा चयन गाथा में मिलता है जिसमें चन्द्रावली की बुद्धि का पलड़ा भारी दिखाया गया है।

"जोगी और चेले" की एक दूसरी छकाने वाली लोकगाथा में तो जैसे गाथा साकार होकर रह जाती है। हार के कणों को चुगते हुए मुर्गे को बिल्ली (चेला) का निगलना जैसा कृष्ण का नदी में घुसी मछली (चन्द्रावली) को "ओद" के रूप में पकड़ना ही है। देवगाथा के साथ लोकगाथा की यह पुनरावृत्ति अद्भुत है।

देव गाथाओं के इन जागर (जागृति) गीतों में देवताओं के साथ स्थानीय देवों की स्तुति भी की गयी है -

"आदेसू आदेसू लगैल्यौ तू,
जुआरो लगैल्यौ तू शिवराम जुयाल,
जुआरो लगैल्यौ राजा शंकर मणि डोभाल,
आदेशू लगैल्यौ बीर बजरंग,
आदेशू लगैल्यौ गुरू त्वे वै लामा गुरू को,
हे बीर वीं धौलया ओड़्यारी रल्यो सुणी लेई मेरा बाबा,
हे बीर नाक नी छ मुख बीर, जरा सूणी,
जैं धौल्या ओड़ारी होली जैकार चिलम बीर,
आदेश लगाये तिन वे लाभा गुरू को बीर,
धौल्या ओड़्यारी होली तेरी छुंणक्याली दाथड़ी,

त्वै मैना त्वै बेटा तेरा ध्यान,
आदेश लगाये बीर तिना जब वीं धौल्या ओडारी,
धौल्या ओड्यारी पर त्वै कू नींद पड़ीं छ,
नाद बूंद भैरव वैल्यौ संग मां चललो बीर,
वै खूल कठूड़ बिट्टी तेरी मौती धौलू ओड़्यारी बीर,
नजर लगाये बीर तिन काली गंगा तीर धौल्या ओड़्यारी,
तिन नजर लगाये बीर वीं मुल्ली रंवाई,
तिन नजर लगाये बीर वीं मैल्ली रंवाई,
मौरू मरछ्याण की तणस्याल लगीं छ बीर,
तेरा चट्ठा पीफल बाबा डौंडिया नारसिंह बाबा?"

दृष्ट्व्य है निरंकार देवगाथा-

मंगल बोला हो निरंकार मंगल बोला, ओ रामा,
मंगल बोला बूढ़ा केदार, जोगी बाबा रैदास चमार,
निरंकार से होयो धोंधोंकार,
धों-धोंकार से फुंकार, फूंकार से विष्णु
जल का सागरू मा गुसै जीन सृष्टि रची देया
जल का सागरू मा गुसैं जी न सृष्टि रची देया।
जल का सागरू मा गुसैं जीन नाभी फैल द्याय।
नाभी से एक फूल कमल केसर होई गयो।
केशर कमल से चतुर्मुख करमा,
विष्णु गुसैं जी न आज बरमा का पास दीने,
चार रे बेद यजुर्वेद, ऋगबेद, सामबेद, अथर्वबेद,
बिष्णु रे उनी ह्वाला सौण की स्वाती, आज की राती,
बरमा का पास दीन अठारा नक्षत्र, सुबेर पढ़न बेद,
स्याम भूली जांद, अंधेरा मी कनकै कठ या रौला,

ब्रह्म जी जब जौलासमुद्र छाला पर गरूड़ को रथ आलो,

चौंर गाय को रथ आलो, सुमेरू पर्वत आलो,

तब त्वे तैं बेदू कू पढ़ौलू विष्णु न वेना,

चंद सूरज वे न कखराल्यौं धौरी देनी,

बरमा बाइस गैत्री चार वेद, अठारह पुराण,

तेरा कंठ मा सेई गैना, तू ता बरमा रास्ता लैगी,

बरमा तू ता उठो बरमा, गरूड़ का रास्ता औदी,

पंचनाम देबतौं की गरूड़ मा सभा लगीं होली,

बूढ़ा केदार की हे विष्णु जग वीरीं छ,

सब कू न्यूत्यो देये वै न गुसाई नी न्यूतो,

वैजोगी को हमन जम्मा न्यूतो नी करणो,

स्यौत डुमाणा भी आंद, स्यौत जोगी इनो होयो होलो रामा,

नारद करद गंगा माई की सेवा, हे विष्णु बारा वर्ष पूरा ह्वेगेना,

गंगा माई की सेवा करनू, छ, तव बोलन छ बर्मा,

पैलो भक्त होलो कबरी, कमाल तब को भगत होलो,

रैदास चमार, बिष्णु की बारा वर्ष की धुनी पूरी ह्वे गेन तब-तब जापू च विष्णु,

गंगा माई पास, मीकू गंगा माई कुछ बचन देई,

चली गाया रैदास चमार, रैदास चमार कुंडी बैठ्यूं च,

चाम कसणू छ, तुम जाणा छयाबरमा तुम गंगा माई की भेंट,

मेरी भेंट कू गंगा माई कू दे या, एक पैसा काट्यो वे ना,

बरमा का पास देयो,

कनू के की, मै ये पैसा ली जौलो,

घर झिझड़ै कि वेन जेव उंदैं धरे,

मेरी भेंट कू गंगा माई हाथ पसारली,

गंगा पैले बाच गाड़ली भेंट वापस लेई आई,

बाच नी गाड़ली भेंट वापर लेई आई,
चली गे बरमा तू गंगा माई का पास,
पैले नहाई धोई छाला लगी गेये,
धाध मारे वेन, गंगा ना बाच नी देई,
बिष्णु नहाये धोये, बरमा अपना पर आयेउ
रैदास की भेंट भूलि गे बरमा,
बरमा आधा रस्ता मा आये, बरमा का आंखा फूटि गेन,
गंगा माई जनै जाणू छ आखा खुली जांदना,
तब जैक बरमा रैदास की भेंट याद आईगे,
उठी गै वो बरमा गंगा माई का पास,
रैदास को नौ सुणी गंगा माई न बाच देई याले,
भेंट दिई च रैदास कि तुमको,
ऐक शोभनी कंगणा गाड्यो गंगा माईन,
बरमा माझ देई बरमा रे ये मेरी संदेणी तू रैदास देई।

गरूड़ और गरूड़ी की इस गाथा को "गरूड़ासन" के नाम से अभिहित किया गया है। कितना साम्य है, सृष्टि के निर्माण में और लोक के व्यावहारिक जीवन में -

बोला बोला सगुन बोला कैलासू मा भोला शम्भू रे नाथ,
भोला शम्भू रे नाथ रौंदा, देख दौंधुनी रमी च,
तब त बोनी च देवी पारवती बोनी च
"हे महादेव जी हे महादेव जी यकुला कैलास मा रैगे
बिष्णु तूत अपणा संग कू क्वी चेला बणै देवा,
दैंणा जंगा मांग वेना गाड़े मैल की बतूली,
मैल बातूली गुदड़ी का पेट राखे,
गुदड़ी का पेट "सूनी" और "जम्बू" गरूड़ सोभनी,

तरूण द्वी भै बैणा ह्वेगेना,

जम्बू का दिल मा पाप आई ग्याय, हैक दिन,

एक दिन मा इनो समय आये, जम्बू पूछण बैठी गे,

सूणी लेंदी सूणी एक बात बोदू मी त आज,

सूणी बोनी च बोल बोल हे जम्बू गरूड़ तू त आज क्या बात बोदी,

जम्बू बोनू च सूणी लेंदी सूणी,

"तू और मैं होइ जौला पतिबरता नारी"।

पाण्डवों के जीवन की विभिन्न लीलाओं का प्रभावोत्पादक वर्णन इन गाथाओं में मिलता है। पाण्डवों के जन्म, दुर्योधन द्वारा निकाला जाना, पाञ्चाल देश पहुंच कर द्रोपदी स्वयंबर, नागकन्या से विवाह आदि विभिन्न गाथाओं को एक सूत्र में बांध कर गाया गया है -

रातुड़ी होये थोड़ा स्वपिना यैना भौत,

सुपिना मां देखद अर्जुन

बाली बासुदन्ता, नागू की धियाण,

मन ह्वेगे मोहित, चित ह्वेगे चंचल,

समलीक मुखड़ी बींकी अर्जुन सोचण लैगे,

कनु कैकी जौलू नाग लोक मा,

तै नाग लोक मा, नाग होला डसीला

मुखड़ी का हंसीला होला, पेट का डसीला,

मद पेन्दा हाथी होला, सिंगु वाला खाडू,

मरख्वाड्या भैंसा होला भी मारनू आला,

लोहा की साबली होली लाल बणाई,

चमकदी तलवारी होली ऊंकी पल्याई,

नागू की चौकी बड़ो होलो पहरा।

द्रोपदी स्वयंवर और वरण का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है -

"घूमदा घूमदा तब गैन पांचाल देश,
द्रुपद राजा की छई एक नोनी,
राजाँ की नौनी छै, देखणी दरसनी,
राजा द्रुपद न राजौ भेजेन परवाना,
अर्जुन का पास गैन तब व्यास जी,
सुणा सुणा पंडऊ पाञ्चाल देश मा
छ, द्रोपती स्वयंबर।
बामण का भेष मा छया पांच-पांडव,
पौंछी गैन द्रुपत का राज मा,
वै पाञ्चाल देश मा आया छया राजा,
राजा कर्ण छयो, जरासंध, शीशपाल,
ते द्रुपद गढ़ मां छयो लोहा को खम्बा,
ते खंबा का ऐंच धरीं छई एक माछी,
नीस बिटी एक तेल की चासणी,
राजा द्रुपद तब इना बोदा बैना,
जो बालो बेदलो तैं माछी की आंखी,
वे कुंवर ब्यूलो मी द्रोपदी को डोला।

पाण्डवल जन्म की यह रोचक वार्ता ध्यान देने योग्य है -

परगट ह्वे जन परगट ह्वे जैन
परकट ह्वे जैन पांच भाई पंडऊं।
परकट ह्वे जान कोन्ती माता,
परकट ह्वे जैन राणी द्रोपदी।
कुंती माता होली पंडौं की माता,

नंगों कु बस्तर देंद भूकों कु अन्न,
नंगों देखीक खाणू नी खांदी।
भूकों देखीक खाणू नी खांदी।
कोन्ती माता होली धर्म्याली माता।
बार बरस तैं करदी रै दुर्बासा कि सेवा,
तब रिसी दुर्बासा प्रसन्न ह्वैना।
कोन्ती माता तैं पुत्र बरदान दीने,
तेरा पांच पुत्र होला छेतरी माल,
काटीक नी कटीन, मारीक नी मरन।
तब पांच मंत्र रिषी न दीन्या,
रैण लैगे कुन्ती तब मैत घर,
एक दिन धर्म्याली तीर्थ नहेन्दी,
सूरज तैं वा पाणी चढ़ौं दी
मंत्र जप करे तब वीनं
प्रभु की लीला छई कर्ण पैदा ह्वैगे।
बार वर्ष पढ़े माता न धर्म मंत्र,
धर्म-मंत्र पढ़ीक ह्वैगेना धर्मराज,
बार वर्ष पढ़े माता न वायु मंत्र,
पैदा ह्वैने तब बली भीमसेण।
बार वर्ष करे माता न इन्द्र को जप
पैदा ह्वैगेना जी अर्जुन धनुर्धारी।

लोक गाथाएं-

जनपद में प्रचलित इन लम्बी-चौड़ी गाथाओं को पँवाड़ा कहा जाता है। गढ़वाली बोली के ये पँवाड़ा "पद्यरूप" में पाये जाने वाले स्थानीय शूरमाओं एवं वीरों तथा वीरांगनाओं के कार्य-कलापों के

चरित्र हैं जिन्हें हम गढ़वाल का लोककाव्य मानते हैं। गढ़वाली लोक-साहित्य के मर्मज्ञ श्री भजनसिंह "सिंह" 'सिंहनाद' में इन पँवाड़ों का समय 16वीं-17वीं शताब्दी मानते हैं। श्यमा परमार (भारतीय लोक-साहित्य) ने पँवाड़ों की रचना के विषय में लिखा है कि 17वीं शताब्दी के आरम्भ में पँवाड़ों की रचना तेजी से होने लगी थी। यह गति 1850 तक बनी रही। तत्पचात् राजाओं के पराक्रम का ह्रास, विषयों का अभाव, नवीन राज्य-व्यवस्था तथा पाश्चात्य प्रभाव के कारण पँवाड़े हल्के दर्जे की वस्तु समझी जाने लगी। विषयगत साम्य के आधार पर गढ़वाल में पँवाड़े, ब्रज में पमार, मालवा में पँवाड़ों, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में पँवारा तथा महाराष्ट्र का पवाड़ा अथवा पोवाड़ा, राजस्थानी विरूदावली शैली के समस्त गीतों की तरह वीरगीत माने जाते हैं। पँवाड़ों का विषय ही शूरमाओं और वीरांगनाओं का प्रेरणाप्रद जीवन है जिसमें अद्भुत पराक्रम शक्ति, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और प्रेम की यातनायें, त्याग, तपस्या, बल, बुद्धि, कौशल का प्रदर्शन,स्पर्धा, उलाहनों और उलाहनों के लिए कूद पड़ने की भावना, युवा-युवतियों को पाने की होड़, खनखनाती तलवारों का वीभत्स नाच, "मुंडों के चौंरि" और "खून के घट्ट", यौवनावस्था का उन्माद, अन्न-धन का उन्माद, शराब और वेश्याओं की रंगशालाओं की झांकियां, अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन, गुरू और इष्टदेव की कृपा, परोपकारी कार्यों का ब्योरा, शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन और लोकरीति-नीति तथा सत्यं-शिवं-सुन्दरम् सभी कुछ मिलता है। पँवाड़े लम्बी ढौंल (तर्ज) ऊँचे स्वर से गाये जाने वाली गाथायें हैं। पंवाड़ा प्रवाद का बिगड़ा रूप प्रतीत होता है। प्रवाद का अर्थ जोर से कहना होता है। शाहिर खाडिलकर (मराठी कवि) ने भी प्रवाद का अर्थ जोर से कहना माना है। बहुत कुछ हद तक पँवाड़े लम्बी-डौंल से गाये जाने वाली शूरमा और वीरांगनाओं की गीतमय गाथाएं हैं जो जनसाधारण की जुबान पर चढ़ी होती हैं। "पँवाड़े" का अर्थ है कीर्ति यह शब्द प्राकृत का है। प्राचीन मराठी के पद्य साहित्य में यह प्रयुक्त होता रहा है। अतः रूढ़ अर्थी यह शब्द ऐतिहासिक व्यक्ति के किसी चरित्र प्रसंग वर्णन के लिए शाहिर काव्य साहित्य (मराठी) में प्रयुक्त होता है। पवाड़ा त्तानस्वरूपी होता है। उसमें गूढ़ भावों का अभाव होता है। यह साहित्य सर्व-साधारण जनता के लिए बोधगम्य, सरल, नित्य बोली जाने वाली लोकभाषा में रचा होता है। उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा आदि लोक प्रचलित होते हैं। इन पँवाड़ों में मराठों तथा महाराष्ट्र की विशेषताएं प्रतिबिम्बित होती हैं।

स्पष्ट है कि पँवाड़े गीतगाथाओं में, चरित्र-वर्णन, बोधगम्य भाषा और स्थान विशेष की विशेषताओं का उल्लेख होता है।

गढ़वाली लोक गाथाओं की विशेषताएँ

(1) अज्ञात रचयिता
(2) मूल पाठ का अभाव
(3) मौखिक परम्परा
(4) स्थानीय प्रभाव
(5) लोक संगीत-नृत्य की एकरूपता
(6) साधारण और सरल शैली
(7) व्यवहार की भाषा का उपयोग
(8) निर्देशन का अभाव
(9) लम्बे कथानक के साथ विविध कथाएँ
(10) नाम और यशलिप्सा का अभाव
(11) अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि
(12) अतिश्योक्तिपूर्ण, अतिरंजित वर्णन
(13) इष्टदेव का सहायक रूप में पाया जाना
(14) गुरू तथा माँ की शिक्षा की बाहुल्यता
(15) स्थानों के विवरण में अनियमितताएँ
(16) टेक पदों की पुनरावृत्ति
(17) प्रलाप की प्रवृत्ति
(18) लोक-विश्वासों की अमिट छाप
(19) ऐतिहासिक पुरूष
(20) स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधानता
(21) स्त्री पात्रों का सशक्त पाया जाना

गढ़वाली लोक गाथाओं की विशेषताएँ

(1) अज्ञात रचयिता
(2) मूल पाठ का अभाव
(3) मौखिक परम्परा
(4) स्थानीय प्रभाव
(5) लोक संगीत-नृत्य की एकरूपता
(6) साधारण और सरल शैली
(7) व्यवहार की भाषा का उपयोग
(8) निर्देशन का अभाव
(9) लम्बे कथानक के साथ विविध कथाएँ
(10) नाम और यशलिप्सा का अभाव
(11) अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि
(12) अतिश्योक्तिपूर्ण अतिरंजित वर्णन
(13) इष्टदेव का सहायक रूप में पाया जाना
(14) गुरू तथा माँ की शिक्षा की बाहुल्यता
(15) स्थानों के विवरण में अनियमितताएँ
(16) टेक पदों की पुनरावृत्ति
(17) प्रलाप की प्रवृत्ति
(18) लोक-विश्वासों की अमिट छाप
(19) ऐतिहासिक पुरूष
(20) स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधानता
(21) स्त्री पात्रों का सशक्त पाया जाना

1. अज्ञात रचयिता-

लोक गाथाओं में रचयिता का नाम गाथा के साथ उपलब्ध नहीं होता है। कब और किसने गाथा को रचा अथवा गाया, इसका गाथा में कहीं भी विवरण नहीं है। अनन्त काल से लोग इन गाथाओं को गाते आये हैं और आज भी इनका गायन होता है। इस प्रवृत्ति के कारण ही गीतों की भाँति इन्हें भी अज्ञात कवि की रचना माना जाता है। रचयिता का अज्ञात होना इनकी अपनी मौलिक विशेषता है और प्राचीनता की द्योतक है।

2. मूल पाठ का अभाव-

एक ही गाथा के यहाँ विविध रूप मिलते हैं। इन विविध रूपों के कारण मूल रूप की समस्या उपस्थित होती है। कोई ऐसा प्रामाणिक आधार नहीं मिलता है जिसके आधार पर किसी एक को मूल विशुद्ध पाठ माना जा सके। इसलिए गाथा का हर प्रचलित रूप महत्वपूर्ण मानना पड़ता है। लोकवाणी सेनिस्सृत रूप ही मूल है और यह जनपद गाथाओं की दूसरी विशेषता है।

3. मौखिक परम्परा-

प्राचीन काल से इन गाथाओं को जनपद के नवयुवकों और युवतियों ने अपने बूढ़े दादा अथवा दादियों से ही सुना है। लिपिबद्ध रूप में ये कभी भी उपलब्ध नहीं हुई हैं। आज भी इनका रूप मौखिक ही मिलता है। लोक का विश्वास है कि ये मौखिक ही कही गयी हैं और कही जानी चाहिए। लिपिबद्ध करने पर इनका महत्व घट जाता है। सिजविक तथा गूमर का मत लोक के इस विश्वास के अनुकूल ही लगता हैकिलिपिबद्ध किये जाने पर उतना आनन्द नहीं आता है जितना कि मौखिक गायन में आता है।

4. स्थानीय प्रभाव-

मौखिक परम्परा के कारण गाथाओं का एकसा रूप जनपद में नहीं मिलता है। जनपद के विभिन्न भागों में एक ही गाथा पर स्थान विशेष की परिस्थितियों का प्रबल प्रभाव मिलता है जिसके फलस्वरूप पाठान्तर गाथाओं की एक बहुत बड़ी विशेषता है। रीति-नीति, प्रकृति और भौगोलिक

परिस्थिति का गाथा के पाठान्तर में बहुत बड़ा योग है। उत्तरी और दक्षिणी जनपद में गायी जाने वाली एक ही गाथा में यह प्रभाव साफ झलकता है।

5. लोक संगीत नृत्य की एकरूपता-

लोक संगीत और नृत्य गाथाओं के अविभाज्य अंग हैं। पूरे जनपद में गाथाएं ढोल या हुड़की के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। बिना वाद्य-यन्त्र के गाथा का रंग जमता नहीं है। जहां गाथा है वहाँ संगीत है और जहां संगीत-नृत्य है वहां पद्यात्मक गाथा अथवा गीत हैं।

6. साधारण, सरल और प्रभावोत्पादक शैली-

जनसाधारण के मुँह से निसृत इन गाथाओं की शैली भी उतनी ही सरल है जितना सीधा, सरल और भोला स्वयं लोक है। लोक कथन में कहीं भी जटिलता नहीं मिलती है। अटपटी पहेलियां कहीं भी नहीं बुझाई गयी हैं। गायक सरल किन्तु प्रभोत्पादक ओजपूर्ण ढंग से गाथा को प्रारम्भ करता है, जिसके प्रभाव के फलस्वरूप भोला लोक झूम उठता है।

7. व्यवहार की भाषा-

गाथाओं की भाषा लोक मुँह लगी चेली है। आये दिन जिस भाषा का लोक प्रयोग करता आया है उसी में यह लोक काव्य (गाथा) रचा मिलता है। अनलंकृत गाथाओं की इस भाषा में जितनी गम्भीरता है वह लोक बुद्धि के परे की वस्तु नहीं है। लोक द्वारा लोक की भाषा में रचा गया यह लोक भाषा-काव्य है, जिसमें स्वाभाविकता और बल है।

8. निर्देशन का अभाव -

लोक कथाओं की तरह निर्देशन और उपदेशात्मक वृत्ति गाथाओं में नहीं मिलती है। साधारण उद्देश्य, कहीं-कहीं गाथाओं में उपदेशवृत्ति रही है। लेकिन मुख्य उद्देश्य, कहीं भी उपदेश नहीं मिलता है।

9. लम्बा कथानक विविध कथाओं का चयन-

गाथाओं के कथानक लम्बे हैं। एक ही गाथा में तीन-तीन, चार-चार कथाएँ साथ चलती हैं, इस प्रकार एक गाथा के साथ विभिन्न कथाओं का चयन मिलता है। कथाओं के इस क्रम में बीच में आने वाली कथाओं की इति बीच में ही हो जाती है और प्रारम्भ में चलने वाली गाथा का अन्त में फल निकलता है।

10. नाम और यश लिप्सा का अभाव-

इस ओर पहले ही ध्यान आकर्षित किया जा चुका है कि रचयिताओं के नामों का गाथाओं में अभाव है। किसी भी गाथाकार कवि, भड़, हुड्क्या ने अपना नाम गाथा के साथ नहीं दिया है। गाथाओं में पायी जाने वाली इस मनोवृत्ति से नाम और यश की लिप्सा का अभाव स्वतः लोक गाथाओं में छलकता है। इनकी रचना में नाम और यश के स्थान पर लोकरंजन और लोक उत्स की भावना कवि, हुड्क्या अथवा भड़ के हृदय में रही है। इसलिए यह लोक के द्वारा लोक के लिए लिखा गया काव्य है।

11. अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि-

गढ़वाल में अछरियों (अप्सराओं) का विशेष महत्व है। अपनी अलौकिक शक्ति और सम्मोहन के लिये ये प्रसिद्ध हैं। लोक गाथाओं में इन अछरियों का विवरण आया है। कितनी ही लोक गाथाओं में जहां एक ओर ये नायक पर मुग्ध होकर उन्हें ले डूबी हैं वहां दूसरी ओर नायकों की सहायक भी सिद्ध हुई मिलती हैं।

12. अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन-

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन गाथाओं की एक बड़ी विशेषता है। लोक नायकों की शक्ति, वीरता और पराक्रम का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। नायकों की सुन्दरता और नायिकाओं के सौन्दर्य के वर्णन अतिरंजित ही नहीं अस्वाभाविक भी लगते हैं।

13. इष्टदेव का सहायक होना-

गाथाओं में इष्टदेव (स्थानीय देवता) लोक नायकों के सहायक मिलते हैं। असहाय अवस्था में अथवा विपत्ति से मुक्त होने के लिए नायकों द्वारा इष्टदेव का स्मरण हुआ है और इष्टदेव ने अपने अलौकिक बल से उन्हें मुक्त किया है।

14. गुरू तथा माँ द्वारा बुझौणी-

गाथाओं में गुरू तथा माँ द्वारा नायकों को रोका, टोका तथा विवेक से समझाया गया है। मुख्यतः किसी रमणी पर मुग्ध होने की अवस्था में माँ ने पुत्र को बुझौणी बुझायी हैं। गुरू तथा माँ का स्थान गाथाओं में बहुत ऊँचा है।

15. स्थानों के वर्णन में अनियमितताएँ-

मूल रूप के लिपिबद्ध न होने के कारण स्थानीय प्रभाव के फलस्वरूप गाथाओं में निर्दिष्ट स्थानों की स्थिति एवं लोक नायक की रण-यात्राओं के क्रम में स्थानों के वर्णन में अनियमितता बरती गयी है। इन अनियमितताओं के कारण लोक नायक की रण-यात्रा का क्रम उल्टा-पुल्टा सा लगता है।

16. टेक पदों की पुनरावृत्ति-

गाथाओं में टेक पद (जो कि गाथा के प्रारम्भ का पद होता है) की पुनरावृत्ति मिलती है। हर दूसरे पद के बाद प्रथम पद को दुहराया जाता है। इस प्रकार टेक पद के दुहराये जाने पर गाथा में सतत चयन और संगीतात्मकता मिलती है।

17. प्रलाप, प्रवाद की प्रवृत्ति-

इन गाथाओं में सहानुभूति और सहृदयता से चिल्लाने अथवा जोर-जोर से गाथा गाने की प्रवृत्ति मिलती है। गायक धीरे से नहीं बल्कि कान पर हथेली अथवा उंगली रखकर (जैसे कि वह स्वयं भावुकतावश सुनना नहीं चाहता है) जोर-जोर से चिल्लाकर गायन प्रारम्भ करता है। प्रारम्भ की अवस्था में हे SSSSSSSSS स्वर को बढ़ाकर ही वह गाथा प्रारम्भ करता है। निश्चय ही प्रलाप प्रमाद की अवस्था गाथाकार की रहती है।

18. लोक-विश्वासों का अमिट प्रभाव-

स्थानीय लोक रीति-नीति और विश्वासों की गाथाओं में छाप मिलती है। देव विश्वास और लोकानुभव इनमें प्रमुख हैं।

19.ऐतिहासिक पुरूष-

गाथाओं में गढ़वाल के इतिहास से सम्बन्धित राजपुरूषों के अधीनस्थ मल्लों अथवा नायकों (जिन्हें राजा भी कहा गया है) के विवरण अधिक हैं। ऐतिहासिक पुरुषों के साथ इस प्रकार गाथाओं का क्रम इतिहास के साथ-साथ चलता है जिसने राजनीति को बहुत प्रभावित किया है।

20. स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधानता-

गाथाओं में युवा स्त्रियों के प्रेम की होड़ सबसे बलवती मिलती है। यदि इन्हें स्त्री-प्रेम विषयक चरित्र गाथाएं कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। लगभग सभी गाथाओं में शक्ति और वीरता का प्रदर्शन प्रेम की मुग्धावस्था में किया गया है।

21. स्त्री पात्रों का सशक्त होना-

लोक गाथाओं में स्त्री चरित्र सशक्त मिलते हैं। पति की मृत्यु अथवा युद्ध में हताहत होने की अवस्था में स्त्रियों ने अपनी शक्ति का पूरा-पूरा निर्वाह किया है। पुरूषों की भाँति स्त्रियों ने भी युद्ध लड़े हैं और बहादुरी से अपने आपको आग की जलती लपटों में झोंका है। स्त्रियों द्वारा प्रेम का पूरा-पूरा निर्वाह किया मिलता है।

जगदेव पवांर की लोकगाथा, पंवार वंश के राजपुरुष की राजवंशीय गाथा है। इस गाथा में जगदेव पंवार के शौर्य का वर्णन है तथा मलासी गढ़ और धारा नगरी के संघर्ष की कहानी है। लोक गाथा में पंचनाम देवता, शिव-पार्वती, चंचू भाट काली, कंकाली अपनी दैवी शक्ति दिखाकर जगदेव की सहायता करती हैं। गढू-सुम्याल की लोक गाथा में, गढू सुम्याल, लीला देवी,दीपू और भूरमा की कथा है। खिमसारी हाट, अरणी वन, दीपा तल्ला सलाणा और मल्ला सलाण के क्षेत्र में इस शौर्य-गाथा की पृष्ठभूमि है। गाथा में गढू-सुम्यालनेदैवी-कृपा से अद्‌भुत चमत्कार दिखाये हैं। गढू-सुम्याल अपनी प्रेमिका को पाने

के लिए वीरोचित शौर्य और आशक्ति का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें यत्र-तत्र अत्याचार और शोषण का नंगा नाच भी है। मालू-राजुला लोक गाथा में रंगीली बैराट और सौक्यानी काटे के दो प्रेमियों की प्रेम-कथा है। इस प्रेम प्रकरण में भैरों की कृपा से नायक अपनी प्रेयसी प्राप्त करता है। भैरों विघनी बिजैपाल का कलेजा काट कर खा जाता है। पूरी कथा बाणा हाट उत्तरकाशी और जलंधर तथा पँवाली काठाँ के इर्द-गिर्द घूमती है। जीतू बगड्वाल की कथा बगूड़ी गाँव, मलाटी के खेरे, बनगढ़, खैंट और मोल खेत के आसपास की प्रेम गाथा है जिसमें, खैंट की आछरियाँ जीतू का अपहरण करती हैं, जीतू को उड़ा ले जाती हैं। लेकिन जीतू का इष्टदेव, बागुड़ी का भैरव प्रकट होकर जीतू की रक्षा करता है। गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य में यह प्रेम कथा, शीरी-फरहाद और हीर-रांझा की तरह त्याग और उत्सर्ग की प्रेम-गाथा है तो जीतू के दुराचार और अत्याचार की अत्यन्त व्यभिचारी और घृणित कहानी भी है। रणूरौत एक बीर योद्धा था। वह राजा के राज्य-विस्तार में अपनी शूरता-वीरता के कारण सहायक होता है तथा एक प्रेयसी के प्रेमजाल में फंसकर मृत्यु को प्राप्त होता है। यह गाथा रणूरौत, अमरावती और स्यूँ सला की प्रेम कहानी है। इस गाथा का कार्य क्षेत्र श्रीनगर, पालीकोट, दूण, और दिवाली खाल रहा है। गाथा में अलौकिक शक्ति झाली भाली रणू रौत की सहायता करती है। भानुभँपिला की गाथा का शौर्य क्षेत्र हिडवार्णी कोट, कलूनीकोट, ग्वाड़ और राग साड़ी रहा है। गाथा में भानुभौंपेला की अति माननीय शक्ति का प्रदर्शन किया मिलता है। वह मर कर भी दैवी कृपा से पुनर्जीवित हो उठता है। इस लोक गाथा में भानु भौंपिला और अमरावती के मांसल देह की आसक्ति की अद्भुत कहानी है। लोक गाथाओं के अन्य चरित्रों की भाँति इस गाथा के चरित्र की अद्भुत कहानी भी, प्रेम प्रसंग और प्रेम के लिए आत्मोत्सर्गकी कहानी है। कालू भण्डारी की गाथा का कार्य क्षेत्र, नवलीगढ़ और गंगाडीहाट है। कालू, एक मल्ल था। वह स्वप्न में नवलीगढ़ की ध्यानमाला पर मोहित होता है। यहीं से प्रेम गाथा का ताना-बाना बनता है। कालू ध्यानमाला को प्राप्त कर लेता है। दोनों प्रेम-प्यार की बातें करते अपना जीवन बिताते हैं तभी मौका पाकर लूला गंगोला, धोके से कालू को मार डालता है। प्रेम की इस गाथा का यहीं अंत होता है। अंत में ध्यानमाला कालू के मृत शरीर के साथ सती हो जाती है। गढ़वाल में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक स्थानीय पुरुषों की गाथाएं प्रायः प्रेम-प्यार, और स्वप्न में देखी राजकुमारियों के सौंदर्य पर मर मिटने के प्रेमाख्यान हैं। इनमें अद्भुत शूरता-वीरता और प्रेम के लिए मर मिटने की भावना के साथ जीवित ही सती होने से लेकर प्रेयसी के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने की प्राचीन परम्परा मिलती

है। नायक प्रायः अति मानवीय शक्ति सम्पन्न पाये गये हैं। कहीं-कहीं दुराचार और नृशसंता के घृणित उदाहरण भी हैं। वीरांगनाओं की कथाओं में जोतर माला, पत्थर माला, ध्यानमाला, अमरावती, चन्द्रावली, सुरमा, संरूकुमैण, नौरंगी रजूला, और बरूणा की प्रेम गाथाएं हैं। लेकिन इन सबसे अलग तीलू रौतेली (कुमारी) की वीरगाथा भी है। तीलू रौतेली को शूरता-वीरता में गढ़वाल की लक्ष्मीबाई कहा गया है। अपने पिता और भाई के साथ किये गये दुर्व्यवहार का बदला लेने के लिए तीलू ने अपने जीवन की आहुति दे दी थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उसने तलवार थाम ली थी और बाईस वर्ष की अवस्था में वह अपने पिता और भाइयों का बदला लेकर स्वर्ग सिधार गई थी। इस वीर युवती की गाथा आज सारे गढ़वाल के घरों में गूँजती मिलती है। प्रस्तुत है तीलू के शौर्य की वीर गाथा -

गाथा तिलू कुमारी (रौतेली)

ओ काँठा को कोथिग उरयो,
ओ तिलु कौतिक जौला,
धका धैं धैं तिलू रौतेली धका धैं धैं।
द्वी बीर मेरा रणसूर ह्वेला,
भगत पता को बदलो लेक कौतिक खेलला,
अहो रणसूरा बाजा बजी गेनारौतेली,
बोइयों को गीत तुम रणखेतू बतावा,
तीलू रौतेली बोदा रणसाज सजावा,
ईजा मैंण यू बीरू टीका लगावासाज सजाबा,
मैं तीलू बोलद जौका भाई होला जैकी बैण होली,
ओ रणखेतू जाला
बल्लू पहरी तु मुल्क जाइका धाई लगैदे
बीरों की भ्रकुटी तनी गे
तीलू रौतेली।
ओ अब बूढ़ो सलाण नाचण लाग

अब नई जवानी आई गे,

ले देवकी द्वी सखी संग चली गे ओ खैरागढ़ मा युद्ध लगी गे,

खड़कू रौत तब मरी गे,

औ कांडा को कौथिग उरो,

तिलू रौतेली तुम पुराणा हथियार पुजावा

अपनी ढाल कटार तलवार सजावा

घमडू की हुड़की बजण बैठे

ओ रणसूर साज सजीक आगे तीलू रौतेली

दीवा को उस्टान करयाल

रण जीति घर आइक गाडूलू छतर रे

पहुंची गे तीलू टकोली भौन

यख द्विं कत्यरो मारियाल

तब तोलू पहुंचे गे सल्ड महादेव

ओ सिंगनी शार्दूला

शार्दूला तीलू अब बढ़ीगे मिलण भैण

यख वख मारी कै की बढ़ीगै चौखुटिया देघाट

बिजय मिल पर तीलू छिरीगे

वेल्लू देवकी रणखेतूमा घखी काम थैना

इतनामा शिबूबू पोखिरियाल मदद लेक आइगे

जब शार्दूला लड़क-लड़द पहुंची गे कालिंका खाल

सराई खेत आइगे घमसाण युद्ध

शार्दूला की मार से कत्यूरा रण छोड़ी भागीगे

यूं कत्यूरों क खून से तर्षण देईका कौतिक खेललो

रणभूत पितरों की यख तर्पण दिउला

यख शिबू पोखिरियाल तर्पण देण लगो गे,
सराई सेज नाम तबी से पड़े,
यो कौथिग तलवारियों को होलो,
ये ताई खेलला मर्दाना मस्ताना रणबांकुरा जवान
सरदारा चेला तुम रणखेत चलो,
ओ रणसिंध रण भेरी नगाड़ा बजीगे,
ओ शिब्बू ब्वाड़ा तर्पण करण खैरागढ़ चली गे,
अच शार्दुला पहुंची गे, खैरागढ़
यख जीतू कत्यूरा मारी राजुला
जै रौतेली आगे बढ़ी गे
रणजीति सिंघणीं दुबटा मां नाण लंगीगे,
रामू रजवार घात पाई गे,
राजुला तु रणखण्डी छई
अपणों काम कैकी नाम नाम धरीगे
कौतिक जाईका खेलणों छयो खेली याले,
याद तौ की जुग जुग रहली
तू साक्षी रैली खाटुली कि देवी
तू साक्षी रैली सल्ड महादेव
तू साक्षी रैली पंचनाम देव
तू साक्षी रैली कालिका की देवी
तू साक्षी रैली लंगूरिया भैरों
तू अमर रैली तीलू सिंघणीं शार्दूला
जब तक भूमि सूरज आसमान
तीलू रौतेला की तब तक याद रैली।

सुरजू कुंवर (लोकनायक) लोक गाथा

(1)

एक दिन कुंवर त्वीकू राति का बीरवैमा
नागु का सुरजू वाला सुपीनो ह्वे गये
राति ह्वे थोड़ा तिन स्वीणों जम्ये भौत
पौंछीगे सुरजू जैकी ताता लूहागढ़
सुपिना मा देखे तिन राणी जोत माला

(2)

दे ख्याले सुरजू तिन राणीं को बंगला। जैं राणी को होला आज ठैठाई को रंग
सुतरी पलंग जैं को नेलू झमकार
कवा सुली सेज जैको घाव ड़िया घांड
हिमा च सुरीज जैको पीठी चंदरमा
कमरी दिखेंदं जैकी कुमाली सी ठांण
विणोरी दिखेंद जै कि डांडा सी चुडीणा
सिदोली दिखेंद जै कि धौली जैसों फाट

(3)

फिलीरी दिखेद जैकि धोबी सी मुंदरी,
नाकुणी दिखेंद जैंकि खडक सी धार,
औठणी दिखेंद जैकि दालिमा सी फूल,
दांतुणी दिखेंदी जैकि जाई जैसी कली।
बैठायो को रंग तै को कोठायूं टूटद,
सोवन सिरवाणी जैकी रूपा की पैद्याणी।
रांड की जोतरा देंदा जलमू की बोली,
तु ह्वेलू कुंवर सांचू सिहणी सपूत,
तू ऐल्यो कुंवर मेरा ताता लूहा गढ़।
सिंहणी को ह्वेलो ऐलो ये बांका भोट्टंत,
स्यालणीं को ह्वेलो रैलयो भीमली बजार।

(4)

नौ दिन नौ राति बाला गिजनारै गये,
नौ लाख कैतुरी कौल धाम झअल् एगे।
धाम झअल् येगे बेटा सभा सुन्न रैगे,
चचड़ैकी उठी कौल बवरैकी बीज।
जाग दो ह्वे जांदी है नाग सुरीज।
जाग दो ह्वे गये बाला कांटो को सुरीज।
तेरि जिया नागीण बाला धावड़ी लगौंदा।

(5)

किलैकी सुरजू बेटा कछड़ी नी औन्दो,
किलैकी सुरजू आज ठउ नी जिमदो।
नौ दिन ह्वेगैना मिन सूरजू नि देख्यो,
कागई सूरजू मेरा यकुला येकन्तू।
त्वी बिना कुंवर तेरी भीमली सुन्न ह्वेगी।

(6)

तेरी भुली सूरजी त्वे धावड़ी लगौंदा,
त्वीकुणी सूरज कनी उनिन्दा पड़ी च।
घांम झअल यैगे बेटा, सभा सुन्न ह्वेगे।
चचडैकि उठी कौल बवरैकि बीजे।
यैगये सूरजू कौल नौरंगी तिवारी।
मैं कुणी जिया ब्वै आज सुपीनो ह्वेगे,
सुपीन मा देखे मिना राणी जोतमाला।
मिन जाणा इजा ब्वै ताता लूहागढ़।

(7)

रांड की जोतरा देंदा, जलमू की बोली,
सिहणीं को ह्वेलो ऐली ताता लूहागढ़।
स्यालणी को ह्वेलो रैलो भिमली बाजार।
क्वी सोरो जांचदो वेकू बांट-बांटी देन्दो।
क्वी बैरी जांचदो मीकू हत्यारा भीड़ देन्दू।
तिरया को जांचणो मीकू मारणो ह्वे गयी।
मारणो ह्वे जाना जिया जोतरा का बाना।
भौंकुछ ह्वे जाना मिना जाणा लूहागढ़।

(8)

कित ल्हौलो जोतरा इजा कित रौलो नाटो,
ह्वेगैना जिया ब्बै मेरा बांही का बचन।
त्वेतई जिया ब्बै बाला, बुझौणी बुझौंद,
नि जाणों कुंवर मेरा बैरी का भकौंणा,
निल्हौणो सूरजू तिन जोतरा को भामों।
नि जाणों सूरजू वाला ताता लूहागढ़।
तू छई कुंवर मेरो इकलो यकन्तो,
तू छई कुंवर मेरो कांठा सि सूरज।
तू छई कुंवर मेरो चन्दन सि गेंद,
तू छई कुंवर बाला पालिंगा सि गेंद।
तू ह्वेलू सूरजू मेरा धार्णिया सि ठुंसू।
तेरो बाबू गैछो बेटा घर बौड़ौ नि होये,
तेरो दादो गैछौ बेटा बौड़ी कि नि आयो,
जो गैना भोटन्त बेटा बौड़ी की नि आया।
तेरो दिदा गैछयो बाला घर बौड़ी नी आयो,

तेरो दिदा बरमी रैगे बरमी डुगृयूं पर।

(9)

तेरी तिल्लू बाखारि बेटा छट-छट छ्यूंदा,
मान्याल कुंवर त्वेकु असगुन ह्वेगे।
हून्दी मऊ कु बेटा कांदली नि हून्दी,
जाँदी मऊ कू बेटा अडयी नि लांदी।
बिराणा देशा को बेटा गारो बैरी होन्दा,
नि जाणो कुंवर मेरा बैरयूंकी भकौणा।
मानजा सूरजू बेटा माता की अड्याई,
दानों कू बोलियूं बाला औला को सवाद।
तेरो होलो सूरजू बाला भिमली बजार,
कनि होली कुंवर तेरी नौरंगी तिबारी।
तेरि खोली गणेश वाला मुख च झूमदो,
तेरी भुली सुरजी बाला दणमण रोंदा।
कुदेलो दिदाजी भीमली को दैजो,
को ऋतु जणालो-को बसन्त बौडालो।

(11)

मिन जांणा सुरजी भुली ताता लूहागढ़,
मी ल्हौलो सुरजी त्वीकू मल्यागिरी सोनो।
मल्यागिरि सोना की त्वीकू सोन चूड़ी गडौलो।
त्वी को लौलो सुरजी भुली भिमली को दैजो।
घर बौडी येजौलो धीलो सरनामी दैजो।
त्वी ऋतु जणौलो-त्वी बसन्त बौडौलो।
आज का भोल भुली भौं कुछ ह्वेजैन,
मरदू को बचणो भुली चार दिन हुन्द।

(12)

त्वीतई जिया ब्वै बाला बुझौणी बुझौंद,

मान्याला सुरजू बेटा दाना की अडायीं।

त्वी कुणी कुंवर बाला नयो ब्यो करूंला,

नयो व्यो करूंला नाम जोतरा धरूंला।

तेरी तिल्लू बाखरी बेटा छट-छट छयूंदा।

निल्हेणों सूरजू तिना जोतरा को भामो।

(13)

मिन जाणा इजा ब्बै आज भोटन्त का राज,

मोरणो ह्वेजाना इजा जोतरा का बाना।

नयो ब्यऊ करीली तू सूरत कौक ल्हैली,

घर बौड़ी यैजोलू इजा तिलू मारी खौलो,

भौं कुछ ह्वेजैन जाण बालुरी भोटन्त।

त्वी तई इजा ब्बै बाला बुझौणी बुझौंद,

तु जांदी सूरजू गुरू गोरख का पास,

बागुरी गोरख तेरी रकसा करलो।

जैलागे सूरजू गुरू गोरख की धुनी,

गोरख की धुनी होला नौं नाथ की सिद्धी।

बारा नाम बैरागी सोल नाम संन्यासी।

(14)

गोरख का पास बाला अलक लगौंट,

तू बोल सूरजू बाला कै काम को आई।

मैकुणी देदेणा गुरू सांवर की विद्या।

बोकासी जाप देणा पंजाबी चुंगटी।

तै दिन गोरख त्वी कू समझौंण लागे,
तेरी माता को छई बेटा तु येको येकन्तू।
मान्याल सूरजू बाला भोटन्त नी जाणों,
सुपीना की बात जन बगड़ का माछा।
जो गैना भोटन्त बाला धर बौड़ी नी आया।
तै दिन सूरजू बोदा भौं कुछ ह्वे जैना,
मिन जाणा गुरजी आज भोटन्त का राज।

(15)

जो बैरी जांचदा वैकू हत्यार भीड़ देदों,
जो माता जांचदी गुरू थाल छोड़ि देदों।
तिरिया को जांचणों मीकू मरणों ह्वे गये।

(16)

नौ दिन नौ राति रैगे गोरख का पास,
धूनी लगौंद चंला आसण बिछौंद।
गाड़ याले गोरख तिन हाथ ताल छुरी,
ताल-छुरी गाड़े तैकि मूंडली मूंड़ियाले।
रूप से कन्दूणियं धनी खुरसानी चीरा,
पैरने सुरीज त्वीकु फटीक मुन्दरा।
सुफेद कपड़यूं भगोया चार्याले,
पैराये गुरू त्वींकू भगोया मुड़वासी।
कांधू मां धर्याले तेरा खरवा की झोली,
एक हाथ देये तेरो तेजमली सोटा,
दूजा हाथ देये तेरा नौपुरी को बांस।

धर्याले बगल पर बगमरी आसण।
त्वीकुणे दियाले बाला कानू को मंतर।
बोकसाड़ी जाप देये कांवर की धूल,
साबर की विद्या देये पंजाबी चुंगटी।
त्वीकुणे कुंवर जब बिपदा पड़ली,
मीकुणी सूरजू तब याद करी याली।

(17)

ऐगये सूरजू लौटी नौलाख कैंतुरी,
पकैदे जिया व्वैं मींकू द्वी पाथा कलेउ।
चौपथा सामल मीकू बाटा को घरियाल,
मिन जांणा जिया ब्वै आज ताता लूहागढ़।
औडू नेडू ये जादी मेरी तेलिया बाड़णी,
लगैदे बाडणी मेरी जुलफिऊँमा तेल।
औडू नेडू देजादी मेरी हे माला धोबणीं,
लगैदे धोबणी मेरा कपड़ौ छुयेड़ों।
कपड़ि धोबणी मेरा कपड़ौ छुयेड़ों।
कपड़ि सजैदे मेरी तूमी जसो फूल,
मिन जाणा धोबणीं वे बांका भोटन्ता।

(18)

पैराले सूरजू तीन झिलमिलों जामो,
ओडू नेडू बुलावा मेरी घोड़ी का बखड्या।
गाड़ी दे बखड्या मेरी सुर्ज मुखी घोड़ी,
मल्यो रंग घोड़ी मेरी सजाई देवा।
सजैदे बखड्या घोड़ी कांसी का घूंघर,
धोड़ी को पैरेदे मेरी नेओरी की माला।

(19)

सघयाले सूरजूतिना सरपेंच कलंकी,
पैर्याले कुंवर तिन बख्तरी जामो।
कांधि मां धर्याले तिन चौंसी को गलेप,
धर्माले बगल, तिन, पैनी समशीर
सजीगे सूरजू आज कांठ सी सूरज,
ह्वेगये कुंवर झट घोड़ी की सवारी।
मार्याले घोड़ी को तिन निगुरो कुरड़ा,
तेरी घोड़ी जै लागी बाला वीं काली बदली।
तेरी घोड़ी पहुंची बाला सूरज मंडल,
तेरी घोड़ी पहुंची गे, बाला वे मेघ मंडल।
तेरि घोड़ी यैगये बात्या वीं थाली चौरड़ी।

(20)

पौंछिगे सूरजू आज नागणीं का सेरा,
मिलीगे कुंवर त्वीकू हिमा मारछ्याल।
त्वीकुणी कुंवर हिमा बुझौणीं बुझौंद,
नागणीं का सेरा बाला चुड़ैण लगीं च।
भरती सिभार जैंका चीणा सी मुखड़ा।
नागणीं का सेरा होला सोत सौ नाग।
पौड़ीगे कुंवर जैकी चुड़ीणू का घेरा,
मल्यो रंग घोड़ी तेरी धांवड़ीं लगौंद।

(21)

नौ दिन नौ राति रैगे नागिण्यों का घेरा,
बिपदा का मारा जादू का सुपीना।

रैगड़ं गुरजी आज चुड़ींण का घेरा,
फूक्याले गुरू न गाड़ी धुनी की बभूत।
चचड़ेकी उठी बालो बबरैकी बीजे,
गाड्याले कुंवर तिन नंगी समशीर,
मार्याले कुंवर तिन रांड कि चुड़ीण।

(22)

घोड़ी को सवार पौंछी उचां खैटाखाल,
धार मा बैठीक तिन आसण लगाये।
खैटाखाल रौंदी बाला खैट की अछरी,
बजौण सूरजू बैठी नौसुर बांसुरी।
मुरली की धुन पौछी धार वार पार,
मुरली को सुर पौछी आछरयूं का कान,
नौछमी मुरली बाजी अनमनी भांति,
डांडि कांठी गूंजी गये मुरली को सुर।
सूणीं सूणीं सुरसौरी बेसुध ह्वेगेना,
को ह्वोलू हौंसिया इनो बंसी को बजैया।
अछरी निमानी येने सूरजू का पास,
राणियूं को रसिया छैंई फूलू को हौंसिया।

(23)

नौ दिन नौ राति रैग आंछिरयूं की फेरा,
आछिरयूं तैं बाला तब बुझौणीं बुझौंद,
मिन जाणा दगड्यों आज बालुरी भौटन्त,
मिन लाणा दगड्यों आज जोतरा को डोला।
मौदेन्त औलू रौलो मीं तुम्हारा पास।

(24)

पौछिगे सूरजू हुणियों का देश,

एक खुट्यूं को राज जौकि बोली निबिर्गीदी।

फेंक्याले सूरजू तिन पजाबी चुंगटी।

पोड़िगे राक्सु जख मां काली को ज्वाप,

तेरी धोड़ी पहुंची में तब बिषैली कांठी,

नौ दिन ह्वैगेन तब त्वीकू बिष लागी गेये।

एक हड़ सूरजू तेरा किरम पड़ी गेना,

तब जांद सूरजू फेर गुरू का सुपीना,

रैगउं गुरू जी आज बिषूली कांठ्यूं।

गाड़ी याला गुरू न संजीवनी विद्या,

हैसदाजयूँदाल गाड्या अमृत की तुम्बी।

मारिने जूयंदाल बालों बबरैकि बीज,

तेरी घोड़ी जैलागी गैरी स्रूंदरी।

(25)

तेरी घोड़ी पौछिगे बाला वे बांका भोटन्त,

जै लागया कुंवर बालां ताता लूहागढ़।

चाँन्दनी का चौक बाला घुड़दौड़ लगौंद,

देख्याले सुरजू तिना भावी को बंगला।

नजरू ये गये त्वीकू राणी जोतमाला,

नजरू यैगये बाँकू घोड़ी को सवार।

जाघऊं हे छोरी स्वारा पूर्व की मोरी,

को बैख यैहोलो मेरी चान्दनी का चौक।

ओडू येजादी मेरी आज स्वारा छोरी,

ल्ही औदी सूरजू मेरा छतीश अवासू।

(26)

बैठिगै कुंवर जैकि सुतरी पलंग,
त्वी कुणी जोतरा बाला बोली मरदी।
तब बैठी पलंग पैली पांसा खेली याला,
गाड़ी ने जोतरा तीन हार जीत पांसा।
रांड की जोतरा पैली भोजन दीयाला,
नौ दिन ह्वैगेना मिना भोजन नी जीम्यों।
भोजन जिमै की खेल हार जींत पांसा।

(27)

बणैन जोतरा तिन बावन बिंजन,
निर्पाणीं की खीर सौर सदबेली घिऊ।
औ बाला सूरजू झट भोजन जीम्याल,
भोजन जीमिकि गाड़े हार जीत पांसा।
गाड़ीन जोतरा तिन हस्ती दांत पांसा,
खेलण बैठीगे बाला पांसड्यों को खेल,
खेलद खेलद नौ दिन ह्वेई गेना,
खेलद-खेलद हारमान होइगे,
बोलद सूरजू भारी प्यास लगीगे।
जाधंऊ तू स्वार्णी छोरी जल लेऊ भोरी,
हरगिज नी पिऊं पाणी छोरी को लयूं।
अपणा हाथ को पाणी मीं तै पिलै याल,
तब लौंद जोतरा भैर जेकी जल भोरी।
झट उठे सूरजू बैदे जीत की तरफ,
पैले-पैले को दऊं डाले धरती का नऊं,
दूजो दंऊ डाले पंचदेवों का नऊं।

(28)

तीजो दऊं जीते तिन धन दी दरब,
चौथी दऊं जीते तिन भावी को बंगला।
पाच्वीं दऊं जीते तिना राणीं जोतमाला,
जै लागूये, जोतरा बालो नौरंग तिवारी।
राणीं का आवास मा जांदा छतीस भवन,
पैर्याले जोतरा तिन ल्होसेडो घाघरो।
पैर्याले जोतरा तिन मखमली आंगी,
धर्याले शिर मा तिन पामड़ी दुशालो।
पाये का पोलियां पैर्या शिर शीसफूल,
तेरा नौ कू सूरजू मिना स्वांग घरियाले।

(29)

यैगये जोतरा तब गगन सीड्यूं पर,
पौछिगे जोतरा जैकि चांदनी का चौक।
तेरा बाना जोतरा छोड़े नौ लाख कैतुरा,
सजी गये जोतरा तेरो औला सारी डोला।
मार्याले घोड़ा कू तिना निगुरों कुरड़ो,
पोछिगें सूरजू यैको नौ लाख कैतुरा।
तेरी घोड़ी पौंछिगे बाला भीमली बजार,
पौंछगें भीमली बाला जोतरा को डोला।
धर्याले जोतरा राणी छतीसू अवास,
नौलाख कैतुरा तैका मांगल गयेला।
बाजली भीमली आज आनन्द बधाई।
नौरंग तिवारी तख हास बरेंद,
बुलायें सूरजू तिन भुली सूरजी,
घर बौड़ी ह्वेगऊं भुली राजे दैजो ल्हीजा।
दियाले सुरजी त्वीकु द्वी बैलों की जोड़ी,
गायूं को गोठियार देई बाखिरयूं की तांदी।
तू हवैली सूरजू सांचो सिंहणीं को जायो।

अध्याय - 4

गढ़वाल की लोक कथाएं

लोक कथाओं की प्राचीनता-

लोक कथाओं की अति प्राचीन परम्परा है। वैदिक संहिताओं में इन कथाओं के बीज उपलब्ध हैं। ऋषि शुनः शेप का आख्यान ऋग्वेद में मिलता है। अपाला, आत्रेयी के आदर्श चरित्र का वर्णन इसी वेद में है। च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी सुन्दर ढंग से वर्णित है। इसी तरह ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अनेक कथाएं हैं। पुरूरवा और अर्वशी की कथा शतपथ ब्राह्मण में है तथा शाठ्यापन ब्राह्मण में वृश नामक पुरोहित के महत्व का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में दध्यङः आर्थवण की कथा का उल्लेख है। इसका पौराणिक नाम दधीचि है। नचिकेता की कथा और केनोपनिषद में वृहदेवता षड्मुख शिष्य रचित कात्यायन, सर्वानुक्रमणी की वेदार्थ दीपिका टीका में है।

वृहत्कथा संस्कृत लोक कथाओं का सबसे प्राचीन कथा, गुणाढ्य की वृहत्कथा है। यह ग्रन्थ पैशाची भाषा में लिखा गया है। डॉ0 व्यूलर के अनुसार इसकी रचना दूसरी शताब्दी में हुई थी। वृहत्कथा के वृहत्कथा श्लोक संग्रह, वृहत्कथा मंजरी और कथा सरित सागर के तीन अनुवाद उपलब्ध हैं। संस्कृत के कथा साहित्य में पंचतंत्र का स्थान अद्वितीय है। इनका अनुवाद अनेक यूरोपीय भाषाओं में हुआ है। इन कथाओं ने सारे संसार की कहानियों को प्रभावित किया है। यह संस्कृत साहित्य का सबसे मौलिक एवं प्राचीन कथा-ग्रन्थ है। पाँच भागों अथवा तंत्रों में आचार्य विष्णु शर्मा ने इसकी रचना की है। ये कथाएं विभिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न परिवर्तित रूपों में उपलब्ध होती हैं। नीति सम्बन्धी कथाओं में पंचतंत्र के पश्चात हितोपदेश का प्रमुख स्थान है। इसके रचयिता नारायण पण्डित थे। यह चौदहवीं शताब्दी के आस-पास की रचना है। इसकी अधिकांश कथाएं पंचतंत्र से ली गई हैं। यह बड़ा लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसका संस्कृत साहित्य के विद्वान बड़ी रूचि से अध्ययन करते हैं।

आचार्य शिवदास ने "बैताल पंच विशंतिका" की रचना की है। इसमें महाराजा विक्रम से सम्बन्धित पच्चीस कहानियां हैं जो सरल संस्कृत भाषा में हैं। इन कहानियों में राजा की व्यावहारिक बुद्धि का परिचय मिलता है। "बैताल पच्चीसी" के नाम से इसका हिन्दी में अनुवाद हुआ है। सिंहासन द्वात्रिशिंका में, संस्कृत की बत्तीस कथाएं हैं। इस ग्रन्थ का सिंहासन बत्तीसी के नाम से हिन्दी में

अनुवाद हुआ है। शुकसम्पति में तोते द्वारा कही गई नब्बे कहानियां हैं। इसी ग्रन्थ का चौदहवी शताब्दी में फारसी भाषा में, लूतीनामा नाम से अनुवाद प्रकाशित हुआ था। शिवदास के कथार्णव में पैंतीस कथाओं तथा विद्यापति की पुरूष परीक्षा में, चव्वालीस कहानियों का संकलन किया गया है। पालि भाषा में लिखित जातक कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं उपलब्ध हैं।

हिन्दी की लोक कथाएं-

हिन्दी की लोक कथाओं को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से वर्गीकृत किया है। कथाओं का प्राचीन वर्गीकरण निम्नवत् है -
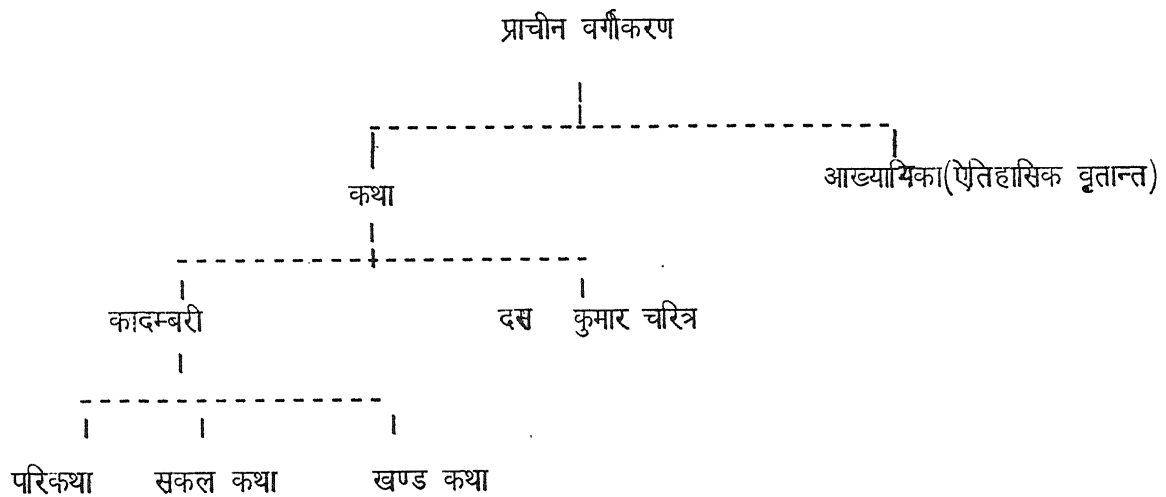
उक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त हिन्दी की लोक कथाओं को श्री हरि भट्टाचार्य, डॉ0 उपाध्याय, डॉ0 दिनेश चन्द्र तथा डॉ0 सत्येन्द्र ने भी वर्गीकृत किया है। इन विद्वानों के वर्गीकरण का आधार विषय-वस्तु के साथ विद्वानों की स्वयं की अपनी दृष्टि भी रही है। श्री हरि भट्टाचार्य ने कथाओं को चार श्रेणियों में बांटा है--

(1) अर्थ कथा

(2) काम कथा

(3) धर्म कथा

(4) संकीर्ण कथा

अर्थकथा का उद्देश्य, अर्थ की प्राप्ति है। काम कथाओं में प्रेम के वर्णन की प्रधानता होती है। धर्म-कथाएं, धार्मिक आख्यान तथा संकीर्ण कथाओं में इहलोक और परलोक की इच्छा रखने वाले वर्णन मिलते हैं। डॉ0 उपाध्याय ने लोक कथाओं को छः शीर्षकों में विभाजित किया है -

(1) नीति कथा

(2) व्रत कथा

(3) प्रेम कथा

(4) मनोरंजक कथा

(5) दंत कथा

(6) पौराणिक कथा

नीति कथाओं में पंचतंत्र और हितोपदेश की तरह उपदेश तथा नीति विषयक तथ्यों का प्रकटीकरण किया मिलता है। सत्य नारायण कथा, अनन्त चर्तुदशी, करवा चौत तथा गणगौर की कथाएं, व्रत कथाओं में विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेम कथा में माता-पिता, बहिन-भाई, तथा पति-पत्नी की दाम्पत्य कथाएं हैं तो मनोरंजक कथाओं का उद्देश्य मनोरंजन करना है। परम्परा से आई प्रसिद्ध कथाओं को दंत-कथा कहते हैं। इनमें इतिहास तथा कल्पना का मिश्रण है। पौराणिक कथाओं में गोपी चंद, भरथरी तथा सरवन की कथा और नल-दमयंती एवं शिवि, दधीचि की कथाएं मिलती हैं। डॉ0 दिनेश चन्द सेन ने इन्हें चार श्रेणियों में बाँटा है -

(1) रूप कथा

(2) हास्य कथा

(3) व्रत कथा

(4) गीत कथा

रूप कथा में भूत-प्रेत, देवता तथा दानवों की अलौकिक कथाएं हैं। हास्य कथाओं के कथ्य हास्य उत्पन्न करते हैं तो व्रत-कथाओं में व्रत एवं त्योहारों के समय कही गई कथाएं हैं और गीत-कथाओं में बच्चों के पालने से झूलने के समय की कही गई कथाएं हैं। डॉ0 सत्येन्द्र ने कथाओं

को इस तरह वर्गीकृत किया है -

(1) गाथाएं
(2) पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएं
(3) परी की कथाएं
(4) बुझौवल सम्बन्धी कथाएं
(5) निरीक्षण गर्भित कहानियां
(6) साधु-पीरों की कहानियां
(7) कारण निर्देशक कहानियां

गढ़वाली लोक कथाएं -

गढ़वाल में लोकगीत और गाथाओं की तुलना में लोक कथाओं पर बहुत कम काम हुआ है। कुछ ही विद्वान हैं जिन्होंने लोक कथाओं पर उल्लेखनीय कार्य किया है। इन विद्वानों में मोहन लाल बाबुलकर, डॉ० गोविन्द चातक और हरि दत्त भट्ट "शैलेश" का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गढ़वाल में लोक कथाएं मुख्यतः ग्यारह प्रकार की मिलती हैं। यथा -

(1) देवी-देवताओं की कथाएं
(2) पशु पक्षियों की कथाएं
(3) भूत प्रेतों की कथाएं
(4) हास्त कथाएं
(5) वीर कथाएं
(6) परियों की कथाएं
(7) जीव जंतुओं की कथाएं
(8) तंत्र-मंत्र जादू-टोना की कथाएं
(9) उपदेशात्मक कथाएं
(10) राजाओं और रानियों की कथाएं
(11) राजकुमार और राजकुमारियों की कथाएं

इन कथाओं में जन जीवन के चिरपरिचित चित्र चित्रित मिलते है। इनमें भाव हैं, कल्पनाएं हैं और सांस्कृतिक गतिविधियों का सम्यक निरूपण है और जीवन के सुन्दर और असुन्दर की उत्कृष्ट व्याख्या है।

गढ़वाली लोक कथाओं का वर्गीकरण -

श्री मोहन लाल बाबुलकर[1], डॉ0 गोविन्द चातक[2] और डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश[3], तीनों ही विद्वानों ने गढ़वाली लोक कथाओं को लगभग एक ही ढंग से वर्गीकृत किया है। इन तीनों विद्वानों ने श्री मोहन लाल बाबुलकर के दिये गये वर्गीकरण को ही वैज्ञानिक मानकर स्वीकार किया है। इस तरह गढ़वाली लोक कथाओं का सर्वसम्मत विषयगत् वर्गीकरण[4] निम्नवत् है -

(1) देवगाथाएं

(2) कथा

(3) व्रत कथाएं

(4) उपदेशात्मक कथाएं

(5) पक्षियों की कथाएं

(6) पशुओं की कथाएं

(7) ज्ञान की कथाएं

(8) मनोरंजक कथाएं

(9) भूतों की कथाएं

(10) परियों की कथाएं

---

1. गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन
2. गढ़वाली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य
4. गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

(11) समाधान मूलक कथाएं

(12) अन्य कथाएं

लोक कथाओं की देवगाथाओं में कृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी की कथाएं, बैकुंठ चर्तुदशी, शिव-पार्वती की सृष्टि निर्माण की कथा, वासुदेवार्जुन कथा, निरंकार तथा चन्द्रावली की कथाएं आती हैं। कथा, धार्मिक दृष्टिकोण से कही जाने वाली कथाएं हैं। इन कथाओं में भागवत और सत्यनारायण की व्रत-कथा यहां प्रचलित मिलती हैं। भागवत को "सप्ताह" भी कहा जाता है तथा सत्य नारायण व्रत कथा को "कथा" कहकर ही सम्बोधित किया जाता है। इन कथाओं में प्रमुख व्रत कथाएं हैं (1) पूर्णमासी व्रत कथा, (2) बैकुंठ चर्तुदशी व्रत कथा (3) शिवरात्रि व्रत कथा (4) संकट चौथ व्रत कथा (5) चर्तुदशी व्रत कथा (6) सोमवार व्रत और कथा (7) इतवार व्रत और कथा (8) मंगलवार व्रत और कथा (9) भैयादूज व्रत और कथा (10) कन्या पूजा व्रत और कथा (11) लक्ष्मी पूजन व्रत और कथा (12) एकादशी व्रत और कथा और (13) निर्जला एकादशी व्रत और कथा इत्यादि। पशु-पक्षियों सम्बन्धी सभी कहानियाँ पशु और पक्षियों की कथा के अन्तर्गत आ जाती हैं। बुद्धिवादी कहानियों में बुद्धि की परीक्षा की गई है। आंणा कथाएं विशेष प्रकार की कथाएं हैं जिनमें पहेलियां बुझायी जाती हैं और सिद्धान्तों की परीक्षा कथाओं द्वारा सिद्ध की जाती है। मनोरंजक कथाएं अधिकतर एक की बुद्धिमानी और दूसरे की बेवकूफी के अन्तर्गत आने वाली कथाएं हैं। इनमें उल-जल-उल, तीन मूर्ख, भाग्यवान, बुद्धू इत्यादि प्रमुख कहानियां हैं। परियों की कथाओं में राजकुमारी परी, परी राजकुमारी तथा राक्षस की लड़की जैसी सभी कथाएं आती हैं। भूत और राक्षस की कथाओं में राक्षस का लड़का, राक्षस की लड़की, राक्षस की तुम्बी, घट्ट का भूत, भूत और बीमार तथा भूत और आग की लपटें विभिन्न कथाएं हैं।

गढ़वाल में सरल तथा सीधी शैली में कथाएं उपलब्ध होती हैं। कथा कहने वाला गांव का बूढ़ा या बूढ़ी दादी होती है जो कि अपढ़ लेकिन अनुभवी होती है। गांव के इस बूढ़े अथवा बूढ़ी के मुंह से साधारण तथा स्पष्ट वाक्य निकलते हैं। जटिल शब्द एवं वाक्यों का प्रयोग कहीं कोई दादी नहीं करती। चिर-परिचित साधारण वाक्यों (एक छौ राजा वै का सात नौना छा। साती भाइयों की एक बैण छै) से कथा आरम्भ होती है और एक ही प्रवाह के साथ अन्त तक चलती रहती है। पूरे गढ़वाल में कथायें गंद्यरूप में उपलब्ध होती हैं। लेकिन किन्हीं कथाओं के साथ पद्य भी उपलब्ध होते हैं। कथा के

बीच-बीच में पद्य, कथा कहने वाले द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। इन कथाओं के कहने में कहीं भी जटिलता नहीं बरती जाती है। लगभग सभी कथायें चाहे वे देवताओं से सम्बन्धित हों अथवा व्रत, भूत, प्रेत, पशु-पक्षी या मनोरंजक ही क्यों न हों, साधारण बोल-चाल के शब्दों में प्रस्तुत की जाती हैं। इनका अन्त भी लोक की मांगलिक भावना के अनुसार ही किया जाता है। लोक वाणी का आशीवादात्मक वाक्य "जन ऊंको होये तन सुणन वालों कू भी होव।" अथवा दुःखान्त अवस्था में "जन ऊंकों होये तन कैकूनी होव।" के साथ ही कथा की समाप्ति होती है।

देवगाथाएं -

देवगाथाओं के अन्तर्गत सामूहिक रूप से श्रवण की जाने वाली मुख्य वे गाथायें आती हैं जिनका सम्बन्ध महाभारत से है । महाभारत युद्ध के खिलाड़ी पांण्डव ओर कोरवों सम्बन्धित कथाओं का इस जनपद गढ़वाल में घर-घर प्रचार है। लोग बड़े चाव से इन गाथाओं का श्रवण करते हैं । कृष्ण और कृष्ण की जीवन सम्बन्धी गाथायें महत्पूर्ण है। कृष्ण-रूक्मिणी तथा कृष्ण-चंद्रावली हरण गाथा अत्यधिक प्रचलित है। नार्गजा के बाजे में इस कथा कों गाया जाता है। पांडवों के पश्चात् शिव विषयक गाथायें आती है। इन गाथाओंको पर्व विशेष पर वाद्य यंत्र के साथ सुनाया जाता है। शिव-पार्वती गाथा के अन्तर्गत शिव की कृपा ओर पार्वती के हृदय की विशालता को मुख्यत: गाथाओं में दिखया गया है । बैकुंठ चतुर्दशी व्रत कथा में इसी प्रकार की एक कथा आती है। जिसमें सच्चे भक्तों की पहचान शिवजी द्वारा पार्वती जी को करायी गयी है। कोढ़ी रूप में बेठे शिव की सेवा करती पार्वती की उपेक्षा करने वालों की ओर शिवजी संकेत करते हैं। पार्वती से सच्चे भक्तों की पहिचान करनें कें लियें कहते हैं। अन्त में एक भक्त पार्वती की सहायता कोढ़ी को उठाने में करता है। शिवजी प्रकट होकर अपना विराट रूप दिखाते हैं और भक्त को मोक्ष मिलता है । सृष्टि के निर्माण की एक ऐसी ही गाथा मिलती है। जिसमें अपने मैल द्वारा पैदा कियें चेलों से शिव सृष्टि का निर्माण करते हैं । पार्वती की प्रार्थना पर शिव अपनी जंघाओं के मैल से सुनी और जम्बू को पैदा करते हैं। जम्बू यौवनावस्था प्राप्त सूनी पर मोहित हो जाता है। सृष्टि का प्रथम क्रम चलता है। सूनी जम्बू की बात मानने से इन्कार करती है जम्बू दो बूँद आँसू छोड़ता है, सूनी मोती समझकर आँसुओं कों पी लेती है। वह गर्भवती होती है। जम्बू को वह ढूढ़ निकालती है ओर उसके पंखों पर दो अण्डे जनती है जिससे नौखंडी दुनियाँ का निर्माण होता है। शिव द्वारा सृष्टि निर्माण की यह कथा घड़्याली के साथ चलती है । निरंकार से धौंकार, धौंकार सें फुंकार, फुंकार से विष्णु और सृष्टि की रचना के साथ ब्रह्मा द्वारा कही गयी रैदास चमार की गाथा हरिजन वर्ग में यहां बहुत प्रचलित है। हरिजनों द्वारा उक्त कथा का सामूहिक श्रवण 'पूजै' के रूप में होता है। इस निरंकार गाथा में हरिजनों को अधिक महत्व दिया गया है। भेद भाव से दूर गंगा द्वारा संच्चे भक्त रैदास चमार के घर प्रसन्न होकर निवास करना दिखाया गया है। कुछ ही कथायें ऐसी हैं जिनमें लोक की रचना शक्ति के दर्शन मिलते हैं। बाकी हमारे आध्यात्मिक जीवन की देन हैं।

कथा -

लोक जीवन का आधार ही धर्म ही है । धार्मिक जीवन पवित्र ओर श्रेष्ठ माना जाता है। लोक-मानस में धर्म के प्रति हमेशा श्रद्धा ओर विश्वास का भाव रहा है। लोक किसी संकट में ही क्यूँ न रहा हो लेकिन वह अपना धर्म निभाना नहीं भूला है। धार्मिक कर्मों का हमेशा लोक ने निर्वाह किया है। जप, तप, ज्ञान, ध्यान, श्रवण सभी इसी श्रेणी में आते हैं।धार्मिक उद्‌देश्य से जो श्रवण होता है, उसे कथा कहा जाता है। इन कथाओं का आयोजन और सामूहिक श्रवण एक धार्मिक कृत्य माना जाता है।

व्रत कथायें -

व्रत कथायें स्त्रियों की सम्पत्ति हैं इनका प्रचलन अधिकतर स्त्रियों में पाया जाता है । विभिन्न देवाताओं को अपने त्याग, तपस्या और शरीर को कष्ट देकर मनाया जाता है । जिसका उद्‌देश्य अपने व्यावहारिक जीवन में दुर्भाग्य और दुर्घटनाओं से अपने आप को बचाना तथा सुख-समृद्धि और सौभाग्य की कामना है। व्यावहारिक जीवन की सफलता के साथ किसी निश्चित उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिये भी स्त्रियाँ व्रत लेकर सुख और सौभाग्य को प्राप्त करती है। इन व्रतों में श्रद्धा ओर विश्वास फलित होकर फल देते हैं । ओर इसी विश्वास को लेकर किसी कामना से कोई युवती किसी देवता को प्रसन्न करने के लिये विशेष व्रत लेती है। इन व्रतों में विभिन्न उद्‌देश्यों की कामना की गयी है। प्रमुख उद्‌देश्य है - (1) सन्तान प्राप्ति, (2) अखण्ड सौभाग्य (सुहाग) की प्राप्ति, (3) धनधान्य, सुख-समृद्धि (4) शुभ कर्मों की प्रेरणा प्राप्त करना, (5) भाई- बहन का प्रेम, (6) सुगति की प्राप्ति, व (7) स्त्री की गान रक्षा । परलोक सुधारने की भावना उनमें बलवती होती है। 'एकादशी व्रत' कथा में विधवा स्त्रियों के लिये यही भाव मिलता है। तुलसी की पूजा परिक्रमा कर वे परलोक सुधारने, मुक्ति पाने के लिये तपस्या करती हैं। 'एकादशी' तथा 'निर्जला एकादशी' व्रत कथा में कठिन परिश्रम द्वारा मुक्ति की कामना के भाव मिलते हैं ।

उपदेशात्मक कथायें -

पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर पंचतंत्र की कथाओं की तरह गढ़वाल में कथायें मिलती हैं कथाओं की वर्गीकरण में हमने उन्हें पशु सम्बन्धी कथायें तथा पक्षियों सम्बन्धी कथायें इन दो भागों

में विभक्त किया है । दोनों प्रकार की कथाओं का उद्‌देश्य एक ही है। इसलिए इन्हें उपदेशात्मक कथाओं के नाम से हम संयुक्त रूप में पुकारेंगे ।

पक्षियों की कथाएं -

पक्षियों की कथायें छोटी हैं लेकिन इनमें शिक्षा का अनोखा पुट मिलता है । उपदेश की इस प्रवृत्ति के बावजूद भी ये गढ़वाल में बहुत प्रचलित हैं । और घर-घर में बूढ़े, बच्चों को इन कथाओं को सुनाया करतें हैं । लालच और धोखा बुरी चीज है। लालच के कारण ही एक बहिन को 'श्राप' मिला और वह चोली बनकर आसमान में घूमती है । 'सरग दिदा पाणि पाणि' पशुओं की कथाओं में सियार की कथायें सबसें अधिक पायी जाती हैं । सियार की बुद्धिमानी और चतुराई से लोक कथाएं भरी पड़ी हैं रीछ लोककथाओं में बहुत बेवकूफ जानवर माना गया हे। हाथी प्रायः सियार जैसे मक्कार जैसे जानवरें का शिकार होता आया है। बाघ अपने शौर्य के लिये विख्यात है। लोक कथाओं के भगवान मक्कार सियार से बहुत लांछित हुये हैं। बहुत ठगे गये हैं। तीतर, सियार की तरह मक्कार है तथा मुद्धिमानी से दूसरे जानवरों को बेवकूफ बनाता है। बाघ और शेर अधिकतम पूजे गये हैं । ब्राह्मण अपने लालच के कारण प्रताड़ित हुआ है तो कहीं अपने ज्ञान के लिये पूजा गया है। मंद बुद्धि रीछ जानवरों द्वारा खूब छकाया गया है। हाथी मदमस्त और मोटी बुद्धि का जानवर माना गया है। बकरी बहुत चुस्त और चालाक रूप में चित्रित है। चूहा बुद्धि से काम लेता है, कुत्ता बुद्धिमान तथा स्वामी भक्त है इसलिये वह नेक चित्रित किया गया है। बिल्ली कुछ कथाओं में स्वामी - भक्त तो अधिकतर कथाओं में कपटी स्वार्थी और मक्कार है। सर्प, बिल्ली की भांति अविश्वासी माना गया है। इसें कहीं शुभ, वेसै ज्यादातर अशुभ ही माना गया है।

ज्ञान की कथाएं -

इन कथाओं में विभिन्न तथ्यों की सत्यता को जांचनें की ओंर संकेत किया गया है। जांचने के बाद ही किसी वस्तु अथवा की सत्यता को स्वीकार किया जाता है। ज्ञान की प्रमुख कथाओं में भगवान छप्पर फाड़कर देता है। परबंगस, पतिव्रता, भद्रा की चाल, बुद्धि-विवेक, पारस पत्थर, बुद्धिमान चोर इत्यादि हैं। इनमें किसी न किसी रूप में सत्यता जांचने के लिये बुद्धि - ज्ञान का सहारा लिया गया है।

मनारंजक कथाएं-

इन कथाओं का सामान्य उद्देश्य जा-जाकर मनोरंजन करना है। बच्चों के मनोरंजन हेतु इनका प्रचलन अधिक हुआ है। इनमें हास्य का पुट अधिक है। भगवान बुद्ध हैं, तीन मूर्ख, उल-जल-उल, तुम चौथे मूर्ख हो, एक वफादार बीबी, दो बुद्धिमान चोर, कुछ बेवकूफ दामाद, गुरू ओर चेला, स्त्री चरित्र, काकी की क, लमडेर कर्जे, रगढग, चार थार, फुटी नि ल्है, दुखंण्या, नाग ठन्डा, लाल धागा और तू ठगण्यों, ठग मि जात्यो ठग बहुत प्रसिद्ध हंसोड़ कथाएं हैं । इनका उद्देश्य मात्र हल्का फुल्का मनोरंजन ही होता है। इन्हें सुनकर लोग हंसते-हंसते लोट पोट हो उठते हैं ।

भूतों की कथाएं-

ये कथाएं आश्चर्यजनक, डरावनी और भयभीत करने वाली होती हैं। इन्हें सुनते सुनातें भी कई दुर्बल लोगों पर भूत का प्रकोप हो उठता है । प्रायः मजबूत कलेजे वाले ही इन कथाओं को सुनतें हैं । इन कथाओं में विस्मयकारी और आश्चर्यजनक कार्य भूतों द्वारा किये जाते हैं । इन कथाओं में भूत की आग, भूत और बीमार आदमी, जादूगर, राक्षस, भूत ओर ओरतें, घट्ट का भूत, भूत का लड़का, शहर का राक्षस ओर लड़का और राक्षस डरावनी व खोफनाक कथायें हें । इन कथाओं में प्रायः मृत व्यक्ति द्वारा ऐसे कार्य किये जाते हैं जिनपर एकाएक विश्वास नहीं होता है ओर आदमी डर कर, भूत के द्वारा आवेशित किया जाता है। लेकिन कहीं-कहीं और किन्हीं-किन्हीं कथाओं में भूत बहुत बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। साधारण रूप में भूत कथाओं का भूत आतंककारी हैं लेकिन भूत के वशीकरण कियें जानें पर वह असाधारण कार्य साधने वाला सहायक पाया जाता हे। जनपद में गारूड़ियों द्वारा भूतों की सहायता से अनेक असाधारण कार्य कराये गये मिलते हें । यथा पेड़ों को अपने साथ ले चलना, गोबर के ढेर को अपनें पीछे ले चलना, शत्रु को मार भगाना, हाथ के इशारे से भोज्य पदार्थ उत्तपन्न करना तथा 'भुतीण' (स्त्री भूत) द्वारा संतानोत्पति कुछ आश्चर्यजनक कार्यकलाप हैं ।

परियों की कथाएं -

परियों प्रायः सुंन्दर राजकुमारियां हैं, इनके रूप सोन्दर्य को साक्षात् अथवा स्वप्न में देखकर प्रायः राजकुमार ओर कभी-कभी साधारण व्यक्ति भी मोहित होते रहें हैं । फिर ये इन्हें पाने के

लिये अपने प्राणों की बाजी लगाते रहें हैं । ये राजकुमारियां (परियां) किन्हीं कथाओं में दिव्य शक्ति वाली और किन्हीं कथाओं राक्षसों की लड़कियां और अथवा राक्षसों द्वारा भगायी गयी राजकुमारियां हैं। ये मंत्र-बल का प्रयोग करती हैं। इस मंत्र-बल से ये आदमी को जानवर बनाती है, पत्थर को छूती है तो फिर वह आदमी बन जाता है, अदृश्य पंखों के सहारे से आकाश में उड़ती हैं, पुरूषों को रिझाती है। ये परियां अनेक कथाओं में बाग-बगीचा, सिंहासन, मूर्ति, तालाब पक्षियों और पशुओं के रूप में बदलती पायी गयी है। प्रमुख परी कथायें राजकुमारी और तलवार, राजकुमार और राक्षस की लड़की राजकुमारी और अनोखे फूल, जालिम बुढ़िया, इन्द्रा छोरा और लोमड़ी इत्यादि हैं। ये रूप बदलती हैं। दिन में पुरूष और रात में स्त्री बनती हैं । तथा पक्षी बनकर अपनी इच्छित जगह पहुँच जाती हैं।

समस्या मूलक कथाएं -

इन कथाओं में किसी समस्या के समाधान की ओर पूर्व लोकानुभव के आधार पर परखने की प्रविति मिलती है । इनमें किसी महत्वपूर्ण लोकोक्ति की सार्थकता सिद्ध करने के लिये कथायें गढ़ी गयी हैं और इन कथाओं के द्वारा लोकवाणी की सार्थकता सिद्ध की गयी मिलती है। इसमें कथा द्वारा व्यक्ति के अनुभव विशेष को परखा जाता है। आंणा (पहेली) की भांति इनमें समस्या प्रस्तुत की जाती है। और समाधान के लिये कहानी कही जाती है। इन कथाओं में निम्नलिखित विशेषताएं मिलती हैं :-

(1) लोकानुभव के बाद लिखी जाती है।

(2) पहले प्रस्तुत की जाती है।

(3) अर्थ-अनर्थ का आभास हो जाता है।

(4) लोक - बुद्धि का परिचय मिलता है।

(5) विपरीत कार्य करने पर संकट का सामना करना पड़ता है ।

(6) इनसे अनुभव सहित ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

(7) फकीरों द्वारा उपदेश दिये गये हैं ।

(8) उन्हें परखने की प्रवृत्ति की बहुलता मिलती है ।

(9) इनमें अधिकतर नकारात्मक निर्देश हैं 'यथा ऐसा न करें ' इत्यादि ।

(10) यह निर्देश हैं बिना साथी के मत जाना बिना दिने मत सोना, गुस्से में मत आना छज्जे पर बाल न कटोरना, अकेली मत जाना, अकेली मत नहाना, बाल कहीं मत छोड़ना इत्यादि।

अन्य कथाएं -

इस वर्गीकरण में वे कथायें आती हैं जिनमें तिलस्मी करामातों का दिग्दर्शन मिलता है। जादू इन कथाओं में सिर चढ़कर बोलता है। मंत्र-बल से शरीरान्तरण की अनेक कथायें मिलती हैं । आदमी, गाय, भैंस, बकरी बनता है। तुम्बी पर गंगा काटे ओर बदलों को समेटा गया मिलता है। बोक्सा बनकर आदमी आदमी को खाता है। इन कथाओं में इस क्षेत्र में गुरू - चेला की प्रसिद्ध कथा मिलती है जिसमें गुरू और चेला, शरीरान्तरण द्वारा एक दूसरें को छकाते हैं तथा अन्त में चेंला गुरू को मार डालता है। दूसरी प्रसिद्ध कथा 'इन्दरा छोरा' की है पिन्ना के दांतों वाली बुढ़िया कों इण्डरा छोंरा मार डालता हे। साधुओं के आशिर्वाद सें महिलायें गर्भवती होती हैं। शरीरान्तरण कें अन्तर्गत 'बोक्सा' बनकर कहानी के पात्र मनुष्यों को खाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी कथायें भी मिलती हैं जिनमें बुरें परिणामों की ओंर संकेत किया मिलता है। इन कथाओं में 'पेंतगा परा ठाकुर तुम, चट चटकै देंवा' ओर 'छोटा निलैन' प्रसिद्ध कथायें हैं ।

लोंक कथाओं की विशेषताएं

1. कर्म-भोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास -

लोक कथाओं में कर्म ओर कर्म फल को मुख्य स्थान मिला है। कर्म के अनुसार ही फल मिलता है और किये गये कर्म का फल भोगने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है। लोक का ऐंसा विश्वास है कि जिस प्रकार का जो कर्म करता है, उसी का उसे फल भोगना पड़ता है। 'चोली' की कथा में लड़की कों अपने कर्मो के अनुसार बैल के श्रापवश मृत्यु को प्राप्त होनें पर, किये के फल कों भोगने के लिए चोली कें रूप में जन्म लेना पड़ा । 'सतर पथा पुरपुरे' कथा में सोतिया मां की आत्मा का असन्तोष उसें अपनें कियें के फल भोगनें कें लिए पक्षी कें रूप में जन्म मिलता हे। निर्दोष बालिका को मारने का फल उसे भुगतना पड़ता है। 'हें मैं नांगी छौं' कथा में सर्प को सोतिया बेटी देंनें वाली सौतिया मां का, सर्प कों राजा का रूप धरते देख, अपनी बेंटी की शादी उसकें साथ करनें पर तथा सोतिया बेटी कों मारने के कारण दूसरा जन्म लेंकर अपनें किये का फल भोगना पड़ा हे। मृत्यु कें पश्चात् जन्म लेंने वाली बात ही नहीं स्वयं लोंक विश्वासानुकूल यहीं अच्छे और बुरे क का फल मिल जाता हे। 'तब बरखि जब मेरू छोरा घोर चली जाव' लोक कथा में मां के वात्सल्य कों देखकर बेटें का दिल पसीज जाता हे ओर वह अपनी धूर्त पत्नी कों निकाल देता हे। 'जरा

रूलै दे' में सियार को अपनी करणी के कारण खूब रोना पड़ा । 'सियार ओर भगवान' कथा में स्याल को अपनी मक्कारी के कारण अन्त में जान से भी हाथ धोना पड़ा । 'इण्डरा छोरा' की कथा में पिन्ना के दांतों वाली बुढ़िया को बुरे कर्मों के कारण नदी में डूबकर मरना पड़ा । 'टोखण्या छोरा' के भाइयों को अपनी बुरी नियत से नदी में डूबना पड़ा तथा 'गुरू और चेला ' कथा में गुरू को धोखा देने के कारण अपनी जान गंवानी पड़ी। राक्षसों की कथाओं में राजकुमारियों को केद करने के कारण लगभग सभी कथाओं में उन्हें राजकुमारों के हाथों से मरना पड़ा । दूसरी ओर सुकर्मो के कारण नायकों को सुख और सौभाग्य प्राप्त हुआ मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बुरे कर्मो के कारण पश्चाताप पुलस्वरूप किये का फल भुगतने का परिणाम बहुत सी कथाओं में मिलता है।

2. प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा -

लोक-कथाओं के वर्गीकरण के अन्तर्गत राक्षसों की कथाओं में प्राणों की अन्यत्र स्थिति मिलती है। 'सात समुन्दर पार' की कथाओं में राक्षसों के प्राण तोता, लोमड़ी और आकश में उड़ने वाले पेंड़ के सिर पर , मैना या किसी खड़ी आदमकद पत्थर की मूर्ति में मिलते हैं । राजकुमारों द्वारा तोता-मैना को पकड़ा जाता है। राक्षस की तबियत खराब होने लगती है। राजकुमार तोते की एक टांग तोड़ देता है। राक्षस की भी एक टांग टूट जाती है। राजकुमार द्वारा तोते को जोर से दबाये जाने पर राक्षस के दम घुटने लगते हैं और तोते की मोणं (सिर) काटे जाने पर राक्षस मर जाता है। 'राजकुमार ओर राक्षस' की लड़की की कथा में राजकुमार द्वारा तोतें का सिर काटे जाने पर राक्षस का अन्त हो जाता है। अपने पिता का बदला लेने वाले लड़के द्वारा चुड़ैल परी के प्राण 'सात समुन्दर पार' पेड़ की चोटी पर बैठें तोते को मारने पर निकल पड़ते हैं । एक दूसरी कथा में राजकुमार द्वारा तलवार से पत्थर की मूर्ति काटने पर राक्षस के हाथ पैर मूर्ति के हाथ पैरें के साथ कटने लगते हैं ।

3. मंत्र बल से शरीर परिवर्तन -

मंत्र बल का महत्व लोक कथाओं में बहुत बड़ा है। कथाओं के बहुत से गायक मंत्र बलि की शक्ति से शरीर दूसरे जीव में परिवर्तित करते मिलते हैं और दूसरा रूप छोड़कर अपने पहले रूप में आ जाते हैं । 'फ्यासब्वे' कथा में सांप दिन में तो सांप ही रहता है लेकिन रात होते ही राजकुमार का रूप धारण कर लेता है दिन खुलते ही वह पुनः राजकुमार के शरीर को छाड़कर सांप

के शरीर में सशरीर प्रवेश कर लेता है। 'बोक्सा' की कथा में अपनी बेटी को ससुराल भेजने वाला पिता मंत्र-बल द्वारा बोक्सा के शरीर में परिवर्तित हो जाता है और वह गलती से अपनी बेटी को भी खा जाता है। पेट भर खाने के पश्चात् वह मनुष्य रूप में परिवर्तित होता है 'गुरू-चेला' कथा में चेला खाडू , भैस, घोड़ा, मछली, बिल्ली क्रमशः बनता है। और अंत में गुरू को मारने में सफल होता है ।

4. **शरीर छोड़ प्रोणों की दूसरें जीव में स्थिति -**

एक ओर लोक कथाओं में सशरीर परिवर्तन मिलता है तो दूसरी ओर शरीर को छोड़कर प्राणों का दूसरे जीव के रूप में पुर्नजन्म हुआ पाया जाता है। 'भट-कुटुरू' कथा में माँ जीभ ढोंग कर पक्षी का रूप धारण करती है पिता भी दुःखी होकर पक्षी बनकर अपनी स्त्री की स्वन्त्वना के लिये उसके पूछे हुये प्रश्नों का उत्तर देता है दोनों के शरीर छूट जाते हैं और प्राण दूसरें प्राणियों का रूप धारण कर अपने कर्तव्य का निर्वाह करतें हैं । केले वालें कंजूस की कथा में प्राण केले वाले के शरीर से निकलकर पक्षी के रूप में पड़ जाते हैं ।

5. **चमत्कारी गुण -**

जादू-टोना के बल पर अद्भुत चमत्कारी कार्य नायकों द्वारा किये गये हैं। जीवित प्राणियों को पत्थर में बदलना , सुन्दर झील बनना, सोने के सिंहासन कें रूप में परिवर्तित होना तथा जवाहरात कें पेड़ों में बदलना साधारण सी बाते हैं । परी पत्थर कों छूती है। और वह सुन्दर राजकुमार कें रूप में बदल जाता है। राजकुमार दूसरें पत्थर को छूता है और राजकुमारी सामने खड़ी हो जाती है। राजकुमार और राक्षस की लड़की की कथा में राजकुमार तलवार से सात परियों को मारता है सातों परियाँ सुन्दर बाग, झील, सोनें का सिंहासन, मोतियों के पेड़ जवाहरात के फल फूल, और सुहावनें मौसम में बदल जाती हैं।

6. **पशु-पक्षियों की भाषा -**

मनुष्य पशु-पक्षियों की भाषा और पशु-पक्षी मनुष्यों की भाषा समझतें हैं । 'भटकुटरू' कथा में पति चिड़ियों के रूप में बोलती अपनी पत्नी की भाषा समझता है और स्वयं ही पक्षी का रूप धारण करता है। स्याल, चूहा, कौआ, हिरण एक दूसरे की भाषा समझतें हैं 'आदमी बाघ की कथा'

में बाघ आदमी की और आदमी बाघ की बाते समझता है। स्याल भगवान से और भगवान स्याल से बाते करते हैं । कथाओं में पशु पक्षियों की ही नहीं परियों की बातें भी आदमी समझते हैं । 'स्याल रीछ की कथा' में स्याल गांव वालों से भैंस के गिरने के विषय में बताता है। गांव वाले स्याल की बात समझते हैं और भैंस को लाने के लिये जंगल की ओर प्रस्थान करतें हैं । 'कौआ-कोयल कथा' में राजा दोनों की बात सुनकर फैसला करता है।

7. **सहानुभूति और सहायता-**

लोक कथाओं में सहानुभूति और सहायता की प्रवृत्ति मिलती है। पशु पक्षी , राक्षस, अप्सरायें और आदमी एक दूसरे की सहायता करते हैं, एक दूसरे की सहायता के लिये अपने प्राणों की आहुति भी देतें हैं। पतिव्रता स्त्री के पति को बचाने के लियें राजा अपनी जान भी दे देता है। मुसाफिर बाघ को फांसी से मुक्त कर देंता है। बाघ बूढ़ी बकरी की दशा पर तरस खाकर उसे अपना दोस्त बना लेंता है। तथा उसके लियें हरी हरी घास जंगल से लाता है। बुद्धिमान बाघ ब्राह्मण को सोने चांदी की मोहरें देंता है । हाथी द्वारा घमण्ड दिखाये जाने पर भी चूहा विपत्ति में उसकी सहायता करना अपना धर्म समझता है। और गड्ढे को मिट्टी से भरकर हाथी को बचाता है। टिटो, कठफोड़वा, मक्खी तथा मेढक अपने दोस्त की सहायता 'चिड़िया-हाथी कथा' में करते हैं । राजकुमार राजकुमारियों की सहायता अपनें प्राण देकर ही करते हैं । 'भूत का बेंटा कथा' में भूत, पुत्र प्रेम में भावुक होकर अपने बेटे का आलिंगन करता है तथा उसको खजाना दिखाकर उसकी सहायता करता है। राजकुमारियों ने लगभग सभी कथाओं में राजकुमारों की सहायता की है।

8. **भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास-**

जहाँ कहीं भी भगवान और उसकी शक्ति सम्बंधी कथायें आती हैं, उनमें भगवान शक्ति को बड़ा और असाध्य कार्य करने वाली बताया गया है। भाग्य और भगवान को सर्वोपरि मानकर उसकी सत्ता पर अविभाज्य विश्वास मिलता है। 'भग्यान बेंवकूफ' की कथा में भगवानकी कृपा से बेवकूफ धनवान बन जाता है। 'भगवान छप्पर फाड़कर देंता है' कथा में आलसी में अडिग विश्वास के फलस्वरूप ही उसे घर में मोहरों का घड़ा मिलता है। 'परबंगस कथा' में परबंगस को धार्मिक जीवन का महत्व विदित होता है और वह सांसारिक माया मोह से छुटकारा पा लेता है। हाथ-पैर

विहीन बालक धनवान और सुखी हो जाता है। भगवान की कृपा समर्थ-असमर्थ सभी के लिए होती है। पतिव्रता अपनी भक्ति और भगवान पर विश्वास के कारण ही अपने पति को कृत्यु से बचाती है।

9 . धर्म - साक्षी -

धर्म, साक्षी के रूप में आया है। धर्म का निर्वाह करना महत्वपूर्ण कर्म समझता गया है। धर्म के लिये प्राणों की भी आहुति दी गयी है । पशु पक्षी, मनुष्य, राक्षस और अप्सराओं ने. सभी ने अपने धर्म को समय-समय पर निभाया है। यही धर्म जनपद में कौल या बंधन अथवा वचन रूप में भी आया है। एक लोक कथा में नायक चिड़िया के बच्चों को सांप से बचाता है। चिड़िया उसकी सहायता से प्रसन्न होकर उसे 'सात समुन्दर' पार कराने का कौल करती है । जहाँ कहीं लोक कथाओं में विश्वास करने का अवसर आया है वहाँ अपना-अपना धर्म साक्षी माना गया है। कौआ, हिरण, चूहा और दूसरे पक्षियों ने अपनी जान देकर धर्म को निभाया है। 'बाघ ब्राह्मण' कथा में बाघ ब्राह्मण के घर पहुँचकर अपमानहोने पर भी अपना धर्म निभाना नहीं भूलता है। 'राक्षस और लड़के' की कथा में राक्षस धर्म को साक्षी बनाकर लड़के की मदद करता है। और उसे धन-दौलत देकर घर भेजता है। 'राजकुमार और राजकुमारियों की कथा' में धर्म खड्ग (तलवार) के रूप में दोनों के बीच में रखा गया है। और इस प्रकार एक दूसरे की नैतिक मर्यादाओं की रक्षा हुई मिलती है।

10. प्रकृति की सहानुभूति -

लोककथाओं में प्रकृति सहायक के रूप में आयी है। परिस्थितियों के अनुकूल सुख-दुःख में उसने सहायता प्रदान की है। जीवित प्राणियों की भांति उसका हृदय द्रवित हुआ है। और उसने लोक नायकों की सहायता कर अपनी सहानुभूति को दर्शित किया है। अंधेरे में बिजली का चमकना, कड़कड़ाती धूप में बादलों का छाना, झंझावात का बहना, बिजली का गिरना, पेड़ों का टूटना आदि दुष्टों के मार्ग में बाधा डालकर प्रकृति ने नायकों को धर्म-निर्वाह में सहायता प्रदान की है। एक लोक कथा में पुत्र माँ को पत्नी के कहने पर दूर जंगल में छोड़ने के लिये ले जाता है। पुत्र के इस अधर्मी कार्य के कारण प्रकृति उसके हृदय में माँ के लिये ममता पैदा करने के लिये गिड़गिड़ाकर बादलों से आसमान को घेर लेती है। माँ पुत्र की रक्षा की प्रार्थना करती है। ऐसी परिस्थिति में माँ की प्रार्थना को सुनकर बेटे का हृदय पसीज जाता है। वह माँ को वापस घर ले जाता है ।

11. जादू द्वारा अनहोनी बातें -

जादू द्वारा कथाओं में अनहोनी बातें की गई रहती हैं ।बुढ़िया एक साधारण सी तोमड़ी में गंगा, बादल, हवा, कांटे ओर कुहरा भरकर रखती है। हवा की तोमड़ी तोड़े जाने पर प्रलयकारी हवा बहने लगती है। कुहरे की तोमड़ी फोड़ने पर धुन्ध ही धुन्ध फैल जाता है। इसी प्रकार और तोमड़ियां फोड़ने पर जिसमें जो चीज होती है वह चोरों ओर फैल जाती है।

12. स्त्री पात्रों की सहृदयता -

स्त्री पात्र कथाओं में सहृदय और दयावान मिलती हैं। राजकुमार और परियों की कथाओं में राजकुमारियों का हृदय राजकुमारों को देखकर 'दया' से भर जाता है औरवे उन्हें राक्षसों से बचाने के लियें, राक्षसों की मृत्यु का राज बताती हैं । विपत्ति आने पर स्वयं उनकी सहायता करती हैं। पुरूषों को पति ओर बेटा के रूप में पाकर उन्होंने अपने प्राणों की बलि देकर भी उनकी रक्षा की है। राजकुमार और परी कुमारियों की तथा राजकुमार और राक्षस की लड़कियों की कथाओं में सभी नायिकओं ने दया से द्रवीभूत होकर नायकों के प्राण बचाये हैं । पतिव्रता स्त्री अपने पति के लिये अपनी जान देने को तैयार हो जाती है। माँ अपने बेटे को बचाने के लिये बरसने वाले बदालों से रूक जाने की प्रार्थना करती है। राक्षस के चंगुल में फंसे राजकुमारी तरस खा कर नायक को बचा लेती है ।

13. पुरूषों की सौंपने की प्रवृत्ति -

रूप सौन्दर्य के 'वशीभूत' होकर पुरूष ने अपने आप को नायिकाओं को सौंप दिया है। बार-बार लौट जाने के लिये कहने पर भी वह लौट जाने के लिये तैयार नहीं मिलता है । राक्षस की लड़कियों और राजकुमारियों को वह बहुत सी कथाओं में अपने को सौंप देता है। स्त्री के कहनेपर सब कुछ करने को तैयार हो जाता है । स्त्री पात्र के आगे वह अपने आप को सम्भालने में असमर्थ पाया गया है ।

14. पछतानें की प्रवृत्ति -

जानबूझकर अथवा अनजाने में किये गए किसी कार्य के लिए बाद में पछताने की प्रवृत्ति कथाओं में अधिक मिलती है। पश्चाताप के कारण दुःख और दुःख से आत्म-हत्या करना कथाओं में

पाया गया है। आत्महत्या के साधन जिह्वा ठोंगना (जिह्वा काटना) तथा नदी में कूदपड़ना मुख्यतः मिलता है ।

15. समस्या मूलक उक्तियों और कथा द्वारा समाधान की प्रवृत्ति -

साधु-सन्यासियों द्वारा उक्तियां कहीं गयी है । इन उक्तियों 'कथन' में उनका विशेष अनुभव निहित होता है। अधिकतर कथाओं में चार बातें बतायी गयी हैं । इन बातों की परीक्षा के लिये कथायें मिलती हैं जिनमें नायक साधु की उक्तियों की परीक्षा करता है। इन उक्तियों के कथनानुसार कार्य करने से लाभ तथा विपरीत अवस्था में कार्य करने से 'नुकसान' होता है। लोक कथाओं में दिये गये वर्गीकरण में समस्या मूलक कथाओं के अन्तर्गत इस प्रकार की कथायें आती हैं। कथायें कहकर उक्तियों की सार्थकता सिद्ध की गयी है ।

16. सदावर्त या व्रत (उपवास) रखना -

राजकुमार, राजा या राक्षसों द्वारा भगायें जाने पर स्त्रियों द्वारा अपने पति से पुनः मिलने के लिए सदावर्त या 6 माह अथवा 12 साल तक व्रत रखना अपनी मान रक्षा के लिये लोककथाओं में मिलता है। एक लोक कथा में एक भगायी गयी राजकुमारी का पति बारह साल के बाद सदावर्त के आखिरी दिन उसें मिलता है। इस तरकीब सें वह अपने स्त्री धर्म की रक्षा करने में सफल होती है ।

17. प्रेम की प्रधानता -

कथाओं में प्रेम प्रधान है । भाई-बहन ओर राजकुमारियों की कथाओं में प्रेम प्रधान मिलता हे । यद्यपि बहिन और पत्नी को कथाओं में स्वार्थी भी सिद्ध किया गया है। तो भी अधिक*संख्या* ऐसी ही कहानियों की है, जिनमें प्रेम के लिये प्राणों की आहुति दी गयी है। राजकुमारियों को पाने के लिये राजकुमार अपनी जान जोखिम में डाल देते हैं। राजकुमारियाँ भी बड़े से बड़ा खतरा उठाकर राजकुमार को पाने के लिये तैयार मिलती हैं। रस्सी फेंककर राजकुमार को खीचती हें तथा कमरे में छिपाकर रखती हें ।

18. स्वप्नावस्था -

स्वप्नावस्था में राजकुमारी को देखकर राजकुमार, राजकुमारी की खोज में निकलते हैं बीच में अद्भुत घटनायें घटती हैं लेकिन अंत में वो स्वप्नावस्था में देखी गयी राजकुमारी को पाने में समर्थ

19. एक ही प्रकार की घटनायें -

एक ही प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति अधिकतर राक्षसों तथा राजकुमारों की कथाओं में मिलती है कहीं-कहीं एक जैसी घटनाओं में पात्रों के बदले हुये नामों के अतिरिक्त घटनाओं में कोई नवीनता नहीं मिलती है ।

20. बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना-

बहिन तथा पत्नी को स्वार्थी होना दिखाया गया है । एक कथा में भिखारी भाई को बहिन मुँह नहीं लगाती है। लेकिन दूसरी बार जब वह धन दौलत लेकर आता है तो वह उसका खूब सम्मान करती है। फूलों की माला लिये उसका स्वागत करती है। जहाँ एक ओर पतिभक्त स्त्रियों का विवरण आया है वहाँ दूसरी ओर स्त्रियों को स्वार्थी दिखाया गया है ।

21. सौतिया माँ का व्यवहार-

अपनी सौतिया बेटी तथा बेटे के साथ सौतिया माँ का व्यवहार बड़ा कूर मिलता है। माँ सौतिया बेटी के ऊपर-नीचे गरम तावे रखकर कर उसे मार डालती है। सौतिया बेटे पर 'इल्जाम' लगाकर उसे घर से निकाल देती है तथा थोड़ी सी गलती पर ही उसे जान से मार डालती है। एक लोक कथा में वह अपने सौतिया बेटे तथा बेटी को खड्डे में गिराने की सलाह देती है । सौतिया बेटी के कानों पर गरम सलाखें डाल देती है। सौतिया माँ के हृदय में अपने सौतिया पुत्र-पुत्रियों के लिये सहृदयता कहीं इन कथाओं में नहीं मिलती है । 'सौतिया डाह' उससे सब कुछ करवा लेती है। लेकिन पश्चाताप की प्रवृत्ति जरूर मिलती है ।

22. सास - बहू का झगड़ा-

सास ने बहू पर तथा बहू ने सास पर खूब अत्याचार किये हैं दोनों में मनमुटाव और झगड़ा अधिक मिलता है एक पुत्र, बहू के कहने पर अपनी माँ को जंगल में छोड़ आता है। और दूसरी ओर सास के अत्याचार के कारण बहू मायके जाते-जाते रूक जाती है और उसका भाई निराश होकर घर वापस लौट आता है ।

23. पुरूष बलि -

लोककथाओं में पुरूष की बलि जानवरों की बलि की तरह मिलती है । एक लोककथा में एक स्त्री का भाई और पति अपनें-अपने वायदें के अनुसार' काली' के पास अपना सर काट कर चढ़ा देते हैं । वह स्त्री भी मन्दिर में प्रवेश करती है और दोनों का सिर कटा देखकर रोने लगती है। 'देवी' साकार अवतरित होती है और स्त्री से पीठ फेरकर सिर जुड़ानें को कहती है। स्त्री पीठ फेरकर सिर धड़ पर चिपकाती है और दोनों जीवित हो उठते हैं ।

24. भूत-प्रेतों की बाहुल्यता -

भूतों की अनेक कथायें मिलती हैं जिनमें भूतों की अनोखी करामातें चित्रित हैं । आदमी का पीछा करना, आदमी की सहायता करना, चारपाई पर पड़े-पड़े बीस गज दूर की चीज उठाना, रात्रि के समय अपनी करामात दिखाना, तथा भोर होते ही गायब हो जाना, भुतनी के पुत्र होना, बोलना नहीं, पकड़े जानें परे वरदानदेंना, रूपया-पैसा देंकर मिठाई खरीदना और रोशनी से घबराना आदि ।

25. उपदेशात्मकता के साथ मनोरंजकता -

पशु-पक्षियों सम्बन्धी सभी कथायें उपदेशात्मक हैं । लेकिन निर्देशन की इस अधिकता के होते हुये भी कथायें मनोरंजक हैं जिसके फलस्वरूप मनोरंजन के साथ उपदेश भी पूरा हो जाता है ।

कुछ अन्य विशेषताऐं :-

: 'मार-मार सौंटा' 'बांध-बांध पैंगुड़ी ' द्वारा अपने दुश्मनों को रस्सी से लपेटना तथा डन्डें द्वारा पिटवाना ।
: बावन व्यंजन की छोटी सी डिबिया द्वारा सौ मन भोजन तैयार होना ।
: राजकुमारी के पेट से सर्प निकलना और बढ़ई के बेटे का उसे तलवार से मारना ।
: स्त्री का अन्य पुरूष से प्रेम तथा पति को मारने की साजिश ।
: ऐसी स्त्रियों के पतियों का बेवकूफ या नासमझ होना और स्त्री का पति की नासमझी से फायदा उठाना ।
: जानवरों में असमान विवाह मिलते हैं । 'स्याल' का बाघीण से विवाह एक कथा में मिलता है ।

: रांड (विधवा) स्त्री को नासमझ, मक्कार, जाली और कुकर्मी माना गया है। घिड़ुड़ी रांड की कथा में मादा घिुड़ुड़ी की करतूतों को रांड. के जाल समझकर छोड़ दिया जाता है। घिड़ुड़ी रांड से बचने के लिये राजा स्वयं अपनी कछड़ी छोड़ देता है ।

: लोक कथाओं में 300 से 4000 रूपयें, सात भाई, एक बहन, सात समुन्दर, सात परियां, और सात चीजों की बार-बार पुनरावृत्ति हुई हैं ।

: मामा-मामी के रिश्ते नें नायकों के प्राण राक्षसों से बचायें हैं।

: राजकुमारी की फूलों से तुलना। एक लोक कथा में राजकुमार से प्रेम हो जाने से राजकुमारी का वजनबढ़ जाता है ।

: राजकुमारी की प्रसन्नावस्था में मुंह से 'सुफेद फूल झड़ना' तथा दुःखी अवस्था में मुंह से कोयले झड़ना ।

: आदमी का कढ़ाव में पकाना। झंजर छूने से जीवित होना। पतिव्रता ब्राह्मणी की कथा में राजा द्वारा कढ़ाव में अपना शरीर पकाया जाना । प्रसन्न होकर देवी का राजा को पुर्नजीवित करना ।

: निल्लाट तथा अमृतताड़ा द्वारा जीवित होना ।

: आस्मिक असन्तोष की अवस्था में पक्षी बनना । भाई ' भुक्तों' 'चोली' 'सतर तथा पुर पूरे' 'काफल पाको' तथा 'भटकुटरू' कथा में स्त्री तथा पुरूष श्राप अथवा असन्तोष वश पक्षी के रूप में बदले मिलतें हैं ।

: पंखों को जलाकर, मूछों कों रगड़कर राक्षसों की सहायता प्राप्त करना ।

: किसी स्थान विशेष के राजा का मरना । कथा नायक का वहाँ पहुँचना । राजा के सिपाहियों का वहाँ घूमना । नायक को पकड़कर लेजाना उसें राजसी वस्त्र पहिनाना और वहाँ का राजा बनाना ।

: कथा में पशु-पक्षियों का सबसें बड़ा सहायक सिद्ध होना, हंसों द्वारा पंखों में बिठाकर सात समुन्दर पार कराना , कौओं द्वारा सूचना दी जानी, नेवले द्वारा सांप के टुकड़े-टुकड़े होना , शेर, बाघ, हाथी द्वारा जंगल में दोस्त बनकर सहायता करना, बहुत सी कथाओं में मिलता है ।

: कठिनतम परिस्थितियों में अपने सतीत्व तथा माँ के दूध की पवित्रता के बल पर नदी लांघने, दीवार फांदने, भूत-प्रेतों से मुकाबला करने, आकाश में उड़नें, शेरनी का दूध लाने, सतीत्व की परीक्षा के लिये आग में बेठने तथा जलते कोयले को हाथ में लेने में सफल होना मिलता है ।

अध्याय - 5

गढ़वाली लोकोक्तियां (अखाणा-पखाणा)

लोकोक्तियाँ-

लोकोक्ति, लोक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। लोक जीवन के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिये इनका अध्ययन आज बहुत महत्वपूर्ण है। ये लोक के अनुभूत ज्ञान की निधि हैं, जो कि लोकगीतों की भांति परम्परा से मौखिक रूप में लोक की विरासत के रूप में उपलब्ध हैं। इनके अध्ययन से समाज के उत्थान पतन की विभिन्न अवस्थाओं का भली-भांति ज्ञान हो सकता है। लोकोक्तियों[1] के आधार पर समान संस्कृति-भाषा विषयक नवीन तथ्यों की ओर संकेत मिलता है। इस कथन से भी लोकोक्तियों के संग्रह और उनके महत्व पर प्रभाव पड़ता है। लोकोक्तियों का अर्थ लोक की उक्ति है यानी जिसे हम लोग कथन कह सकते हैं। लोक की यह उक्ति लोकोक्ति लोक छाप पाने पर ही लोकोक्ति बनती है।[2] स्पष्ट है कि लोकोक्ति एक ऐसा कथन है कि जो किसी के द्वारा प्रयुक्त (कहे) किये जाने पर लोक की कसौटी के सामने आती है और खरा उतरने के पश्चात लोकोक्ति का रूप धारण कर लेती है। लोकोक्ति बन जाने पर उक्त कथन व्यष्टि से समष्टिरूप पा लेता है और व्यक्ति का अस्तित्व समष्टि के साथ मिलकर समाज की निधि बन जाता है। इस दृष्टि से लोकोक्ति का क्षेत्र बहुत व्यापक है लेकिन आज इसे कहावतोंके संकीर्ण दायरे तक ही सीमित किया गया है। लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है। प्रत्येक प्रकार की उक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर पहेली भी लोकोक्ति है।[3] लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनके जीवन में सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होता है। इनमें गागर में सागर है।[4] ये मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र है। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य राशि नाना प्रकार से रत्न उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल "मेवाड़ की कहावतें" भाग-9 भूमिका।
2. डा0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल "गढ़वाली पखाणा" भूमिका।
3. कृष्णनन्द गुप्त-लोकवार्ता पत्रक सं0 3, पृ0 9
4. डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल

से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।[1] जीवन के भिन्न-भिन्न अनुभव सर्वसाधारण जन के मानस को प्रभावित करके उसकी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित अंग को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। ये ही अनुभव लोकोक्तियां हैं।[2] इस दृष्टि से लोकोक्ति का क्षेत्र बहुत व्यापक है और यह लोक की समस्त उक्ति गीतात्मक, पद्यात्मक है। लेकिन आज इसे कहावतों के संकीर्ण दायरे तक ही सीमित किया गया है।[3] लोकोक्ति का यह संकुचित अर्थ लिया गया है । प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर "पहेली" भी लोकोक्ति है। स्वर्गीय डा0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का कथन है कि "कहावत" उक्ति मात्र नहीं है, लोक की उक्ति है, इसी से उसे लोकोक्ति कहते हैं। साधारणतः सभी प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। लोक का कोई भी कथन चाहे वह काहवत के रूप में हो, पहेली के रूप में हो, सूक्ति और मुहावरों के रूप में हो, तब तक लोकोक्ति रूप में परिणत नहीं किया जा सकता, जब तक उसे लोक छाप न मिली हो और लोक प्रायः उसे बोलने नहीं लगते[3]। निःसंदेह कहावतें, पहेली, सूक्ति, मुहावरे सभी लोकोक्ति के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि ये लोकोक्ति का रूप तभी धारण करते हैं जबकि इन्हें लोकमानस अपनाकर अपनी जिह्वा पर चढ़ा लेता है अथवा ये लोक की वाणी पर छा जाते हैं। कहावत, लोकोक्ति और संस्कृत का प्रयोगवाद वही है जो अंग्रेजी का "प्रौवर्ब" है।

गढ़वाली लोकोक्तियों का वर्गीकरण

गढ़वाल के अखाणा-पखाणा को हम निम्नांकित मुख्य छः भागों में बाँट सकते हैं। यथाः-

1. स्त्रियों के लिये प्रयुक्त कहावतें
2. पुरुषों के लिये प्रयुक्त कहावतें
3. सामान्य रूप से प्रयुक्त लोकोक्तियां

---

1. श्याम परमार-भारतीय लोक साहित्य।
2. सत्यव्रत अवस्थी - लोक साहित्य की भूमिका।
3. गढ़वाली पखाणा की भूमिका स्व0 डा0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल।

4. नीति विषयक लोकोक्तियां

   (अ) साधारण शिक्षाप्रद

   (ब) नीति निर्देशक

   (स) अनुभूत संकेत विषयक

5. आलोचनात्मक लोकोक्तियां

6. जाति विषयक लोकोक्तियां

लोकोक्तियों में जीवन के हर एक पहलू पर शिक्षाप्रद निर्देशन मिलते हैं। नीति निर्देशक कहावतों में किसी विशेष रीति व नीति और आचरण के सर्वमान्य स्वरूप की ओर उल्लेख किया मिलता है और परम्परागत अनुभवों के आधार पर उपलब्ध परिणामों के अनुरूप सर्वसाधारण के लिये मान्यताओं का व्यावहारिक रूप निर्देशित किया जाता है। आलोचनात्मक कहावतों का उद्देश्य कहावत कहकर, किसी विशेष आधार पर, व्यक्ति विशेष का दृष्टान्त सामने रखकर आलोचना की जाती है। इन आलोचनात्मक कहावतों की, नीति विषयक कहावतों के बाद बड़ी संख्या मिलती है। जाति विषयक कहावतें किसी जाति विशेष के लिये प्रयुक्त हुई कहावतें होती हैं। इनमें उक्त जाति के गुणों का उल्लेख अनुभूत ज्ञान के आधार पर किया जाता है। कुछ ऐसी भी कहावतें होती हैं जिन्हें समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से प्रयोग किया जाता है।

लोकोक्तियां-

(1) स्त्रियों के लिये प्रयुक्त-

(1) रांडु का पांजा गौं पड्या बांजा (रांडों की चालों से गांव उजड़ जाते हैं) (2) हाथ पर उजालो कांधो माजार देखा ई रांडि सार (हाथ पर मशाल तथा कांधे पर अपने यार को रखे हुए इस रांड के तरीके को देखिए) (3) दौड़ी चली त चढ़ी रांड़ मठु चली त संड़ी रांड (यदि दौड के चलती है तो बड़ी चढ़ी कहलाती है और धीरे-धीरे चलती है तो आलसी कहलाती है) (4) सांग बिगाड़े मांड गौं बिगाड़े रांड (रांड गांव को खराब करती है) (5) औरतन खोल्या दन्त, मर्दन पायो अन्त (औरत हंसी और पुरुष ने उसका मनसूबा समझा) (6) सौत अर मौत (सौत मौत की तरह है) (7) ब्यारी चली चौकूणि

हलि (बहू के चलने से सभी जगह हलचल मच जाती है) (8) सैरा दिन सेई लटकी रुम्किदा पाणिकु अटकी (सारे दिन सोती रही और सन्ध्या समय पानी के लिये दौड़ पड़ी) (9) बल्द क्या जाणों रजै की, रांड क्या जाणों कजे की (बैल राजा की क्या जाने और रांड मर्द में भेद क्या माने) (10) सासु ब्वारिन माछा ल्हीन्हें एकी कुन्नी का साट्टि दीन्हें (सास और बहू ने एक दूसरे से छिपकर मछली ली और एक ही बर्तन से धान निकाल कर दिये) (11) जुम जुम्मा नारी सबुल्हौंदी मारी (चुपचाप रहने वाली औरत सभी को मात दे देती है) (12) छुँयालु, ब्वारी छुँयाल, भुली, पुंगड़ि-पटालि मार्सा फुलि (गप मारने वाली बहू और जिठानी की खेती बरबाद होती है) (13) न्यौन्याल की ल्हयीं आग जनाना को दिख्युं बाग (छोटे लड़के की लाई हुई आग और औरतों का देखा हुआ बाग डरता नहीं) (14) जनानों बुझौणों कण को रिझौणों (औरत जरा सी बात में रीझ जाती है) (15) मि लगौंद आगरा की रांड लगौद घाघरा की (मैं आगरे की बात करता हूँ तो रांड घाघरे की बात करती है) (16) रांड लगाव फाँड कर्ता पड़ौं डाँड (रांड यदि पेट लगा ले तो कर्ता भी उसके लपेट में आ जाता है)।

(2) पुरुषों के लिये प्रयुक्त-

(1) कौड़ि न कामा, द्वि भै रामा (राम के दोनों भाई किसी भी योग्य नहीं) (2) नैथाणा पुयनि पैर्यो सीरो, बाड़ि झंगोरू खाँदु छे स्योभि फीर्यो (नैथाणा के रहने वाले घुर्या ने सीरा पहिना तो उसके कारण यह जो मोटा-झोटा अन्न खाता था, वह भी उसे प्राप्त न हुआ) (3) मरिगौ नाटो किरया न काटो (नाटा यदि मर गया तो उसके कोई भी संस्कार (मृत्यु संबंधी) नहीं होते) (4) बंच्यूं रौ नाटो कथा खालो आटू (नाटा बचा भी रहा तो कितना आटा खायेगा) (5) यार न आबत पैट्या चारि माबत (न सगे, न सम्बन्धी लेकिन चारों बाप बेटे चलने की तैयारी करने लगे)

(3) समान रूप से प्रयुक्त-

विधना मिलै जोड़ि एक अंधौं एक कोढ़ि (विधाता ने ऐसी जोड़ी मिलाई कि एक अंधा और एक कोढ़ी निकला) उन्नि तेरि कच कचि फंण, उन्नि म्यरि निदेणौं बाणा (वैसी ही तेरी कच्ची बात और वैसी ही मेरा न देने का इरादा) म्परा बल्दन उथगा बै नीच जथगा खैच (मेरे बैल ने उतना कमाया नहीं जितना खाया है) खाउन पीऊन औरू का चपक खाऊन गैरू का (खायें पीयें कोई और, मार कोई और खांय) जु बितली सब्बु कु उ बीतलि मेरा गब्बू कु (जो सब पर गुजरेगी वह मेरे गब्बू पर भी गुजरेगी)

सल न पट बाँजो घट (साज-बाज कुछ भी न हो तो घट्ट बाजा ही रहता है) चलबे थैला जखि जौला उखि खौला (वहीं खायेंगे जहां जायेंगे) त्परो ढ़करि आयां नि अयां मेरू लूण सेर देजयां (तेरा माल लाने वाला घर आय न आय पर मेरा सेर "नीमक" जरूर देते आना)।

(4) नीति विषयक-

नीति विषयक पखाणा तीन उपभागों में विभक्त किये गये हैं:-

(1) साधारण शिक्षाप्रद (2) नीति निर्देशक (3) अनुभूत संकेत विषयक। विषय और विस्तार की दृष्टि से साधारण शिक्षाप्रद पखाणा का क्षेत्र उल्लिखित दूसरे तथा तीसरे उपवर्ग से काफी व्यापक मिलता है। नीति निर्देशक तथा अनुभूत संकेत विषयक वर्गों में सूक्ष्म विभेद है जो कि उल्लिखित दोनों वर्गों में पाई जाने वाली भिन्नता को स्पष्ट कर देता है। और यह सूक्ष्म तौ भी व्यापक अन्तर विशेष लोकानुभूति (धन) नीति निर्देशक तत्व हैं, जो कि लोक के विशेष ज्ञान सहित जुड़ा हुआ, लोक नीति के परम्परागत रूप में बदल जाता है, और साधारण दृष्टि से नीति विषयक पखाणा की श्रेणी में गिना जाता है। सूक्ष्म विश्लेषण की महत्ता को स्वीकार करते हुए ही नीति विषयक पखांणा उपर्युक्त तीनों भिन्न उपवर्गों में विभक्त किये गये हैं। साधारणरूप से इनका प्रयोग एक ही उद्देश्य (के लिए), अर्थ (में) एवं रूप (में) किया जाता है। इन उपवर्गों में पाया जाने वाला विभेद (अन्तर) इतना सूक्ष्म होता है कि उसे सामान्य बुद्धि का ग्रामीण समझ नहीं पाता है और एक ही अर्थ भाव और रूप में इनका उपयोग करता है।

(5) नीति विषयक और साधारण शिक्षाप्रद-

जुत्ता को गार स्वेणी को जार,[1] परदेशि मु रोइना अपडिपत खोईना,[2] बाला कि निमरों ब्वै ज्वान कू नि मरो ल्वै,[3] आबत नि खोजणं कांगो बल्द निल्हणों ढांगू,[4] डूम चढून अकाल पड़न,[5] तेरो

---

1. औरत का यार और जूते के अन्दर बैठा कंकण बराबर होता है।
2. परदेशी से अपना दु:ख कहकर अपना पत मत खोना।
3. बालक की माँ न मरे और युवक का खून न मरे।
4. बैल बूढ़ा नहीं लाना चाहिए और मित्र कमजोर नहीं बनाना चाहिए।
5. डौमों के बढ़ने से अकाल पड़ता है।

हौल लाण तेरा भट्ट बुकाणां[1], उम्र आई सौ साठ अकल मति गै नाट[2], जैकु शर्म वैको फुट्या करम[3], स्याला भागा मेलु पाक्यो द्वी-द्वी दाणा सबु न चाख्या,[4] क्या सौप सपूत क्या भादौं कपूत, रोगि मरो भोगी बिगर बात मरो डुम जोगी,[5] जनाकना कफला से धामी तनला[6], जख मेल तख खेल जख फूट तख लूट[7] मर्दौं खाणौं औरतौ नार्णौं,[8] सबूत क्या साजणा कपूत क्या पाजणा,[9] जना का तना हुला कना,[10] जैको पतनी वैको खतर्नी[11] छोटी जात करो उत्पात[12]

(6) अनुभूत संकेत विषयक-

पेट टोटो कर्म खोटो[13], बच्चौ मा नि पायो मांड मर्या मा खाई खांड[14] जो निधोलो अपर्णो मुक क्या देलो हैको सुख[15] हूँचो करौ बड़े कांणो हेरो ठडे, जैका पेट लगी आग उक्वा खुजालो साग[16] जैं

---

1. जिसका खाओ उसका गीत गाओ।
2. साठ वर्ष में अक्ल खराब हो जाती है।
3. जिसको शर्म हुयी उसका समझो फूटा भाग्य है।
4. साले के भाग से मेलू (फल) पके और सबको चखने को मिल गये।
5. रोगी भोग कर मरता है लेकिन बना हुआ जोगी बिना बात के मरता है।
6. ऐसी जैसी चीज से वैसे ही रहना भला है।
7. जहां मेल है तहां सब कुछ है जहां फूट है तहां लूट के सिवाय कुछ नहीं।
8. मर्द का खाना और औरत का नहाना।
9. सपूत को क्या सजाना है और कपूत को क्या परखना है।
10. जैसे जौ होंगे वैसी ही उसकी संतान होगी।
11. जिसका पत न हो उसका विश्वास नहीं।
12. छोटी जात का हमेशा उत्पाद मचाता है।
13. जिसका पेट बड़ा होता है उसका कर्म खोटा होता है।
14. जिन्दा रहने में जिसे मांड न मिले उसे मर जाने पर खांड मिलने से क्या फायदा।
15. जो अपना मुंह नहीं धो सकेगा वह दूसरों को क्या सुख देवेगा।
16. जिसके पेट आग लगी होगी वह साग क्यों खोजेगा।

लगी तत्ती वो उठो रत्ती[1], त्यरो बाबु खीलनि बणांदौं त मेरा बाबु रिक्कनि खांदो[2], लिखी खयेंन्द दिखी नि खयेंद[3], जु धै लगाओ वी लाबु ल्हाउ[4], देश देशा आला भांति-भांति बुलाला[5], अपड़ो लाटु रूलाओ हैका हैंसाओ[6] जैको मरो वो क्या निकरो,[7] दाल मा काल[8], रूणों झूठा न चूणों फूटा न न्च, जख मारी चान्दि कि मेख उख तमाशो देख[9]।

(7) आलोचनात्मक-

कपड़ा न लत्ता चल कलकत्ता[10], टका न पैसा गौं गौं भैंसा[11], कौड़िन पल्लाद्वी ब्योकल्ला[12] हैकै देखी लई पैरी अपड़ि देखी नांगि म्यारा बाबू की मत्ती मै मीक वीनी मांगि[13] लोला लोला एकी

---

1. जिसका अपना स्वार्थ होता है वह रात ही उठकर काम करता है।
2. तेरा बाप खील (नया खेत बनाना) न बनाता तो उसे रीछ क्यों खाता ?
3. भाग्य में लिखा मिलता है देखा (कल्पना किया हुआ) हुआ नहीं मिलता है।
4. जो पत्ते लाने के लिये पुकारेगा वही पत्ते लायेगा।
5. देश-विदेश के लोग आयेंगे वे विभिन्न प्रकार की बोली बोलेंगे।
6. अपना लाटा रूलाता है और दूसरे का हंसाता है।
7. जिसके सर पर आयेगी वह सब कुछ करने के लिये तैयार होगा।
8. दाल में काला है।
9. जहाँ रूपया वर्षाओगे वहाँ सब काम बन जायेगा।
10. कपड़ा-लत्ता कुछ नहीं और कलकत्ता चलने की बात करता है।
11. पैसा पास नहीं और भैसे को गाँव-गाँव ढूँढ़ा करता है।
12. कौड़ी पास नहीं और दो विवाह करने की सोचता है।
13. दूसरे की औरत को संजी संवरी और अपनी और को नंगी देखकर उस दूसरी के साथ अपनी शादी न करने के लिये अपने बाप को मतिहीन कहता है।

खोला विधना न मिलै जोड़ी एक अंधो एक कोढ़ी,[1] भूड़ि पकोड़ी धामी खालो धौरौ गोसी टर्कणि लालो[2] अकल को टप्पू, मुंड मा बोझा घोड़ा मा अफू। सौण मरि सासू भादौं आया आसूं,[3] भीतर नीच आलण देलि मां नाच्णों बालण,[4] वैकी स्वेणि ल्यों वैक्वै खाड़ु खौ[5] बुतणू जान्द लैकी ल्हान्द[6] पीना पकदी रौ कौवा ककड़ौदिरौ[7], बाबु भीख मांगि ल्हालो नौ नौ द्वी ब्यो खुज्यालो[8] जैकी छैं डौर उ नीच घौर[9], भला खातिर गौर का राणा गौं का राणा द्वि आखां काँणां।[10]

(8) जाति विषयक-

फूल फूलि गैने विष्ठ भूलि गैने[11], डुमाण यौ आख्यूँ को डौर[12], तु कोली मिल्वार तेरो मेरो क्या व्योहार[13], अंधा डूम न खाई भाग उदो मुंड उबो टांग[14], डूम दंगड़ी गू गेड़ी[15] दूधै बुद जाती

---

1. गये बीते सब एक ही बाड़ी में।
2. पकवान धामी (नचाने वाला) खायेगा और घर का मालिक पकवान के लिये तरसता रहेगा।
3. सावन में सास मरी और भादों के महीने उसके लिये आँसू बहाना।
4. घर में खाने पीने के लिए कुछ भी नहीं और मेहमानी सिर पर सवार करना।
5. उसी की औरत लाना और उसी का मेढ़ा दावत में उड़ाना।
6. खेत जोतने के लिये भेजा जाता है तो खेत काट के आता है।
7. बोलने वाले बोलते रहें, काम करने वाले काम करते रहें।
8. बाप भीख माँग कर लायेगा और लड़का दो विवाह करने की सोचेगा।
9. जिसका डर था वह घर नहीं है।
10. भले के लिये गांव के राना को चुना लेकिन राना की स्वयं दोनों आँखें अंधी हैं।
11. फूल,फूल गये हैं लेकिन बिष्ट (एक जाति) लोगों को याद नहीं आई।
12. डूमों के घर का विवाह आंखों में किरकिरी पैदा कर लेता है।
13. तू और मैं अलग-अलग जाति के हैं तेरा-मेरा क्या व्यवहार है।
14. नासमझ डूम ने भांग पी और वह बौखलाने लगा।

औकात[1] बिठु कि नौ को मिठ्ठो पांणी[2] बाठा मा मिलो डोमदां गौड़ मेरो चिमटा, डूम को बाबू मरो रींण तेरो[3], जख बायो भाई नयाल उख पड़े नौ हाथ खयाल[4] जख जोशी चार तख दिन न बार[5] धोत्यूं वाला कमौन टोप्यूं वाला समौन[6] ऊपर हमने पखाणा उसी कम में दिये हैं जिस क्रम में उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

---

1. दूध की अक्ल और जाति की औकात होती है।
2. सवर्णों के कुएं का पानी मीठा होता है।
3. डूम का बाप मरा और कर्जा समाप्त हो गया।
4. जहाँ भाई नयाल जायेगा वहाँ कभी शान्ति नहीं हो सकती।
5. जहाँ चार ज्योतिषी रहते हैं वहाँ दिन वार की कोई गणना नहीं होती।
6. गरीब किसान कमाता है और नेता उसका उपभोग करते हैं।

अध्याय - 6

गढ़वाली पहेलियाँ (आणा-औखाणा)

पहेलियाँ-

पहेली स्वयं एक प्रश्न है जो कि साधारण होते हुए भी गूढ़ार्थ अपने अन्तर में छिपाये रखती है। विकास की उस अवस्था में जबकि मानव ने स्वयं को देखा होगा और प्रकृति व्यापारों से वह आश्चर्य-चकित हुआ होगा, उस समय स्वयं का अस्तित्व एवं प्रकृति व्यापार उसके लिये पहेली के ही रूप में रहे होंगे। ज्ञान-विज्ञान गुरूता और परिपक्वता के साथ ही प्रकृति व्यापारों की इन उपलब्धियों की अभिव्यक्ति हुई होगी और वाणी द्वारा अभिव्यक्त साहित्य का यह रूप भी पहेली के ही रूप में व्यक्त होकर तर्क-वितर्क सहित प्रश्नकर्ता द्वारा स्वयं समस्या का समाधान हुआ होगा। इस प्रकार मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों कीं उत्पत्ति का कारण है। डॉक्टर फ्रेजर का मत है कि पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पैदा हुई होगी। पहेली की उत्पत्ति का कारण बुद्धि परीक्षा है और बुद्धि-परीक्षा के लिए पहेली का प्रयोग किया जाता है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने पहेली को बुद्धि पर शान बढ़ाने का यंत्र या स्मरण शक्ति और वस्तु ज्ञान बढ़ाने की कला कहा है। ऋग्वेद में पायी जाने वाली पहेलियों के रूप को देखकर आपने इन्हें पहेलियों का वेद कहा जाना उपयुक्त समझा है।

भारतीय संस्कृत साहित्य में पहेली के लिये प्रहेलिका शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रहेलिका की परम्परा बहुत प्राचीन है और वैदिक काल में पहेली का उपयोग आनुष्ठानिक यज्ञों में आर्यों के द्वारा किया गया मिलता है। इस पहेली का दूसरा नाम "ब्रहमोदय" संस्कृत साहित्य में मिलता है। वैदिक काल का ब्रहमोदय, अश्वमेघ यज्ञ, अनुष्ठान का ही हिंस्सा था। बलि से पूर्व ब्राह्मण ब्रहमोदय (पहेली) पूछता था। इस प्रकार ब्रह्मोदय का अनुष्ठानिक प्रयोग भारत में नहीं बल्कि विश्व साहित्य में उपलब्ध होता है। महाभारत का यज्ञ, युधिष्ठिर संवाद पहेलियों के असितत्व की ओर संकेत करता है। संस्कृत साहित्य के सुभाषित रत्न भाण्डागारम् में कुछ पहेलिका मिलती हैं जिन्हें अनार्लापिका तथा बहिर्लापिका कहते हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि पहेली का आरम्भ वेदकाल से ही हो गया

था। आपने पहेलियों के पाये जाने पर उसे पहेलियों का वेद कहा है। ऋग्वेद के मंत्रों से आपने पहेली के प्रारम्भिक स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की है। इस प्रकार साधारण बुद्धि से परे गूढ़ार्थ वाली यह उक्ति पहेली है जिसका स्वरूप ऋग्वेद के मंत्रों से उपलब्ध होता है। डा0 सत्येन्द्र ने लोकोक्ति की चर्चा करते हुए लिखा है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। लोकोक्तियों को केवल कहावत कहना संकुचित अर्थ लेना है विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं। एक पहेली, दूसरी कहावतें। पहेली भी एक लोकोक्ति है। क्योंकि लोकोक्तियों में शुद्ध संकोच द्वारा अर्थ विस्तार का जो तत्व निहित रहता है वह पहेलियों में भी उपलब्ध होता है। लोक-मानस इसके द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि परीक्षा का साधन है। भाव में इसका संबंध नहीं होता। प्रकृति को गोप्य करने की चेष्टा रहती है। और बुद्धि के बल पर निर्भर करती है।[1] श्री रामनरेश त्रिपाठी तो इन्हें ज्ञान बढ़ाने का यंत्र या ज्ञान बढ़ाने की कलें मानते हैं। अतः पहेलियाँ वाग् विलास की वस्तु हैं। बुद्धि परीक्षा के साधन हैं। इससे बुद्धि व्यायाम होता है तथा रस निष्पत्ति रहित मनोरंजन भी होता है।

गढ़वाल में पहेलियों को आणा कहते हैं। इनका आनुष्ठानिक प्रयोग पूरे जनपद में कहीं भी नहीं मिलता है। आणा साधारणतः मनोरंजन के माध्यम हैं। खाली बैठे लोग बुद्धि-विलास अथवा बुद्धि-परीक्षा के लिए आणा पूछते हैं। आणा को ही कहीं-कहीं मौंणा तथा बुझनी भी कहा जाता है। जिसका दूसरा एक मात्र अर्थ आणा ही होता है। गढ़वाल में लोक के समस्त व्यस्त जीवन के विषय में पहेलियां मिलती हैं। इनके उपलब्ध स्वरूप के अनुसार ही उनका विभाजन विषयगत ही किया जा सकता है। पहेलियां जिन विषयों पर उपलब्ध होती हैं वे इस प्रकार हैं– आग, किल्ला,[2], बन्दूक, जूड़ा[3],

---

1. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन 494
2. खूँटा (जिस पर गाय-भैंस बांधे जाते हैं)
3. रस्सी, (जानवरों को बांधने की रस्सी को जूड़ा कहते हैं।)

दिवा,[1], स्यूंण-धागू,[2], रौड़,[3], लोड़ू-सिलोट्टू,[4] टोपी, माड,[5] बत्ती,[6] ब्बानू,[7] चिट्ठी, कोलू,[8], सुरंग घाघरू[9], परप्पा[10], घट्ट,[11] ढोल दमौं, जूं रिक्क,[12] गुरौ,[13] कुत्ता बाज, छिपाड़ु,[14] सरसू[15], उपांणू,[16] गिगाड़ु,[17] जौंक, मैंढ़कू, खरगौंस, उल्लू, तैड़ू,[18] पिंडालू,[19] मर्च[20], मूला[21], अर्मेत,[22] मारसू[23], चौंल[24], मुंगरी,[25] जुढलू,[26] बाजरू,[27] रोट्ठी[28], केला, लिम्बा,[29], नारंगी,

---

1. दीपक
2. सुई तागा।
3. छांछ छोलने का यंत्र मथानी
4. सील-बट्टा
5. चावलों का अर्क-चावल पकाते हुए, कुछ पानी जो कि अधिक होता है, निकाल दिया जाता है, इसे माड कहा जाता है।
6. बाती-दीपक
7. झाड़ू
8. कोल्हू-तेल पेरने की देशी मशीन।
9. घाघरा
10. परोड़ा या छाछ छोलने का लकड़ी का बर्तन
11. घराट
12. रीछ
13. सर्प, साँप
14. छिपकली
15. खटमल
16. उपना
17. घेंघा
18. घुयां की एक जाति
19. घुयां।
20. मिर्च
21. मूली
22. सीताफल
23. रामदाना
24. एक फल
25. भट्टा
26. ज्वार
27. बाजरा
28. रोटी
29. नीबू

मसेट्रू,[1] काखड़ी[2], दालिमू[3], तोमड़ी[4], सूर्ज,[5], जोन,[6] गैंणा,[7] गदना[8], खाट[9]-खटूला, आगास. गंगा[10], गोरगैंडा, धाल घेकू[11], घाम, निन्द, औड़, दांत, आंखा[12], अंणकिलू[13], अंगूली,[14] अंगो-ठ्या[15], कंदूड़[16], हाथ खुट्टा[17] हल सुंगू,[18] हलसूंगा नाडू[19], बांणू,[20] बल्द,[21] सोटकी,[22] मय्या[23], उखड़ी,[24] . सेरू, मारसा[25], डालू[26], कंडाली[27], दिन, रात

---

1. दालों-उड़द, मूंग, गौथ पीस कर तैयार किया गया पदार्थ, जिसे मसेटू कहा जाता है।
2. खीरा
3. दाडिम
4. लौकी
5. सूर्य
6. चाँद
7. तारे
8. गधेरा
9. सप्तऋषि
10. आकाश गंगा
11. चाँद के चारों ओर पड़ने वाला घेरा
12. आंख
13. गाय या भैंस के थन
14. अंगुलियां
15. अंगूठा
16. कान
17. पैर
18. हल
19. जुआ पर पहनायी जाने वाली रस्सी
20. लोहे का फल जिसे हल पर लगाया जाता है और जिससे भूमि जोती जाती है।
21. बैल
22. बैल जोतते समय बैलों को हाँकने के काम में लायी जाने वाली छड़ी।
23. पाटे की तरह का यंत्र जिसका उपयोग रोपनी के लिए खेत तैयार करने में होता है।
24. बिना रोपाई वाले धान के खेत
25. रामदाना
26. पेड़
27. वनस्पति का पौधा

गढ़वाली पहेलियों का वर्गीकरण-

गढ़वाली पहेलियों को हम सात भागों में बांटते हैं -

1. व्यवहार की वस्तु संबंधी आणा, 2. जीव संबंधी, 3. साग, सब्जी, भोजन सामग्री संबंधी, 4. प्रकृति व्यापार संबंधी, 5. शरीर, अंग संबंधित, 6. खेती और खेती के हथियार संबंधित, 7. मिश्रित।

1. व्यवहार की वस्तु संबंधित आणा में आग, किल्ला बंदूक, जूड़ा, दिवा, स्यूंण, धागू रौड़, लोड़ू-सिलोट्टू, हुक्का। पाथू[1], फिरकू[2], टोपी, स्यूंण मांड, बत्ती, ब्बानू, चिट्ठी, कोलू, सरंग,[3] घाघरू, परय्या, घट्ट, ढोल, दमौ, बुलाक हंसुली, आंगड़ी,[4] फत्वी,[5] झगुली,[6] जांदूरू[7] तथा डौंर-थाली प्रमुख हैं।

2. जीवन संबंधित आंणा में जूं, रिक्क, गुरौ, कुत्ता, बाग,[8] बाज, बल्द,[9] छिपाड़ु, सरसू, गिगाड़ु, बोड़,[10] जोंक, मेंढकू, खरगोंस, उल्लू प्रमुख हैं।

---

1. माप का काठे का बर्तन। 4 सेर । पाथा।
2. चर्खी और केले की फलियों के झुण्ड जिसमें 60-70 फलियां तक केले होते हैं उसे यहाँ फिरकू, फिरक, (का) भी कहा जाता है।
3. आकाश
4. मिरजई की भांति स्त्रियों के पहिनने का वस्त्र जिसे अंगिया भी कहा जाता है।
5. स्त्रियों के पहिनने की जवाहरकट।
6. छोटी लड़कियों के पहिनने का वस्त्र जिसे आधुनिक फ्रॉक की संज्ञा दी जा सकती है।
7. घरेलू चक्की।
8. बाघ
9. बैल
10. नर बछड़ा।

3. साग सब्जी भोजन सामग्री संबंधित-तैड़, पिंडालू, मर्च, मूला, अर्मेत, मारसू, चौलै[1] मुंगरी, जुंडलू, बाजरू, रोट्ठी, केला, लिम्बा, नारंगी, मसेट्ठ, काखड़ी, दालिंमु, और तोमड़ी हैं।

4. शरीर अंग संबंधित-निन्द, ओठ, आंखा, दांत, अंगकीलू, अंगुली, अंगोंठ्या, कंदूड़ अंगुला, हाथ खुट्टा, नंग्ग[2], हथेली तथा जोंखा।[3]

5. प्रकृति संबंधी व्यापार सूर्ज, शैंणा, गदना, खाट-खटूला, वर्ष, दिन रात, गौरैंड़्डा थाल-घेरू, घाम आये हैं।

6. खेती और खेती के हथियार संबंधी-हलसुंग्गू, माड़ू, बांणू, पैरा[4] सौटकी, मय्या सेरा, उखड़ी, मर्साडालू, मुंगर्यो डालू, मुंगर्या जोंगा, जुंडलू और बाजरू आये हैं।

7. मिश्रित बाग, कुत्ता, गदनू, घट्ट, शिव, फूल सड़क नाता[5] तथा हिन्दी भाषा में प्रचलित पहेलियां आती हैं।

1. सिल्ल-सिल्कि पाताल बिल्कि 2. कालि खुंडकी धम्कि आग, मौनू बचपूं अपणु भाग। (बंदूक) 3. अब्बि इतनी छे, अब्वि भारी व्हैगे। (आग) 4. क्वी रात्यों रौंदू (विज्यूं) क्वी दिनौं रौंदू बिज्यूं (जूड़ा) 5. उक्खी माटै मठगांणा, उक्खी तैले तिलखांणा। 6. छोट्टी छोरयो लम्बु धोतु। (सुई-तागा) 7. चारी बैणि एक्की खाड़ धरदीन। (रौड़÷मथानी) 8. बैथे पुंगड़ी आधा बीज। (लोड़ू-सिलोट्ट) 9. लौगू का गुच्छा पांणी का यार (हुक्का) 10. छोट्टिट छोर्यो लम्बु पोंपिलू। (स्यूंण-धागु सुई तागा)। 11. अफू अगनै जांणी, पिछनै अंदड़ा पिंदड़ा औंणा छन। (सुई) 12. खम्म बुढ्या खाडू। (कोल्हू) 13. घौर औंदू बौंण मुक्ख, बौंण जांदू घौर मुक्ख। (कुल्हाड़ा) 14. मत्या मुल्कौ रगड़दास, अर अंडरू व्यौंदू सौ पचास (फिरकू÷चर्खा) 15. काठा कठगड़ा-लुम्बा पेच उखाड़ नी सकूदें कपाल रेच। (तालु÷ताला) 16. काठा

---

1. रामदाने की एक जात

2. नाखून

3. मूँछें

4. एक खेत से दूसरे खेत की मेढ़ तक ऊंचाई वाले भाग को पैरा कहा जाता है।

5. रिश्ता।

कठगड़ लुबा तखमा (फेंका दे लौड़ी) मैं आँदू ताबमा। (सट्टी) 17. है भै दे भै देर, सिल्दै मेरी गेर, सिल्नौं मैं सिल्लू रव्वैन्या नि फेरे (दमौ - नगाड़े के आकार का वाद्ययंत्र) 18. हगदौ हगदौ नि मार (चांल्लू-चलनी) 19. तेरी ब्वै सुबेर ल्हेकि जोगि पर अंग्वाल मारदी (जंदरू-घरेलू चक्की) 20. तेरी ब्वै सुबेर लेईक दुंल्ला हाथ कोचदी (बौंला-अंगिया की बाहें) 21. मुंडग्या छोरा देलि दै ल्यों नाचदू। (पाथू-माप का वर्तन) 22. कथा धालि कथगुली, डोम्मी सुंगरी बाग ल्हीगी घुरथघाली त्वी (घट्ट-घराट) 23. सबेर ल्हेकी तेरी ब्वै जाल धौल्दी। (घाघरा) 24. हमकै बेटिन ढमकै पाद्यो, नौ दिन नौ राति पत्थर गाज्यो (बन्दूक) 25. हाड़ न मास बकल न मट्टी (कोन्नु-अनाज रखने का बांस की खपच्चियों का बना मटका) 26. पोलन न्ही पौल दुहाति उठौदौं (टोपी) 27. रातौं बचजांदू, दिनौं मोर जांदू (जूडू-जानवरों को बांधने की रस्सी) 28. काला डोमौं सोना चुम्फा (चिमनी)। 29. पट पट पीड़ा बैका पेट काला कीड़ा (चिट्ठी) 30. भागदें त भाग निथर दम्पक करदौं (सुरंग) 31. देखदें त देख निथर मैं जल्दौं, तू चल मी औंदॉ (रोटी) 32. भारत बोल्दू च, अर निमारत नि बोल्दू (ढोल-दमौ- वाद्ययंत्र) 33. काला डांडा रौंदू छौं, लाल पांणीपेंदू छौं हतन्या शैर औंदू छौं नगन्या शैर मां मरदू छौं (जूं) 34. छोट्टि छोरयो मिट्ठू कल्यो (मारा-मधुमक्खी) 35. अलवट्ट सलवट्ट कामले गात्ती, का जांदी मेरा भुवसिंग कालि रात्ति (रिक्क-रीछ) डूंडी लाखड़ी गोदनि धरनी लपलपी सोटगी हाथ निल्हैंदी (गुरौ-सांप) 37. हे लांकरा हे लांकरा भुकरयां सणै घुरन्या ल्हीगी। (कुत्ता-बाग) 38. सरसर चल्दू सांप भिनी, सिरमां, कंलकी मोर भि नी, पूंछ लम्बी छ बांदर भि नी गल मां पाठा शेर भी नी (छपाडू-छिपकली) 39. अब्बी इख मु छै अर अब्बी तखमु च (आंखा-आंखें) 40.पट्ट पकड़ा सट्ट मारा (सरसू-खटमल) 41. मारभी अरर् मा मार भी (उपांणू-उपना) 42. हाड न मांस गल गलु गात (जोंक)। 43.बिना हाड पुरूष अर बिना हाड राणी (गिगाड़ा-घोंघा) 44. टुप्कट्टया (मेडकू) 45. आजै राति काटी सकूद भौल कूडू चिणदू। (छियाडू-छिपकली) 46. घार मां तील चौंल खत्यां छन (किरमोला-चींटियां) 47. दिनौं आंखा नि देखद, रातौं आंखा देखद (उल्लू) 48. गैरी ऊबरी पंडौं नाचणांन (मारसू-रामदाना) 49. अफ्फू डाला मां जांदी अर हैको, बोल्दी मेरा नैना बालौं जग्वाल (पिंडालू-घुयाँ) 50. छोट्टि छोरि बड़ाबड़ौं रूबौंदी (मर्च-मिर्च) 51. हे भै भै टल मुण्डवा, हां भै हां भै हल चुड़ैया, गों मा हबला, गबला होंणू छ त्वै सण खावन चा मै खावन (मूला-मूली) 52. मै गै बल केम्बी सारी, अर मैन उख मु गेर पसारी (अर्मेर्त-सीताफल) 53. उखरयालाउदें कीड़ा (चौंल-चॉवल) 54. काखड़े सिंगणी भिरगै

खल्ला, ए कुटममा नी न क्वी भल्ला (मर्च-मिर्चा) 55. हरी छौं भरी छौं मोत्यौं जड़ीं छौं, खेत मा खड़ी छौं (मुंगरी-भुट्टा) 56. भलिबांद भुंडै पैंड ब्योंद्रं, (केला) 57. हात बौंण्यों को इक्की ढिक्यांण (लिम्बा नारंगी-नीबू नारंगी) 58. हाड ना मास गल गला गास (केला) 59. भैर अन्न अर भितर कोन्नू छ (मुंगरी-भुट्टा) 60. सुबेर ल्हेकि तौरि ब्बै लाल बाछरू पेट फड़दी। 61. लगलग लकड़ी दोलग डांडा, बिना कुम्हार का पथ्यां भांडा (तोमड़ी-लौंकी) 62. जुम जुम्पा नारी अर सबुल्है मारी (नींद) 63.लग लग कहे ना लगी विलग कहे लग जाय। (ओंठ) 64. सुफेद बखरियोंन उड्यार भरयूं छ (दांत) 65. बत्तीस भै कुटदारा अर एक नोनी स्वैरदारी (दांत, जीव-जिह्वा) 66. अब्बी इखमू छै अर अब्बी तख मूं च (आंख) 67. कोड्यों को छुम्मा पाणिकु खाल : (दांत) 68. चाररी बैंणी एक्की खाड़ मुतदेन (घौण-गाय के थन) 69. तेरी ब्वे सुबेर ल्हेण द्वी सान्यों कु मोल गाड़दी? (सिंगांणू -सीप) 70. सौब भिजद जोगी झोल्ली नि भिजद (अणकीलू-भैंस के थन) 71. बिना बक्कलौ पेड़ (बात) 72. डोंका डोंका माछू (अंगूठा) 73. चाद्यो बटवा सोने डोर जाबे बट्वा दिल्ली पोर (सूर्ज-सूर्य) 74. सैणी पुंगड़ीबल्द नि जोतेंदा (गंगाजी) 75. धार मा आधा रोट्टी (जोन-चांद) 76. बोड्यों कि ठोपरि मेरी घाम खेयीं छ । (गैंणा-तारे) 77. गजभर कपड़ा बार पाट तोंणि लगेंन तीन सौ साठ (एक वर्ष) 78. खड़बड़ खट्टा छोट्टिट पुंगड़ी लम्बी जद्टा (नाडू-जुआ पर पहिनाई जाने वाली) 79. पूरब देखा पश्चिम देखा अर देखा गुजरात, ऐसा तमाशा कहीं न देखा फल ऊपर दो पात (गुम्मा) 80. जल की भरी पींजरी, ऊपर निकले आग, जब बाजे बांसुरी तब निकले काला नाग। 81. (हुक्का) हे लाकरां हे लाकरां, भुक्या सण घुरन्या ल्हीगी, बोगण्यां उदै रिंगण्यां तुब। (गांव, कुत्ता, बाग, गधेरा घराट) 82. श्याम वर्ण मूं उजला कैसा (उड़द की दाल क्या भाव है?) कौन पुरूष खूब संवारा (छांणि फटगीं खूब छ- अच्छी तरह साफ दाल क्या भाव है? (रामकृष्ण अष्टमअवतारा (छांणि फटगी-साफ दाल आठ पाथे की मिलेगी) 83. पंडत नहीं गंडत है, फिरै सदा नगर गनै, फलझड़े फूल रहे बतावों किसका नाम (मार्सा-रामदाना) 84. बाला था सबके मन भाया, बैठा था कुछ काम न आया (दिया-दीपक) 85. एक मुर्गी चलते चलते थक गई, लाओ चाकू काटो गर्दन फिर भी चलने लग गई। (पेंसिल) 86. धानसिंह का बेटा मानसिंह मिलना हो तो मिल जाओ नहीं तो शीतलपुर को जाता है। (मांड-चावलों का अर्क) 87. अपणी मां का ममा भण्ज्या जवैं को क्या वौलदीं (पिता)।

कुछ पहेलियां (आणा) के स्वरूप और उनकी बुझौवल की वानगी देखें -

पहेली

(1) श्याम वर्ण सूं उजला कैसा ?

अर्थ

उड़द की दाल का क्या भाव है?

उत्तर

(2) रामचन्द्र के पिता दशरथ जैसा,

अर्थ

दस रूपया प्रति पाथे (माप का बर्तन) है

प्रश्न

(3) कौन पुरूष खूब संवारा ?

अर्थ

स्वच्छ-साफ दाल क्या भाव है ?

उत्तर

(4) रामकृष्ण अष्ठम अवतारा

अर्थ

स्वच्छ साफ दाल आठ पाथे की है।

गांव की बहू जो अपने जेठ, पति, श्वसुर और सास तथा अन्य बुजुर्गों का नाम नहीं ले सकती वह, कुत्ते को बाघ द्वारा ले जाने पर पहेली में जवाब और पहेली में, गांव वालों को सूचना देती है-

पहेली-

"हे लाँकरां हे लाँकरां भुकण्यां संपों घुन्धा ल्हीगी, बौगण्या उदें रिंगण्या तुब"

	सम्भावित नाम
गांव वालों के लिए- लांकरां	गबला, गौरा, गौरी
कुत्ते के लिए- भुकण्यां	कोतवाल सिंह, कुत्ता
गधेरे के लिए- बौगण्यां	गज्जा, गजेसिंह,
घराट के लिए- रिंगण्यां	घन्ना, घनानन्द
बाघ के लिए- धुन्या	बागा, बागा सिंह

अर्थ-

हे गांव वालों, हे गांव वालों, कुत्ते को बाघ ले गया है, गधेरे की ओर, घराट के आस-पास'।

एक और रूप है, आणा का रिश्ते के रूप को पूछे जाने का-

प्रश्न-

अपणि माँ का मसैं भाण्ज्या जवैं कु क्या बोल्दी ?
अपनी माँ के मामा की भान्जी के पति को क्या कहोगे?

शब्दों का चित्र-

कालि खुँडगि धमकि आग,
मोन्नु बचणुं अपणु भाग

बन्दूक की नली से आग (गोली) निकल गई है, अब तो मरना-जीना अपने-अपने भाग्य की बात है।

काव्यात्मक ध्वनि-

(1) काला डॉडा रौदु छौं
लाल पाणि पेंदु छौं
हतन्या शेर औदूं छौं
नगन्या शेर मारेदूं छौं

सिर के काले बालों (काला डांडा) में रहता हूँ। मनुष्य का खून (लाल पानी) पीता हूँ। हाथ रूपी शेर (हतन्या शेर) के हाथ पड़ता हूँ और नाखून रूपी शेर (नगन्या शेर) के द्वारा मारा जाता हूँ। पहेली का उत्तर है, जूँ।

(2) उखि माटै मठखाणं
उखि तेलै तिलखाणं

(3) काठा कठगण
लुव्वा, पेंच
उखाड़ नि सकदी
कपाल देच

अर्थ वैविध्य के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(1) कोडि पिछनैं का पिंडालु - मल-मूत्र

(2) उरब्याला उदैं का कीड़ा - चावल

इस तरह गढ़वाल में पाई जाने वाली पहेलियों में, संगीतात्मकता और काव्यात्मकता के साथ उच्च कोटि का हास्य भी मिलता है। इनमें बुद्धि विलास के साथ भावात्मक संजीदगी भी है और सारा का सारा आणा (पहेली) साहित्य बुद्धि का परीक्षक, संगीतात्मक और मनोरंजक है।

लोक कला-खण्ड

अध्याय - 7

गढ़वाल की लोक कलाएँ

लोक कलाओं की परिभाषा-

लोक कलाओं के उदय के बारे में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि लोक कला का उदय आदि मानव के श्रम का प्रतिफल है। दूसरे शब्दों में उत्पादन ही लोक कलाओं की उत्पत्ति का आधार है।[1] दूसरे विद्वान इस मत को भ्रामक मानते हैं उनका कहना है कि उत्पादन ने कला को अभिवृद्ध तो किया है परन्तु इसके उदय में इनका ऐसा हाथ नहीं था। दूसरा मत है कि शांति और व्यवस्था में कला का जन्म हुआ। तात्पर्य यह कि कला वास्तव में मानव में स्वतः फूट पड़ी है अथवा जंगलों में घूमते समय उसके हाथ लगी है। गन्धर्व वेद से राग-रागिनियाँ निकली हैं। इनमें मानव मन की तन्मयता और श्रम के उपभोग की गंध है। सोलह रसों से सम्बन्धित सभी साहित्य इसी की देन हैं।[2] स्टैंग के अनुसार समस्त साहित्य पूर्वजों की पूजा के समय गाया जाने वाला साहित्य है। संगीत, गीत के बाद नृत्य पर लोक की श्रम साधना का प्रभाव है। इन पर समुदाय विशेष और जाति विशेष के पेशों का भी प्रभाव है। इन पर समुदाय विशेष और जाति विशेष के पेशों का भी प्रभाव पड़ा। खेतिहर समुदाय के नृत्यों में बुआई, रोपाई आदि के चित्र मिलते हैं। इस तरह आदि मानव का सारा का सारा जीवन, उसके उत्पादन से सम्बन्धित था। मानव की खुदाई, चित्रकला और शिल्पकला भी इसी भावना से भरी थी।[3] उनके साधारण उपकरणों द्वारा कला के उच्चतर माध्यमों की सुरूचिपूर्ण उपस्थिति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनकी चित्रकला में कीड़े-मकोड़े भी बड़ी कुशलता से चित्रित किये गये हैं।[4]

इस प्रकार यह मान्य है कि कला का मूल स्रोत मानवीय श्रमिक, संस्कृति ही है। आदि मानव के समस्त क्रिया-कलाप कला के अन्तर्गत ही हैं। इनमें उनकी रूचि, स्रोत और क्रिया-कलापों के दर्शन मिलते हैं। भूतप्रेत, पूजा-पाठ और त्योहारों के गीत आदिम कला से ही हमारी कलाओं में आये हैं।

---

1. सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 368
2. वही पृष्ठ 398
3. दि बिगनिंग आफ आर्ट पृष्ठ 23।
4. सम्मेलन पत्रिका

श्री ल्यूस हारपस अपनी पुस्तक[1] में आदिम मानव की कला और लोक कला को समाज की प्रगति की दो उदय हुई सीढ़ियाँ मानते हैं। श्री मार्कडेल का कथन है कि लोक कला समाज की कसौटी है।[2] प्रागैतिहासिक कला एवं संस्कृति का रूप हमें आदि मानव के अवशेषों के रूप में मिलता है। वे अपनी जीवन गाथा, आखेट, संस्कारों तथा अन्य कर्मो को अपनी गुहा-दीवारों पर अंकित करते थे। इनके ये चिन्ह युक्त प्रतिरूप इनकी कर्म पद्धति के आधार स्तम्भ हैं। इनमें मानव के जीवन निर्वाह सम्बन्धी विकट संघर्ष और दुस्साहसों की कल्पना मिलती है। आदि मानव में ललित कला की भावना शक्तिगर्भित अवस्था में विद्यमान थी। उसने अपनी धार्मिक कर्म सम्बन्धी अभिव्यंजना द्वारा अपनी गत्यात्मक एवं लयात्मक शक्तियों को खोज निकालने की चेष्टा नहीं की। यह केवल इच्छानुसार ही आत्म अभिव्यंजना के उद्देश्य से स्फुटित हुई जो सारे उत्तरवर्ती कला अभिव्यंजना की प्रधानाधार बन गयी।[3] धार्मिक कार्य पद्धति से मूर्ति पूजन की कला का उदय हुआ। इस तरह उन्नतिशील कल्पना युक्त लोकात्मक कला का जन्म तथा विकास आदिम कला के रूप में हुआ।[4] पितरपूजा के लिए काष्ठ-मूर्ति का निर्माण हुआ। चित्रकार, मूर्तिकार और काव्य रचनाकार ने अपनी कला के निर्माण में युग प्रति युग को ग्रहण किया और कला को अमर कर दिया।[5]

आदिम मानव प्रेतात्माओं को दूर करने की चेष्टा करता था। इसके लिए उसने रहस्यमय आत्माओं की सहायता ली। इसी से पिशाच पूजा, गुप्त सूचक चिन्हों पर आधारित मिलती है। धीरे-धीरे मानव ने इसे प्रभावशाली बनाने के लिए उसको ललित कला का रूप देने की कोशिश की। धार्मिक कर्म पद्धति से सम्बन्धित सांकेतिक चिन्ह थे -

---

1. सोशल रूट्स ऑफ आल आर्ट्स
2. सम्मेलन पत्रिका
3. भारतीय चित्रकला, असीत कुमार हालदार पृष्ठ-2
4. वही
5. वही

(1) आदि जातियों के देवताओं की आकृतियों तथा गुप्त सूचक चिन्ह

(2) देवी-देवताओं के लाक्षणिक चिन्ह तथा मूर्तियाँ

(3) पूर्वजों की प्रतिमाएं अथवा पुतले।[1]

उपर्युक्त के आधार पर अभिव्यंजित कला आकृतियों को हम इस तरह श्रेणीबद्ध कर सकते है :-

(1) पौराणिक उप-कथाओं का कहानी वर्णन तथा कविता-पाठ जिसमें ताल सहित संगीत का समावेश होता था।

(2) नाटकीय अभिनय में मुखावरण सहित नृत्य के हाव-भाव दिखाने तथा नकल करने की कला।

(3) मूर्ति तथा चित्रकला अर्थात् चित्रकारी, नक्काशी, कपड़ा बुनना तथा मिट्टी के खिलौने अथवा बर्तन बनाना।[2]

ये सांकेतिक अभिव्यंजन हैं और इनसे सम्बन्धित हर वस्तु एक विशेष प्रकार का अर्थ प्रदर्शित करती है। इन देवी-देवता, जादू-टोना तथा मूर्ति पूजन के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यह कला उच्चकोटि की मानसिक स्तर की थी। इसके बाद के क्रास, त्रिशूल, चन्द्र तथा स्वास्तिक इस समय भी उसी भाव के साथ ग्रहण किये जाते हैं। मृत व्यक्तियों की दाह-क्रिया के लिए बड़ी-बड़ी शिलाओं से बनाये गये भवन, गृह निर्माण कला के संकेत सूचक हैं। मुण्डाओं के मृतक-गृह इसी के प्रतिरूप है। बंगाल की इनुपूजन, मनसा-पूजन तथा पुण्य पुखर पूजन आदिम सभ्यता के ही अवशेष हैं।[3]

लोक कलाओं का स्वरूप - भारत में बौद्धिक, पूजन पद्धतियाँ रहस्यमय धर्म के रूप में विकसित हुई हैं। लौकिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आर्यो ने अनेक देवी-देवताओं का पूजन किया। उन्होने इसे चित्रित करने की भी चेष्टा की। लकड़ी और पत्थर पर इन्हें रूप दिया। कालान्तर में ये ही रूप भारतीय

---

1. भारतीय चित्रकला, असीत कुमार हालदार

2. वही

3. वही

चित्रकला में आदर्श रूप बन गये। इन प्रतिमाओं और चित्रों में, रूढ़िगत लययुक्त रूपों की भावभंगी वाली मुद्राएं आश्चर्यजनक हैं। भारत में यह कला सिंहनपुर की रायगढ़ रियासत में, होशंगाबाद में, मिर्जापुर जिले के लिखुनियाँ, कोहभर तथा बलदारिया स्थलों, चक्रधरपुर के नदी तट तथा विजयगढ़ की गुफाओं में मिलते हैं। चित्र, शिलाओं को काटकर अथवा सुअर की चर्बी द्वारा विविध रंगों में मिलाकर अंकित किये गये हैं। इनके रंग चमकदार तथा सजीव हैं। इन पाषाण युग के चित्रों के बाद सिन्धु नदी घाटी में मोहन जोदड़ो तथा हड़प्पा से निकाले गये मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी के अंश मिलते हैं। यह चित्रकारी दैनिक उपभोग की वस्तुओं को सजाने के लिए की गयी है। बर्तनों पर अंकित मनुष्य आकृतियाँ गुफा मानव की चित्रकारी का प्रतीक हैं। इनमें चेतनायुक्त भाव और प्रसाधन की भावना की प्रमुखता है। चित्रों के साथ यहाँ विभिन्न मुद्राओं वाली प्रतिमाएं मिट्टी के बर्तन, खिलौने और मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों की कमर पर करधनी, सिर पर पंखी जैसी पगड़ी तथा आलपीन जैसी कोई वस्तु खोंसी हुई मिलती हैं। स्त्रियों की मूर्तियां रत्नों से विभूषित हैं। पुरातत्व वेत्ताओं का कहना है कि ये मूर्तियां व्यवसायी कुम्हारों द्वारा बनायी गयी हैं।[1] वैदिक युग की अन्य कला कृतियाँ हड़प्पा के बाद नहीं मिलती हैं। जोगीमारा की गुफाओं के चित्रों के अतिरिक्त ये चित्र, बौद्धकाल तक उन्नतिशील कला के आगमन तक मिलते हैं। पूर्व बोद्धकाल के प्राचीन साहित्य में चित्र लेखन कला का उल्लेख मिलता है। प्रतिमाएं अभिव्यंजना में आदिम कालीन है। रंगों में काला, पीला तथा लाल का उपयोग किया गया है। यह कला आज प्रागैतिहासिक काल की जातियों अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा इंडोनेशिया में पायी जाती है।

भित्ति चित्र :

भारत में विभिन्न जातियों के आक्रमण के कारण भित्ति चित्रकारी का धीरे-धीरे ह्रास होता गया। आज इनकी स्थिति यह है कि इन भित्ति चित्रों के निर्माण काल का सही-सही अंदाजा नहीं मिलता है। फिर भी निर्माण की अपनी विशेषता के कारण अजन्ता, सिगरिया आदि में, इनके कुछ चिन्ह शेष मिलते हैं। इस संदर्भ में जोगीमारा की गुफाओं की चित्रकारी उल्लेखनीय है। यह चित्रकारी पहली

---

1. भारतीय चित्रकला, असीत कुमार हालदार

लोक कला के उपर्युक्त चार प्रकारों के अतिरिक्त पांचवा रूप स्वयं लोक कला है जिसमें पेशेवर कला के साथ काष्ठ कला, भित्ति चित्र और वास्तु कला तथा मूर्ति कला के उत्कृष्ट रूप उपलब्ध हैं।

गढ़वाल की लोकधर्मी कला का स्वरूप :

गढ़वाल की लोकधर्मी कला के मुख्यतः चार रूप मिलते हैं। ये रूप हैं-

(1) लोक कला
(2) लोक नाट्य
(3) लोक नृत्य
(4) लोक संगीत

लोक कला से हमारा तात्पर्य स्थापत्य, वास्तु, आनुष्ठानिक तथा पेशेवर कलाओं से है। वैज्ञानिक दृष्टि कोण से इन कलाओं को हम (1) पेशेवर कला (2) स्थापत्य अथवा वास्तु कला तथा (3) चित्रकला, इन तीन रूपों में विभाजित करते हैं। चित्र कला के दो रूप प्रचलित हैं- (1) ललित कला और (2) सामान्य चित्रांकन की कला। ललित कला के रूप में 'गढ़वाल में गढ़वाल स्कूल आफॅ पेंटिंग,' जिसके कर्णधार श्री मोलाराम तोमर थे, प्रचलित मिलती है। सामान्य चित्र कला के भी अनेक उप विभाग हैं। यथा-

(1) चित्र कला का सामान्य रूप
(2) चित्रकला का धार्मिक रूप
(3) चित्र कला का आनुष्ठानिक रूप
(4) चित्र कला का शरीरांकन स्वरूप

चित्रांकन अथवा चित्रकला शब्द का प्रयोग यहां किसी प्रकार के रंगों अथवा रूपों में लोक के लिए की गई चित्रकारी के लिए किया जा रहा है। इसमें घर को सजाने के सामान्य माध्यमों के साथ धार्मिक अवसरों पर प्रयुक्त अथवा चित्रांकित थापगे और आनुष्ठानिक-पौरावत्य पद्धति के आधार पर खींची

गयी रेखाओं के साथ शरीरांकन के लिए लोक द्वारा प्रयुक्त वे तौर-तरीके आ जाते हैं, जिन्हें सामान्य दृष्टि से देखने पर हम, उन्हें चित्र की संज्ञा दे सकते हैं। लोक के इस मांगलिक रूप में बारे गये (बनाये गये) टुपकों से लेकर गोदी गई ठोड़ियों की तीन अथवा चार विधियां आ जाती हैं जो कि युवा-युवतियां के दीप्त मुख मण्डल पर जगमगाती रहती हैं।

पेशेवर कला-

पेशेवर कला जीविकोपार्जन का साधन होती है। इसके माध्यम से सम्बन्धित पेशे के लोग अपना पेट पालते हैं। इन पेशेवर कलाओं के साथ प्रायः "गिरी" शब्द जुड़ा मिलता है यथा पत्थर तराशने के काम को "ओडगिरी" तथा काष्ठ कला को अपनाने को "बढ़ईगिरी" कहा जाता है। इस पेशेवर कला के यहां आठ रूप मिलते हैं-

(1) पत्थर तराशने की कला अथवा ओडगिरी
(2) काष्ठ कला
(3) बुनने की कला
(4) दर्जीगिरी
(5) आभूपण बनाने की कला
(6) बिनने की कला
(7) बर्तन बनाने की कला
(8) लोहे के औजार अथवा हथियार बनाने की कला

पत्थर तराशने की कला :

पत्थर तराशने वालों को यहाँ "ओड" कहा जाता है तथा इस पेशे को "ओडगिरी" कहते हैं। ये लोग मकान, मन्दिर और मूर्तियां गढ़ते हैं। इस पेशेवर कला में दो प्रकार के लोग हैं- (1) सामान्य पत्थर काट कर मकान बनाने वाले लोग और (2) कलात्मक पत्थर तराशने वाले पेशेवर लोग। सामान्य पत्थर काटकर मकान बनाने वाले भी पेशेवर कहे जा सकते हैं वैसे ये पेशेवर नहीं होते। ये परम्परागत ढंग से मकान अथवा मन्दिरों का निर्माण करते हैं। पेशे के रूप में पत्थर तराशने वाले विविध आकार और प्रकार की सामग्री तैयार करते हैं। इस सामग्री में "तिवारी" के लिए तैयार किये गये पत्थर के उपकरणों

की अधिकता मिलती है। मुख्य उपकरण और वस्तुएं जो तैयार की जाती हैं, वे हैं-

(1) डले अथवा कटवा पत्थर तराशना

(2) छज्जा ढालना अथवा गढ़ना

(3) कप, सीरा ढालना अथवा गढ़ना

(4) थाले ढालना

(5) मोर-संगाड़ (दरवाजे) ढालना अथवा गढ़ना

(6) मन्दिरों के लिए पत्थर के खम (खम्बे) ढालना अथवा गढ़ना

(7) कलश ढालना अथवा गढ़ना

(8) चौक पर लगने वाली पठाली (पत्थर की सिलें) ढालना अथवा गढ़ना।

डले अथवा कटवा पत्थर सामान्यतः कटवा पत्थर से बनने वाले मकानों के लिए ढाले जाते हैं। इसमें पत्थर की तीन ओर की पहलों को सीधा तराशा जाता है तथा ऊपरी हिस्से पर गहरी तथा उभरी रेखाएं खींची जाती हैं। छज्जे के लिए चार से छह हाथ लम्बी पठालियां (सिलें) ढाली जाती हैं। ये पठालियां भी तीन ओर से तराशी जाती हैं। ऊपर के हिस्से पर उभरी गहरी लकीरें खोदी जाती हैं। कहीं-कहीं इनके ऊपर चौकोर तथा गोल आकृति के चित्र भी बने हुए मिलते हैं। मकानों पर प्रायः 35 से 40 हाथ लम्बा छज्जा बनाया मिलता है। छज्जे के नीचे के कप तथा सीरे कहीं लकड़ी तथा कहीं पत्थर के बनाये मिलते हैं। कप, छज्जे की पठालियों से छोटे आकार की होती हैं तथा सीरा एक ही पत्थर को तराश कर बनाया जाता है। यह ऊपरी सिरे पर सपाट आगे गोल आकृति में बढ़ा हुआ और दीवाल से सटा हुआ कुछ चौड़े आकार का होता है। इस पर विविध प्रकार के रेखांकन किये जाते हैं। प्रायः देवी-देवताओं के चित्र अधिक होते हैं। वैसे सम्पूर्ण क्षेत्र में पत्थर के छज्जे, कप और सीरे मिलते हैं तो भी काष्ठ से निर्मित कप, सीरे और तीरे भी प्रायः पाये जाते हैं। इन पर पशु-पक्षियों से लेकर देवी-देवताओं के आकर्षक और लुभावने चित्र अंकित किये होते हैं। दरवाजे सामान्यतः लकड़ी के मिलते हैं लेकिन मन्दिरों पर प्रायः पत्थर के दरवाजे ढाले मिलते हैं। ये अलंकृत होते हैं लेकिन उतने नहीं, जितने कि काष्ठ के खम अलंकृत और आकर्षक पाये जाते हैं। मन्दिरों के कलश पूरी तरह पत्थर के होते हैं। इनके नीचे के थाले भी पत्थर से ही निर्मित होते हैं, जिन पर आकर्षक सजावट की गई मिलती है। पहाड़ में चौकों (आगे के आंगन) में पत्थर की पठालियां लगाने का रिवाज है। ये पठालियां कहीं साधारण आड़ी-सीधी रेखाओं से अंकित सपाट और कहीं कलात्मक ढंग से सजाई गोल एवं चौकोर

आकृतियों पर अलंकृत मिलती हैं।

मूर्तियां गढ़ने का यहां रिवाज नहीं मिलता है। ग्राम मन्दिरों में प्राय: अनगढ़ पत्थर ही, मूर्तियों के रूप में मिलते हैं। खासतौर से शिव जी के मन्दिरों में कहीं-कहीं कुछ तराशी गई मूर्तियां मिलती हैं। वैसे पहाड़ के मन्दिरों में प्राय: तीन तरह की मूर्तियां मिलती हैं-

(1) संगमरमर की मूर्तियां
(2) गुप्तकाल की मूर्तियों से मिलती-जुलती मूर्तियां
(3) स्थानीय कलाकारों द्वारा निर्मित मूर्तियां

संगमरमर की मूर्तियां अधिकतर जयपुर की बनी हैं। ये आकर्षक और कलात्मक हैं। ग्रामीण मन्दिरों में गुप्त काल की मूर्तियों से मिलती जुलती मूर्तियां मिलती हैं। ये मूर्तियां विविध प्रकार के देवी-देवताओं की हैं। गढ़वाल के विविध क्षेत्रों में गांव के खेतों से मिली इस तरह की प्राचीन मूर्तियां भी देवालयों में उपलब्ध होती हैं। स्थानीय तराशी गई मूर्तियों में खोदी गयी, उभारी गयी अथवा तराशी गयी मूर्तियां हैं। ये बड़ी संख्या में यहां के मन्दिरों में मिलती हैं। पूरे पत्थर को तराश कर बनायी गयी मूर्तियां अधिकतर शिव मन्दिरों में हैं। ये मूर्तियां प्राय: "नन्दा देवी" की हैं। ये सभी मूर्तियां कलात्मक हैं और सफाई के साथ "तराशी" गयी हैं।

काष्ठ कला :

काष्ठ के उपकरण तैयार करने और मकानों तथा साज-सज्जा के लिए लकड़ी की सामग्री तैयार करने वालों को यहां "मिस्त्री" कहा जाता है। काष्ठ-कार्य के दो स्तर हैं- (1) सामान्य और (2) विशेष। सामान्य स्तर के कार्यो में मकान सम्बन्धी लकड़ी के उपकरण, खेती सम्बन्धी औजार तथा गृह कार्य हेतु आलमारी से लेकर सान की सहायता से बनने वाले परोठे और कठौते इस श्रेणी में आते हैं। भवन सम्बन्धी उपकरणों में मोर संगाड़े-द्वार, खिड़की, सतीर-जंगला, निमदारी, खम, तिवारी, तिवारी के खम, पलेली, परोठा, परोठी, पाथा, माणा, हुक्का, साज, खाट, पाये, डांडी, सिराणीं, पैताणी, हल, निरूड़ा, जुवा, लाट, कूड, मैया, देदालु, मूंडी लाट, कुटले तथा दाथड़ी के बेंड़ आते हैं। सजावट के लिये विशेष वस्तुओं पर नक्काशी और पच्चीकारी की जाती है। गढ़वाल में पायी जाने वाली तिवारियों पर, नक्काशी के भव्य रूप अंकित मिलते हैं। काष्ठ कला में चित्रांकन के विविध रूप हैं -

(1) दरवाजों के ऊपरी हिस्सों पर अंकित, खोदी गयी उभारी मूर्तियां

(2) पकवान बनाने हेतु निर्मित रोट्टाने पर खोदे गये गहरे चौखट अथवा गोल चिन्ह

(3) दरवाजों की बाहरी चौखट, संगाड़ पर की गयी नक्काशी

(4) तिवारियों वे स्तम्भों पर की गयी नक्काशी

(5) कप, सीरा, तीरा पर की गयी नक्काशी

(6) दरवाजों तथा खिड़कियों पर की गयी खुदाई

(7) कंठौते, हुक्का, साज, चारपाई के पाये, पलंग और सिरहाने पर की गयी नक्काशी

(8) लकड़ी के खमों पर की गयी नक्काशी

(9) घर के दरवाजों के ऊपर और मन्दिरों के दरवाजों पर खोदी गयी तथा उकेरी गयी गणेश की मूर्तियां

(10) लकड़ी के मोर संगाड़ों के साथ दरवाजों पर बनायी गयी डिजाइनें, फूल-पत्तियां अथवा बेलनुमा आकृतियां

दरवाजों एवं खिड़कियां (आधुनिक ढंग के मकानों) पर की गयी नक्काशी के यहां आठ प्रचलित नमूने मिलते हैं। इन नमूनों में थोड़ा-बहुत विभेद पाया जाता है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में, दरवाजों एवं खिड़कियों पर अंकित चित्रों की निम्न विशेषताएं हैं -

(1) एक ही प्रकार की आकृतियों की पुनरावृत्ति

(2) एक ही प्रकार की आड़ी रेखाओं वाले चित्रों की भरमार

(3) एक ही प्रकार के उल्टे "स्वास्तिक चिन्ह" की बनावट के चित्र

(4) एक ही प्रकार के तारे की आकृति के चित्र

(5) एक ही प्रकार की चार पंखुड़ियां तथा दोनों ओर दो पत्तियां एवं बीच में एक फूल की बनावट का अंकन

(6) वृत्ति चित्रों की पुनरावृत्ति

(7) पूरे दरवाजे को ऊपर से नीचे तक मुख्यतः तीन भागों में बांटना

(8) पूरे दरवाजे को दायें से बायें चार, पांच तथा तीन भागों में विभाजित करना

(9) तिवारी के खमों पर विविध प्रकार की चित्रकारी

(10) विविध रंगों का प्रयोग यथा लाल, नीला, पीला, काला, हरा तथा हल्का गुलाबी।

बुनने की कला-

यह कला गढ़वाल में पेशेवर कला के रूप में मिलती है। इस पेशे से सम्बन्धित लोगों को यहां "कोली" कहा जाता है। सूत तथा ऊन दोनों ही तरह के वस्त्र बुने जाते हैं। वस्त्र "रॉच" पर तैयार किये जाते हैं। रॉंच स्थानीय ढंग का होता है और इस पर एक हाथ चौड़ी पट्टी तैयार होती है। कुछ वर्ष पूर्व कोलियों द्वारा बड़े पैमाने पर सूती वस्त्र तैयार किये जाते थे लेकिन आज रॉंच से वस्त्र बनाना प्रायः बंद है। रॉंच से (1) गलेप (2) कोट की पट्टियां और (3) पायजामे के लिए कपड़ा तैयार किया जाता था। गलेप स्त्रियों द्वारा धोती के रूप में प्रयोग किया मिलता है। इसे कपड़े की दो पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता था। बुनने की कला के अन्तर्गत ही ऊन का गलीचा, थुलमा, पट्टी तथा कमोटा बनाये जाते थे। ऊन और ऊनी वस्त्रों का निर्माण यहां आज भी गृह उद्योग के रूप में किया जाता है। सूती वस्त्र उद्योग प्रायः बंद मिलता है। ऊनी वस्त्रों के निर्माण के इनके करघे और काम करने के तौर तरीके यद्यपि पुराने हैं तो भी गलीचों पर नयी डिजाइनों की कमी नहीं है।

दर्जीगिरी-

दर्जीगिरी भी एक पेशेवर कला है। इसे समाज का एक वर्ग अपनाए है। इस वर्ग को यहां "ओजी" कहा जाता है। चूंकि यह एक वर्ग विशेष की पेशेवर कला है इसलिए लम्बे समय तक इसमें किसी तरह का कोई विकास और प्रसार नहीं हुआ है। वर्तमान में दर्जीगिरी को समाज के अन्य वर्गों ने भी अपना लिया है। इसलिए यह कला धीरे-धीरे एक उद्योग के रूप में पनप रही है। दर्जियों द्वारा निम्न वस्त्र तैयार किये जाते हैं-

(1) झगुली
(2) आँगुड़ी
(3) फतूई
(4) कोट
(5) सुलार
(6) कुर्ता
(7) वास्कट
(8) मिरजई

ये सभी परम्परागत पहनावे हैं। यद्यपि आज पाश्चात्य ढंग के वस्त्र भी सिले जाने लगे हैं लेकिन फिर भी इस कला में विस्तार की सम्भावनाएं कम हैं क्योंकि यह अपने रूढ़ रूप में यहां प्रचलित हैं।

आभूषण बनाने की कला :

आभूषण बनाने की कला को सुनारगिरी कहा जाता है। सुनार अथवा शाह लोग जनपद में आभूषण बनाने का कार्य करते हैं। यह कार्य यहां पीढ़ी दर पीढ़ी होता आया है, इसलिए इसमें बारीकी, खूबसूरती और अंकन की विशिष्टता मिलती है। प्रायः (1) सोने तथा (2) चांदी के आभूषण बनाये जाते हैं। बेलबूटे, डिजाइन, उभरी खोदी गयी आकृतियां और चित्रांकन की दृष्टि से सोने के स्थान पर चांदी के गहने अधिक उत्कृष्ट कला नमूनों के रूप में उपलब्ध होते हैं।

सोने के आभूषण :

(1) नथुली (नथ)
(2) बुलाक (बेसर)
(3) पौंछी
(4) फुल्ली
(5) गले की हंसली
(6) हार
(7) लटगंण
(8) चूड़ियां
(9) मुर्की
(10) मुंदड़ी (अंगूठी)
(11) मुरखला

चांदी के आभूषण :

(1) हंसली (खगोली)
(2) मुरखला

(3) धागुला

(4) पौंछी

(5) गुलबंद

(6) कड़ा

(7) धागुला (पैर के)

(8) लच्छा

(9) बुजनी

(10) हार

(11) पौटा

(12) माला

सोने और चांदी के गहने आर्थिक स्थिति के अनुरूप बनाये मिलते हैं। गरीब लोगों के नाक के अलावा शेष गहने चांदी के होते हैं। उपर्युक्त सोने और चांदी के गहनों पर कलात्मक चित्रांकन किया जाता है। इनमें उकेरी गयी आकृतियां बेल-बूटे और चौकोर तथा गोल आकृतियां उल्लेखनीय हैं। इन आभूषणों पर चित्रांकन का वही रूप मिलता है जो परम्परा से बाप-दादाओं द्वारा अपनाया गया है।

बिनने की कला :

बिनने को यहां बुनना भी कहा जाता है। बिनने की पेशेगत कला "रूड़ियागिरी" के नाम से विख्यात है। यह कला दो रूपों में मिलती है (1) पेशेवर कला के रूप में और (2) सर्वसाधारण द्वारा घेरलू उपभोग की वस्तुओं को बिनने के रूप में। रूड़िया जाति के लोग प्राय: बिनने का कार्य करते हैं। बांस तथा चाई से विविध प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती हैं। निर्माण की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं हैं-

(1) कोन्ना

(2) ठोपरा

(3) ठोपरी

(4) कंडी

(5) घेल्डा

(6) सेक्वा

(7) छाटण

(8) चटाई

बिनने की कला यहां पर एक छोटे उद्योग के रूप में प्रचलित है। बाँस और चाई के अतिरिक्त गेहूं के पौधों की डन्ठलों को भिगोकर भी अनेक घरेलू वस्तुएं तैयार की जाती हैं। ये वस्तुएं हैं (1) मांदरी (2) चटाई और बच्चों के टोप तथा टोकरियां। गेहूं की डन्ठलों से तैयार कच्चे माल को नलाई कहा जाता है। बिनने के अन्तर्गत ही स्वेटर बुनने की कला भी प्रचलित मिलती है। लेकिन इसे एक उद्योग के रूप में नहीं अपनाया गया है क्योंकि इन्हें तैयार करने में "मशीन" का भी उपयोग किया जाता है। कढ़ाई का काम भी होता है लेकिन स्वेटर बुनना और काढ़ना, बहुत कम और एक सीमित क्षेत्र में ही होता है।

बर्तन बनाने की कला :

बर्तन बनाने की कला "टमोटागिरी" के नाम से विख्यात मिलती है। यह एक पेशेवर कला है और अधिकतर टमोटा वर्ग के लोग इस उद्योग को आजीविका के अर्जन के लिए इस्तेमाल करते हैं। यह उद्योग बर्तन बनाने तक ही सीमित है। इन बर्तनों पर सामान्य उभरी आकृतियां और रेखाएं मिलती हैं। बर्तन प्राय: पीतल और तांबे से बनाये जाते हैं। प्रमुख बर्तन जो इनके द्वारा गढ़े जाते हैं वे हैं-

(1) गागर

(2) बंठा

(3) तौली

(4) फुल्टी

(5) डिगची

(6) टॉकि का काम

गागर तथा तौली तांबे की बनती है तथा बंठा, डिगची और पतेली पीतल की बनायी मिलती हैं। इस काम में ढालने तथा हथौड़े से पीटने की क्रिया अधिक होती है। इन बर्तनों पर सामान्य ढंग से रेखांकन ही किये जाते हैं। प्रभावी अंकन कम किये मिलते हैं।

लोहारगिरी :

यह एक प्रकार से छोटे पैमाने पर खेती के औजार बनाने का उद्योग है। सही अर्थो में यह भी एक परम्परागत पेशा है। विभिन्न प्रकार के यंत्र और औजार, जो इनके द्वारा बनाये जाते हैं, उनमें काष्ठ के उपकरण हैं -

(1) हल
(2) निसुड़ा
(3) लाट
(4) बांणा
(5) मय्या
(6) दंदाला
(7) कूड

इनके द्वारा लोहे को पीट कर निम्न औजार बनाये जाते हैं -

(1) बाणा
(2) कुटला
(3) दाथुड़ा
(4) थमाली
(5) घौंण
(6) कीले
(7) घरेलू उपभोग की सामान्य वस्तुएं

प्रायः इन औजारों पर किसी तरह के अलंकरण के लिए रेखांकन अथवा चित्रांकन नहीं किया जाता है।

मूर्ति बनाने की कला :

मूर्तियां अधिकतर पीतल की बनायी मिलती हैं। मूर्तियां आदमकद बहुत कम हैं। सिर्फ मुखौटे यानी सिर वाला भाग ही निर्मित किया गया है। ये आकृतियां क्षेत्रीय जनमानस स्त्री और पुरूषों के आकार से मिलती-जुलती हैं। इनमें कान, नाक, मुंह तथा आंखों को अधिक उभार दिया गया है। स्थानीय रंग और रचना कौशल के इन मूर्तियों में दर्शन होते हैं। रेखांकन सुस्पष्ट हैं तथा भावों की बखूबी अभिव्यक्ति की गयी है। ये मूर्तियां उत्कृष्ट कला की तुलना में किसी से कम नहीं हैं। स्थापत्य कला दो रूपों में उपलब्ध है यथा -

(1) भवन निर्माण कला

(2) मन्दिर निर्माण कला

भवन निर्माण कला के भी दो रूप हैं। सामान्य भवन निर्माण में ये लोग डिंडाली, पॉंडी, ओबरी तथा भुमंडी वाले मकानों का निर्माण करते हैं। सामान्य से भिन्न निर्मित भवनों में "तिवारी" निर्माण है। इसमें दो मंजिले से लेकर तीन मंजिले भवन तिवारी सहित बनाये जाते हैं। साधारण रूप से निर्मित भवन यहां पॉंडी-ओबरी और भुमडे मिलते हैं। इनमें एक अथवा दो कमरे होते हैं। गांवों में अधिकतर पॉडी-ओबरी ही देखने को मिलती हैं। पॉडी-ओबरी प्रायः दो मंजिली होती है। तीसरी तरह के मकान डिंडाला और बंद मकान होते हैं। डिंडाला दूसरी मंजिल के कमरों के आगे बढ़ाया गया दालान है। बंद मकानों के डिंडालों के आगे छज्जा होता है। पूरे का पूरा डिंडाला बंद होता है तथा आगे की ओर छज्जे पर दरवाजे खुले होते हैं।

तिवारी पर सात से नौ तक खम (स्तम्भ) होते हैं। इन खमों पर उत्कृष्ट नक्काशी की गयी मिलती है। बंद मकानों पर खमों के स्थान पर आगे बंद करके दरवाजे निकाले जाते हैं जिसके आगे छज्जा निर्मित किया जाता है। सामान्य डिंडालों पर छज्जा नहीं होता है। कहीं-कहीं लकड़ी के खम अवश्य देखने को मिलते हैं। भुमडों को छान भी कहा जाता है। ये जानवरों के रहने के लिए बनाये जाते हैं। तिवारी धनी लोग ही बना पाते हैं। तिवारी पत्थर के तराशे गये डलों से निर्मित की जाती है। ऐसी तिवारियों में चार से लेकर छः तक कमरे ऊपरी मंजिल से निचली मंजिल तक बने होते हैं। तिवारी

पहाड़ की भवन निर्माण कला का प्राचीनतम रूप है। इसके पत्थरों तथा लकड़ी के सामानों को विशेष प्रकार की आकर्षक नक्काशी से सजाया जाता है। नक्काशी और चित्रकारी के अद्‌भुत नमूने यहां देखने को मिलते हैं। लेकिन छज्जों की ओर लोगों का झुकाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। आजकल बनने वाले दो मंजिले, तीन मंजिले मकानों पर चारों ओर नीमदारी तथा जंगला लगाने का रिवाज बढ़ता जा रहा है। निर्माण के तरीकों में अपेक्षाकृत सुधार हो रहा है ओर लिण्टर का प्रयोग किया जाने लगा हे ।

मन्दिर निर्माण :

मन्दिर निर्माण में तीन शैलियों का यहां विकास हुआ मिलता है। ये शैलियां हैं-

(1) नागर शैली

(2) स्थानीय राजाओं द्वारा निर्मित मन्दिरों की शैली

(3) स्थानीय लोगों द्वारा निर्मित शैली

(4) नरसिंग, नागराजा और ग्राम देवताओं के भुमंडे

स्थानीय देव मन्दिर ही यहां की मन्दिर निर्माण शैली के जनक हैं। ये प्रायः चारदीवारों से बने छोटे आकार के होते हैं। इन पर छोटी-छोटी बल्लियां रखकर छवाई की जाती है। इनकी ध्वजा ऊँचे बांस के डन्डे पर फहराती रहती है। स्थापत्य कला की दृष्टि से ये स्थानीय भुमडों से मिलते-जुलते हैं। इन मन्दिरों के आगे घण्टे टगे मिलते हैं। स्थानीय लोगों द्वारा निर्मित मन्दिरों का निर्माण चार पहलदार दीवारों द्वारा किया जाता है। इनके नीचे उठा हुआ प्लेटफार्म होता है। यह जमीन से 3 से 4 फुट ऊँचा होता है। इस प्रांगण के ऊपर मन्दिर बनाया मिलता है। इन मन्दिरों की ऊपरी छत, पत्थरों की चार पहल द्वारा ऐसे तैयार की जाती है कि ऊपरी हिस्सा आर-पार पूरी तरह लम्बी पठालियों से छाया रहता है। कलश तीन थालों के ऊपर रखे मिलते हैं। थाले गोल आकार के कलात्मक होते हैं। इन मन्दिरों के आगे छोलदारियां भी बनी होती हैं। मन्दिर, जहां तक सम्भव है अंदर तथा बाहर से कलात्मक ढंग से सजाये जाते हैं। ये मन्दिर प्रायः शंकर और जगदम्बा के होते हैं। जगदम्बा के मन्दिरों में शिलाएं अधिक होती हैं, मूर्तियां प्रायः होती ही नहीं हैं। शिव मन्दिरों में शिवलिंग के साथ पार्वती तथा गणेश की संगमरमर की मूर्तियां मिलती हैं। नन्दी की मूर्तियां प्रायः अनगढ़ पत्थरों की होती हैं तो भी कहीं-कहीं स्थानीय शिल्पकारों द्वारा निर्मित सुन्दर मूर्तियाँ भी पायी जाती हैं। गढ़वाल के राजाओं द्वारा निर्मित मन्दिर दक्षिण भारतीय शैली और उत्तर की गढ़वाल शैली का मिश्रित रूप हैं। आकार में ये

मन्दिर विशाल हैं। सभी ऊँचे चबूतरो पर निर्मित हैं। इनके मुख्य दरवाजे के आगे छोटी जलेटी अथवा छोलदारियां निर्मित मिलती हैं। मन्दिर तीन खण्ड (प्रकोष्ठ) वाले हैं। तीसरे प्रकोष्ठ में मूर्तियां स्थापित मिलती हैं। ये मन्दिर नीचे से चौड़े और ऊपर की ओर संकरे पहलदार हैं। निर्माण में पत्थर की बड़ी शिलाओं का उपयोग किया गया है। बाहरी आवरण पर विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां अंकित हैं। इन बड़े मन्दिरों के साथ अनेक छोटे आकार के मन्दिर प्रांगण में निर्मित किये गये हैं। ये मन्दिर गढ़-नरेशों के कुल देवता अथवा सिद्ध पीठों के हैं। इन मन्दिरों पर की गयी नक्काशी और किया गया चित्रांकन लोक कला की अद्भुत थातियां हैं।

नागर शैली के मन्दिर ऋषिकेश से लेकर श्री बदरीनाथ और केदारनाथ, तुंगनाथ, भदमदेश्वर और नीती तथा माणा घाटी में निर्मित हैं। इन मन्दिरों के बारे में यहां यह प्रचलित है कि इन्हें स्वामी श्री शंकराचार्य जी ने एक ही रात में, उत्तराखण्ड से बौद्ध मत को, समाप्त करने के लिए निर्मित किया था। ये सभी मन्दिर -

(1) विशाल
(2) दृश्यांकन में भव्य
(3) बड़ी-बड़ी शिलाओं से निर्मित
(4) मुख्य द्वार के आगे छोलदारी वाले
(5) ऊपरी हिस्से में बुर्ज का आकार
(6) बुर्ज पर दुहरी छतरी की छत
(7) तिखण्डे (तीन प्रकोष्ठों वाले)
(8) बाहर देवी-देवताओं के खुदे चित्र
(9) बड़े मन्दिर के साथ अनेक छोटे मन्दिर
(10) सभी के आकर-प्रकार में एकरूपता
(11) वैष्णव धर्म के शुभ चिह्नों से अंकित हैं।

इन मन्दिरों के अन्दर स्थापित मूर्तियां कहीं शिलाओं के रूप में हैं तो कहीं आदमकद पत्थर अथवा संगमरमर की तराशी गयी मूर्तियां हैं। मुख्य मूर्तियां प्रायः शिलाओं से तराशी गयी हैं। गंगा धारा से लेकर बदरी के कांठे तक तथा उधर यमुना और भागीरथी तथा भिलंगना की उपत्यकाओं में ये मन्दिर

बड़ी संख्या में मिलते हैं। ये मन्दिर उत्तराखण्ड में सनातन धर्म के प्रसार और प्रचार के माध्यम रहे हैं।

ललित कला :

ललित कला के क्षेत्र में "गढ़वाल स्कूल आफ पेंटिंग" गढ़वाल की विख्यात शैली है। इस शैली के जन्मदाता मौलाराम थे। ये श्रीनगर गढ़वाल के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् 1743 में हुआ था। श्री मौलाराम का परिचय 1769 में कांगड़ा शैली से हुआ और तभी से ये पहाड़ी परिपाटी के चित्र बनाने लगे थे। ललित कला के क्षेत्र में गढ़वाल को मौलाराम की "गढ़वाल स्कूल ऑफ पेंटिंग एक अनोखी देन है। बैरिस्टर श्री मुकन्दी लाल को श्री मौलाराम को प्रकाश में लाने का श्रेय है। बैरिस्टर श्री मुकन्दी लाल के कारण ही बाहरी दुनियां के लोग इस शैली से परिचित हुए।

चित्रांकन की कला :

गढ़वाल में पायी जाने वाली सामान्य चित्रांकन की कला को हम निम्न भागों में विभक्त करते हैं -

(1) सामान्य रूप इसके अन्तर्गत मकानों को सजाने के जनपदीय तौर-तरीके और उन पर किया गया रेखांकन है।

(2) धार्मिक स्वरूप इसमें शुभ चिह्नों से लेकर विवाह-शादियां में की गयी चित्रकला आती है।

(3) आनुष्ठानिक स्वरूप इसमें धार्मिक कार्य जन्म, विवाह, सामान्य धार्मिक जीवन, विशेष त्योहार, पर्व और मृत्यु संस्कारतक केकिये गये चित्रांकन है। ये आनुष्ठानिक चित्रांकन होते हैं।

(4) शरीरांकन का स्वरूप इसके अन्तर्गत शरीर के अलंकरण हेतु गुदाये गये गुदने और अन्य चित्रांकन आते हैं।

चित्रांकन की तीन विकसित शैलियां यहां उपलब्ध होती हैं यथा (1) मूल शैली (2) लकड़ी पर रंगों का प्रयोग वाली शैली और (3) आधुनिक मकानों पर आधुनिकतम चित्रांकन। मूल शैली ही यहां की परम्परागत शैली है जो पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही है। रंग के रूप में कमेड़े का उपयोग सजाने के लिए किया जाता है। इससे मकानों के दरवाजों, ताखों तथा आलमारियों के चारों ओर, तीन ओर तथा कभी-कभी केवल ऊपरी भाग पर दांये-बांये कमेड़े के टुपके बारे जाते हैं। ये टुपके (बिन्दियां) दो अथवा तीन लाइनों के होते हैं। ये सजावट सभी जगह और सभी स्थानों में मिलती है। धन-धान्य के लिए शुभ चिह्न बनाये जाते हैं। "श्री" तथा स्वास्तिक चिह्न अधिक पाये जाते हैं। चावल के पीठे से मातृकाओं और नवग्रहों का रेखांकन किया मिलता है। लकड़ी पर रंगों के प्रयोग में खंभों पर लाल, नीला, पीला, हरा, गुलाबी एवं काला रंग प्रयोग में लाया जाता है। आधुनिक तरीकों से निर्मित मकानों पर आधुनिकतम नयी डिजाइनों का उपयोग किया जाता है। विवाह-शादी और अन्य शुभ कार्यो में प्रयुक्त शुभ चिह्न निम्नवत् हैं -

(1) स्वास्तिक
(2) कन्या अथवा सुहागन का जल से भरा लोटा लिए खड़ा रहना
(3) बंदरमाला-आम और पीपल के पत्तों की माला
(4) पीला कपड़ा, जिसके बीच में सुपारी, हल्दी अक्षत तथा मिठाई (रोली) की पोटली बंधी होती है।
(5) कलश
(6) केला-कुलाई
(7) दही परोठी
(8) जौ-तिल का भरा पाथा और उसके ऊपर जलती जोत
(9) पिठाई (रोली)
(10) ढोल-दमौं (ढोल और दमावा)
(11) जौ की हरियाली

इन शुभ चिह्नों में स्वास्तिक को लोग दरवाजों तथा पूजा स्थान पर अंकित करते हैं। विवाह के अवसर पर बंदरमाला, केला-कुलाई तथा वेदी पर आनुष्ठानिक चित्रांकन किये जाते हैं। थापगे

विवाहों में बारे जाते हैं। लड़के की शादी पर ऊपरी मंजिल के कमरे तथा लड़की की शादी पर नीची मंजिल के कमरे में थापगा स्थापित करने की प्रथा है। नवग्रहों की शांति के लिए नवग्रहों से युक्त चौकला बनाया जाता है। यहां जौ और झंगोरे से भरे पाये के ऊपर कलश तथा दीप प्रज्जवलित रहता है। थापगे के चित्रांकन हैं-

(1) हाथ के पांच छापे
(2) पीठे की आठ लकीरें
(3) घी की आठ धाराएं
(4) बांये तथा दायें सूत की रंग बिरंगी नालियां चिपकायी जाती है।
(5) ये रेखाएं और धाराएं थापके वाले स्थान पर होती हैं और कलश की दायीं-बायीं ओर बनायी जाती हैं।

इस तरह लोक चित्रांकन में थापगे पर वर और कन्या के दोनों हाथों के पांच-पांच निशानों के अतिरिक्त गजालें (मूसल) पर भी हाथों के चिह्न अंकित किये जाते हैं। संपुट पर भी विविध प्रकार के चित्रांकन करके उसे चित्राकर्षक बनाया जाता है। इन अंकनों में शुभ चिह्न सम्मिलित किये जाते हैं।

आनुष्ठानिक चित्रांकन :

पौरवात्य पद्धति का यह कर्मकाण्डी चित्रांकन है। यह चित्रांकन हर एक मांगलिक कार्य में किया जाता है। इस पद्धति में चौकले पर किये गये चित्रांकन-रेखांकन विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। आनुष्ठानिक अंकन निम्नलिखित अवसरों पर किये जाते हैं-

(1) विवाह
(2) जनेऊ
(3) जन्म-संस्कार
(4) नामकरण संस्कार
(5) व्रतों के पूजन
(6) त्योहारों
(7) पर्वों
(8) धार्मिक कृत्यों

ये समस्त प्रकार के धार्मिक कृत्यों के पूरा करने हेतु किये जाते हैं। इसमें पंचाङ्ग. पूजन, अष्टदल पूजन तथा गौरादि षोडश मातृकाओं का पूजन विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उपर्युक्त मांगलिक अवसर के अलावा नवरात्र और बलि में चक्र चित्रांकन और पूजन किया जाता है।

शरीरांकन की चित्रकारी :

शरीरांकन के लिए की गयी चित्रकारी को हम दो भागों में बांटते हैं (1) सामाजिक अवसरों, व्याह-शादियों में किया जाने वाला चित्रांकन और (2) सौंदर्य हेतु प्रयुक्त उपकरण। शरीरांकन में बौर वारना, पैरों पर आल्ता लगाना, हाथों पर मेहंदी लगाना, और पीले रंग से उबटन से नहाना शुभ माना जाता है। सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए पुरूष (1) कानों पर मुर्की तथा (2) हाथों पर धागुले पहनते हैं तथा स्त्रियां पैरों पर (1) रोली और (2) हाथों पर मेहंदी लगाती हैं। गोदना, गोदना भी पुरूषों तथा स्त्रियों द्वारा समान रूप से किया जाता है।मेहंदी के बेलबूटों में वैविध्य की विचित्रता पायी जाती है। महिलाएं सौंदर्य के लिए गोदने में ढोढ़ी पर तीन टुपके, एक ऊपर तथा दो नीचे गुदवाती हैं। बीच का टुपका प्राय: बड़ा होता है। गात स्त्रियां तथा मर्द समान रूप से गुदवाते हैं। हाथों पर पुष्पाकृति अंकित कराना तथा अपना नाम गुदवाना भी सामान्य रिवाज है। गोदने का कार्य कांटों से भी किया जाता है तथा रंग के लिए इन गुदे हुए छेदों पर आक का रस डाला जाता है।

अध्याय - 8

गढ़वाली रंग-मंच

गढ़वाली लोक नाट्य रंगमंच दो भागों में विभक्त मिलता है (1) धार्मिक तथा (2) सामाजिक अथवा लौकिक। धार्मिक के अन्तर्गत धर्म और धार्मिक भावनाओं से प्रभावित एवं उन पर आधारित समस्त प्रकार की अभिव्यक्तियां आती हैं। इनके प्रायः दो रूप उपलब्ध हैं। (1) राम की चरित्र लीला अथवा राम लीला और (2) कृष्ण की चरित्र लीला अथवा कृष्ण लीला-रासलीला । रासलीला की तुलना में रामलीला का गढ़वाली रंगमंच पर सर्वाधिक प्रभाव है। रामलीला ही गढ़वाली रंगमंच का प्रतिनिधिकारी स्वरूप है। रामलीला के साथ पौराणिक नाटकों का दूसरे स्थान पर सर्वाधिक मंचीकरण हुआ है। पौराणिक नाटकों में (1थ) अभिमन्यु नाटक (2) कृष्ण जन्म नाटक (3) हरश्चिन्द्र नाटक (4) ध्रुव नाटक (5) प्रहलाद नाटक (6) श्रवण कुमार नाटक तथा श्री कृष्ण नाटक के साथ उर्दू मिश्रित हातिम ताई और रूस्तम जैसे नाटक खेले जाते हैं। सामाजिक अथवा लौकिक अभिव्यक्तियां अपने स्वरूप की विविधता के साथ तीन भागों में विभक्त मिलती हैं। पहला रूप है स्वांग, दूसरा है बच्चों का अनुकरण तथा तीसरा है विविध पात्रों के कथोपकथन। स्वांग शैली के (1) व्यवसायी और (2) अव्यवसायी दो रूप मिलते हैं। व्यवसायी स्वरूप का सीधा सम्बन्ध यहां की बादी जाति से है। ये लोग जीविकोपार्जन के लिए व्यवसायी प्रस्तुतियों का आयोजन करते हैं। इन लोगों ने गढ़वाली मंच को एक परम्परागत मौलिक शैली दी है। इनके स्वाँग-बादियों के स्वांग गढ़वाली के नाट्यों की आदि जन्मदात्री शैली है। इस शैली के भी दो रूप हैं यथा (1) बादी नाच शैली और (2) स्वाँगों की नाट्य प्रस्तुति शैली।

: बादी नाच शैली के अन्तर्गत बादी-बादीण (बादी की पत्नी) द्वारा प्रस्तुत लोक नृत्य आते हैं और स्वांग शैली के अन्तर्गत स्वाँग यानी नाट्यों की जनपदीय शैली मिलती है। इसमें अनेक प्रकार के स्वाँग-नाट्य मिलते हैं। गढ़वाल में पाये जाने वाले नाटकों के आदि के ये ही स्वांग हैं, जिससे इन नाटकों का विकास हुआ है। स्वांग अनेक रूपों में उपलब्ध हैं। इनके प्रस्तुतिकरण की शैली भी अपनी विशिष्टता के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय और जन समाज द्वारा चाही गयी है। अव्यवसायी मंच से तात्पर्य नकल की प्रवृत्ति से है। इन नकलों में गढ़वाल में (1) बच्चों की नकल तथा (2) नाटकों के प्रस्तुतिकरण के बीच दो या दो से अधिक पात्रों द्वारा अभिनीत व्यंग्य, प्रहसन अथवा स्थानीय बोली की 'जोकरिंग' हैं। इस जोकरिंग को मनोरंजन अथवा कटाक्ष के लिए दो अथवा दो से अधिक पात्र, नाटक के मंचन के बीच, प्रस्तुत करते हैं। बच्चे एक

ओर जहां स्वाँगों अथवा नाटको की नकल उतारते हैं वहीं वे अव्यवसायी लोगों द्वारा प्रस्तुत सामाजिक स्थितियों पर नकल उतार कर कटाक्ष भी करते हैं। प्रायः यह देखने को मिलता है कि रामलीला जैसे धार्मिक अभिनय को बच्चे बड़ी दिलचस्पी से देखते हैं और रामलीला समाप्ति के पश्चात् खेल-खेल में उसकी नकल उतारते पाये जाते हैं।
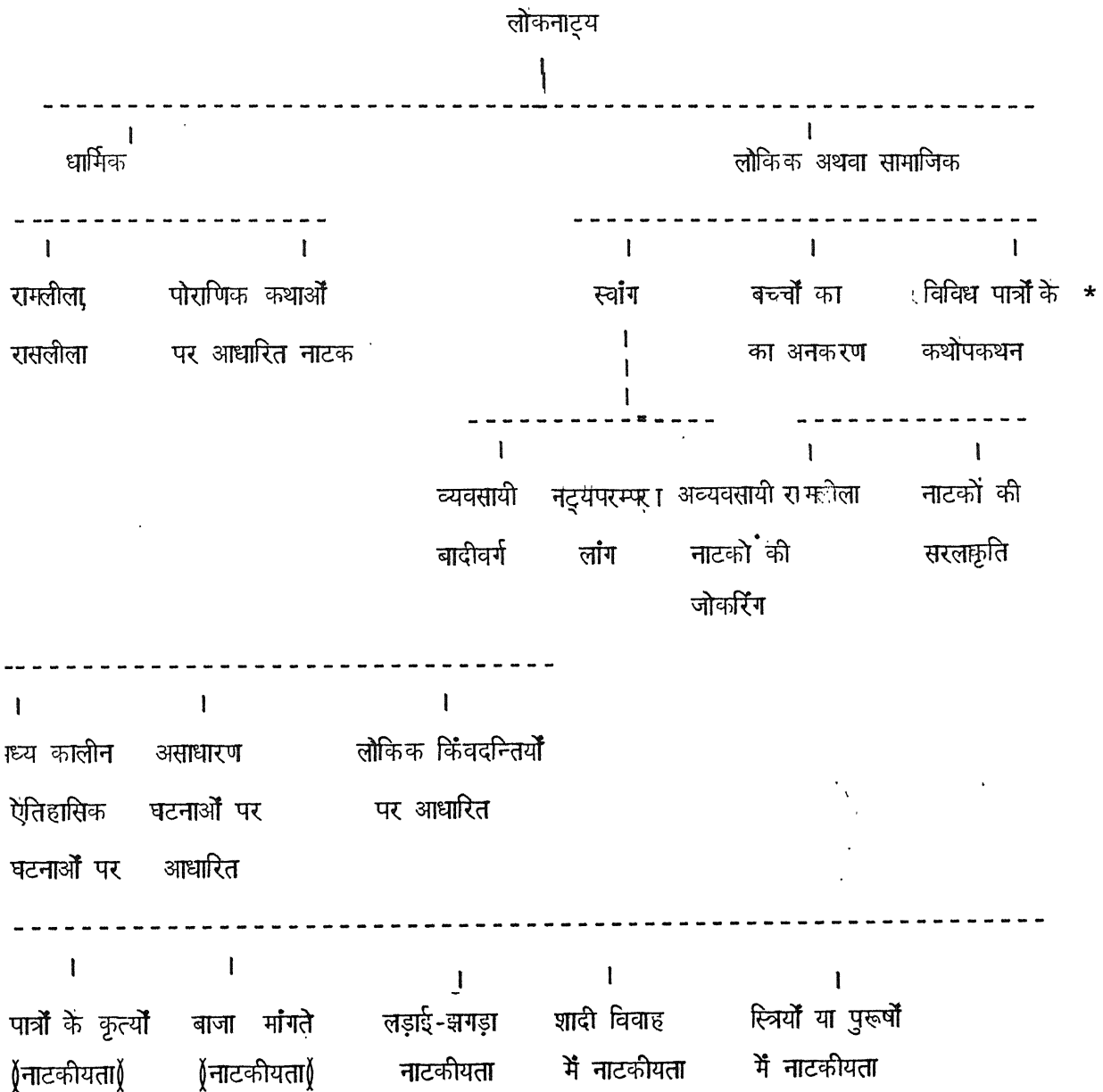
गढ़वाली लोक नाट्यों का वर्गीकरण :-

मंचीय दृष्टि से गढ़वाली रंगमंच के विशेष अंग हैं, (1) मंच, लोक रंगमंच (2) कथानक, (3) पात्र, (4) विशिष्ट पात्र, (5) भाषा, (6) लोक विनोद का सूचक हास्य, (7) संगीत, (8) अभिनय शैली, (9) चरित्र-चित्रण और (10) लोकवाणी। गढ़वाली लोकधर्मी मंच की सीमित स्थिति और स्थानीय रंग की प्रचुरता के बावजूद भी इसमें चरिच-चित्रण कार्य कुशलता से निभाया मिलता है। रामलीला और पौराणिक नाटकां में उनके नायक-चरित्रों की जानीमानी विशेषताओं को प्रस्तुत किया जाता है। चूँकि इनके आंगिक और वाचिक अभिनय में झटकेदार अभिनय की अधिकता रहती है इसलिए इसमें सूक्ष्म मनोभावों और दशाओं की अभिव्यक्ति कम होती है। पात्र, सांकेतिक अभिनय, अथवा हाव-भाव द्वारा, सम्बन्धित पात्र के चरित्र को प्रस्तुत करते हैं। स्त्रियां, प्रायः मंच पर नहीं आती हैं। पुरूष सभी पात्रों का अभिनय प्रस्तुत करते हैं। इसमें स्त्रियोचित लालित्य, लावण्य और कमनीय भावाभिव्यक्तियों की कमी पायी जाती है। नायक, दुष्टों अथवा खलनायकों के चरित्र का बखान करते हैं। इस तरह नायक खलनायक के दुर्गुणों का बखान करके, जनता की अपने प्रति श्रद्धा की भावना अर्जित करता है। इन मंचों पर प्रस्तुत लोक नाट्यों में स्थानीय विश्वास, रीतिरिवाज, धर्म और जीवन से सम्बद्ध मान्यताओं का पूरा चित्र होता है। इनकी भाषा लोक की भाषा और इनके कथानक, संवाद, पात्र, चरित्र, संगीत और मंचीय सज्जा पूरी तरह लोक विश्वासों की देन होती है। इसमें वही अभिव्यक्त होता है जो लोक के व्यक्त-अव्यक्त जीवन में जुड़ा हुआ मिलता है। इनकी भाषा में लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग किया मिलता है। स्वाँगों में रहस्यपूर्ण ढंग से हंसाने वाले वाक्यों और बादी-बादीण की फूहड़ अभिव्यक्तियों को सुनकर लोग मंद-मंद मुस्कुराते मुँह दबाये आनन्द लेते हैं। ये स्त्री-पुरूष (दर्शक) कुछ देर के लिए उन्हीं के रंग में रंग जाते हैं। इस तरह इनमें लोक मानस के हंसने-राने से लेकर सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के सभी विश्वास, संगीत-नृत्य, गीत अभिव्यक्तियां अनुभूति की समस्त दशाएं, हास-परिहास और सामूहिक रंग-उमंग से नैकट्य है। जो लोक है वही अभिव्यक्त हुआ है इन गढ़वाली मंचों पर। अतः लोकवार्ता के अन्तर्गत जो कुछ भी होता है और हो सकता है, वह इन मंचों पर अभिव्यक्त मिलता है। अतः लोक प्रवृति के इस स्वरूप का जो नैकट्य यहाँ उपलब्ध है और अभिव्यक्त है, उसे ही हम लोक भावों का सम्पूर्ण समावेश कह सकते हैं।

(1) **लोकनाट्य-रामलीला-** गढ़वाली लोकनाट्य में रामलीला का सर्वाधिक महत्व है। यह जनपदीय लोक नाट्य मंच की एक महत्वपूर्ण प्रस्तुति है। यह माना जाता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल (1375) के राम कथा के सर्जक तुलसी की रामायण के बाद ही इसका सृजन हुआ होगा और

तभी से यह वीर चरित्र वीर पूजा के रूप में गढ़वाली लोक नाट्य मंच पर आये हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि तुलसी के पूर्व राम कथा नहीं थी तो भी राम चरित तो बाल्मीकि की संस्कृत कृत का मूल आधार रहा है। राम चरित तो लोक पूजनीय और सर्वत्र व्याप्त ही था । तुलसीकृत रामायण राम चरित मानस के बाद तो निस्संदेह राम की यह कथा हिन्दी के साथ, अनेक भाषा भाषी और उपबोलियों के मंचों पर प्रस्तुत होने लगी। राम कथा का यह रूप क्षेत्रीय परिस्थितियों और स्थानीय रंग में रंगा है। इस कथा को एक विशिष्ट मंच पर गढ़वाल में प्रस्तुत किया जाता है । मंच का यह विधान पूरे गढ़वाल में सार्वभौम रूप में एक ही तरह का मिलता है। **मंच-** यह मंच सामान्यतः 15 से 20 फुट चौड़ा, 20 से 30 फुट लम्बा और लगभग 20 फुट ऊंचा होता है। मंच तीनों ओर से ढंका मिलता है। इस प्रदेश के साधारण मंच परभी प्रथम तथा द्वितीय मंच की व्यवस्था होती है। द्वितीय मंच के पीछे अथवा बगल में साज-सज्जा गृह बनाया मिलता है। इस साज-सज्जा गृह में अभिनेता सजते-संवरते हैं। यह मंच यवनिकाओं द्वारा दो भागों में विभक्त होता है। मुख्य यवनिका के बाद प्रथम मंच पर और द्वितीय यवनिका तथा द्वितीय मंच के बाद, प्रथम यवनिका टांकी मिलती है। मुख्य यवनिका में दोनों ओर बगल में पखवाड़े लगाये जाते हैं। प्रथम मंच के आगे खुला रंग मंच अथवा रंगभूमि होती है। इसके ऊपर बड़ी चाँदनी (चन्दोया) से इसे ढक दिया जाता है। रंगभूमि में ज्यादातर युद्ध अथवा नाट्य प्रस्तुति में आने वाले बड़े दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं यथा धनुष-भंग, गंगापार, श्री राम-रावण युद्ध के साथ अन्य युद्धों और दरबारों के दृश्य । रंगभूमि के एक ओर वाद्य यंत्र वादक बैठते हैं तथा दूसरी ओर अशोक वाटिका बनायी मिलती है। खुले रंगमंच के दायें-बायें तथा सम्मुख दर्शकगण बैठते हैं। इसी मंच से कुछ दूरी पर लंका बनायी जाती है। पखवाड़ों पर दायें-बायें विभिन्न देवी देवताओं के चित्र टांके जाते हैं। मुख्य यवनिका के बाद द्वितीय यवनिका तथा प्रथम यवनिका पर राज दरबारतथा जंगल-दृश्य अंकित मिलते हैं। नाट्य परम्परा के बदले मंगलाचरण प्रस्तुत किया जाता है। बड़े दृश्य, विविध प्रकार के संवाद, युद्ध, सभाएं तथा सीताहरण और लंका के दृश्य, खुले रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाते हैं। 'सीटी' के निर्देश पर मुख्य यवनिका खोली तथा बंद की जाती है। इसे 'सीन ड्राप' कहते हैं जिसमें मुख्य यवनिका बंद रहती है। दृश्य के चलते रंगमंच पर प्रवेश वर्जित होता है। परिस्थिति के अनुकूल विविध प्रकार के पर्दों का उपयोग किया जाता है। लम्बे सम्वाद प्रायः खुले रंगमंच पर ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

कथानक-

रामलीला में प्रायः राम चरित मानस का कथानक नाट्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह कथानक पद्य में, गेय रूप में, प्रस्तुत किया मिलता है। इसमें रावण की तपस्या, रामजन्म, राम विवाह, वनवास, भरत मिलाप, सीताहरण और राम-रावण युद्ध के उपरान्त राजगद्दी राज्याभिषेक तक की कथावस्तु

होती है। इस तरह रामजन्म से लेकर रावण-मरण और लंका-दहन तथा पुनः राम के राज्याभिषेक तक लीला अभिनीत की जाती है। कथानक दर्शकों के मन में रचाबसा होता है इसलिए इसके घटनाक्रम और दर्शकों की अनुभूतियों का तारतम्य बना रहता है। दर्शक की उत्सुकता बनी रहती है। पात्र- प्रायः जाने-पहचाने और पूर्व परिचित होते हैं। यथा राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, दशरथ कैकेई, रावण-कुम्भकरण और मेघनाद। पात्रों के प्रति दर्शकों के मन में संचित श्रद्धा होती है। वे जितने राम के प्रति श्रद्धावान होते हैं उतने ही रावण के प्रति भी होते हैं। स्त्री पात्रों का अभिनय प्रायः पुरूष ही करते हैं। राम के मर्यादा पुरूषोत्तम स्वरूप, सीता के जगत जननी पूजन स्वरूप और हनुमान की भक्ति तथा भरत के भ्रातृप्रेम की प्रभावी प्रस्तुत की जाती है। भले और बुरे दोनों ही प्रकार के चरित्रों की अमिट छाप जनमानस के हृदय में अभिव्यक्त मिलती है। **कथोपकथन-** कथानक, पद्यात्मक संवाद शैली में प्रस्तुत किये जाते हैं। गेयरूप में दोहा, चौपाई और रागरागिनी भी प्रस्तुत की जाती हैं। गद्य-संवादों का प्रायः अभाव मिलता है। पद्यात्मक गेयता में रागात्मक तारतम्य का मिश्रण पाया जाता है। कथोपकथनों की स्वरिक अभिव्यवित दृश्य और परिस्थिति के अनुकूल कठोर और करूण, लालित्यमय, वीभत्सता व रौद्रता लिए मिलती है। ये संवाद गेयता लिए पद्यात्मक कथन हैं। **अभिनय-** अभिनय में आंगिक और वाचिक दोनों ही प्रयुक्त हुये मिलते हैं। अभिनय में कथ्य के अनुरूप भावाभिव्यक्ति मिलती है। जैसा पात्र, वैसा अभिनय होता है। स्त्री पात्रों के अभिनय में पुरूष पात्र सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति और संवेदनशीलता लानेकी चेष्टा करते हैं। इनके अभिनय में मार्मिक संवेदनशीलता होती है। परशुराम-लक्ष्मण संवाद में, पात्रोचित शूरता वीरता और शौर्य तथा रावण के अभिनय में अहंकार का अहं स्वरूप मिलता है। आगिक अभिनय में, अंगों के संचालन में काफी उछल-कूद होती है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद में गुस्से की फड़फड़ाहट तो राम के अभिनय में शीलता और शालीनता का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। **भाषा-** राम चरित मानस की भाषा में ही, रामलीला प्रस्तुत की जाती है। इसके दोहा, चौपाई, राग और रागनियों की भाषा मधुर और रसयुक्त लगती है। गढ़वाल में पं. राधेश्याम कृत रामायण को राधेश्यामी रामायण की तर्ज पर गाने की प्रथा है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग होता है। गैर पढ़ा-लिखा समाज भी रामायणकी अवधी को खूब समझता है, इसे हृदयंगम करता है। **संगीत-** संगीत के लिए हारमोनियम के साथ, तबला तथा ढोलक का अधिक उपयोग किया जाता है। राग-रागनिया, राधेश्याम तर्ज में संगीत के तालबद्ध नियमों से आबद्ध मिलती है। प्रस्तुतियां संगीत शास्त्र के नियमानुकूल प्रणीत होती है। **विशेष पात्र-** संस्कृत नाटकों के विदूषक की तरह तो नहीं लेकिन कुछ उसी तरह रामलीला का यह पात्र,

पात्र नहीं विशेष पात्र होता है। यह पात्र अंग्रेजी का प्रोम्टर, यहाँ का व्यवस्थापक वक्ता अथवा आगामी कार्यक्रम अथवा प्रस्तुति के बारे में बताने वाला और पिछली प्रस्तुति की आख्या प्रस्तुत करने वाला और आगे की लीला का परिचय दर्शकों को देने वाला व्यक्ति है। इसे हमने रामलीला का विशेष पात्र कहा है। विदूषक की तरह यह अभिनयपूर्व हंसाने का काम तो नहीं करता लेकिन आगे मंचित की जाने वाली लीला के बारे में सूचना अवश्य देता है। जब भी पात्र अपना कथोपकथन भूल जाते हैं तो यह विशेष पात्र, धीमी और दबी आवाज में पात्रों को उनके कथोपकथन बताता चलता है। इसकी वेशभूषा भी साधारण ढंग की होती ह, पात्रों जैसी नहीं और इसी के निर्देश पर मंच का परदा उठाया अथवा गिराया जाता है। **मंगलाचरण-लीला** का प्रारम्भ मंगलाचरण द्वारा आरती उतार कर किया जाता है। मंगलाचरण के बाद यह विशेष पात्र व्यक्ति अथवा व्यवस्थापक अथवा प्रौम्टर, दर्शकों के सामने पूर्व प्रस्तुत लीला के विषय में वार्तालाप करता हुआ, वर्तमान में प्रस्तुत की जाने वाली लीला का परिचय दर्शकों को देता है। वह बताता है कि अब वह लीला प्रस्तुत की जा रही है और इसके पश्चात् लीला प्रारम्भ हो जाती है। यह विशेष पात्र पद्य के स्थान पर प्रायः गद्य का उपयोग अपने वार्तालापमें करता है।

साजसज्जा-वेशभूषा-

लीला के सभी पात्र पात्रों की सामाजिक स्थिति के अनुरूप वस्त्र धारण करते हैं। श्रृंगार क लिए चौक, गेरूआ रंग, काला कोयला के साथ आधुनिक, क्रीम और पाउडर इस्तेमाल किये जाते हैं । खासतौर से राम, सीता, लक्ष्मण औरभरत-शत्रुध्न के मुख मण्डलों पर विविध प्रकार के रंग-रंगोली का उपयोग किया जाता है। पात्र अपने चरित्र के अनुरूप वस्त्र तथा शस्त्र धारण करते हैं। रावण की सेना के लोग काले वस्त्र, नेकर, कमीज तथा मुख पर राक्षसी मुखौटे धारण करते हैं। स्त्री पात्र सुन्दर वस्त्रों के साथ आकर्षकआभूषण भी पहनते हैं। सुपात्रों के पहनावें में शालीनता और शिष्टता का विशेष ध्यान रखा जाता है। सज्जागृह में पात्रों को सजाया एवं संवारा जाता है तथा यहीं से 'सीन' (विशेष प्रकरण के पात्र) मुख्य मंच अथवा रंगभूमि में आगमन करते हैं। मंचीय दृष्टि से लोकधर्मी नाट्य परम्परा का यह मंच अधिक उन्नत और पूर्ण मिलता है। इस रंगभूमि में विविध प्रकार के बड़े दृश्य, सुगमतापूर्वक प्रस्तुत किये जाते हैं। परदों के सहारे राज दरबार, राज भवन तथा वन के अन्य बड़े दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं। खुली रंगशाला में युद्ध जैसे दृश्य प्रस्तुत कर, रोमांच पैदा किया जाता है। आज तो यंत्रों की सहायता से दृश्य परिवर्तन एवं साज-सज्जा सम्बन्धी नवीन उपकरणों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

पौराणिक लोकनाट्य मंच-

लोक रंगमंच की, पौराणिक लोक नाट्यों की प्रस्तुति, एक प्राचीन परम्परागत प्रस्तुति है। पौराणिक कथानकों को लेकर चलने वाले ये नाटक (1) कृष्णजन्म (2) हरिश्चन्द्र (3) अर्जुन (4) जयद्रथ वध (5) अभिमन्यु नाटक प्रमुख हैं। ये नाटक भी उतने ही लोकप्रिय हैं जितनी लोक मंच पर रामलीला है। ये उतने ही प्राचीन हैं जितना कि लोकनाट्य मंच है। इनके प्रस्तुतिकरण के निमित्त सामान्य रंगमंचीय व्यवस्था मिलती है। तख्तों से तैयार किये गये इस मंच को बीच में परदा डालकर दो भागों में बाँटा जाता है। प्रायः सभी नाटकों की प्रस्तुति के लिए इस मंच का ही उपयोग किया जाता है। नाट्य के सभी दृश्यों की प्रस्तुति इसी एक रंगमंचीय मंच पर होती है। पीछे साज-सज्जा गृह में पात्र सजते-संवरते हैं और आगे वे अभिनय प्रस्तुत करते हैं। मुख्य यवनिका के बाद इस मंच पर एक ही यवनिका होती है जिसके पीछे से अभिनेता मंच पर प्रवेश करते हैं। यह यवनिका विभिन्न दृश्यों के परिवर्तन की सूचक भी होती है। संगीत वादक मुख्य मंच पर ही बैठते हैं। लीला के मंच की खुली रंगशाला व्यवस्था इन नाटकों के मंचों पर नहीं होती है। साज-सज्जा और मंचीय व्यवस्थाओं में यह मंच, लीला मंच की तरह परिपूर्ण नहा होता है। दर्शक इसमें मुख्य यवनिका के साथ ही चिपके रहते हैं। दृश्यों के प्रस्तुतिकरण के पश्चात् मंच पर आना निषेध होता है।

कथानक- नाटकों के पात्र पौराणिक पात्र ही होते हैं जो दर्शकों के जाने-पहचाने होते हैं। यथा हरिश्चन्द्र नाटक में शैव्या, विश्वामित्र, मरघट, कफन फरोस, डोम, इत्यादि। इसी तरह अन्य नाटकों के जाने-पहचाने चरित्र होते हैं। पात्रों की चरित्र विशेषताओं के साथ अभिनय प्रस्तुत किया मिलता है तथा उनकी खूबियों और उनके गुणों को उसी रूप में प्रस्तुत करके जन-जन के हृदय में तारतम्य स्थापित करने की चेष्टा की जाती है।

कथोपकथन- इन नाटकों के कथोपकथन प्रायः (1) गद्य तथा (2) पद्य, दोनों ही रूपों में उपलब्ध मिलते हैं। रामलीला की तरह नाटकों में भी नाटकों की राधेश्यामी तर्ज का उपयोग किया जाता है। पद्यात्मक कथोपकथनों को बुलन्द आवाज में प्रस्तुत किया जाता है। मुख्य पात्रों की भूमिका कुशल अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

अभिनय- मुख्य आंगिक और वाचिक होते हैं। जोश-खरोश के साथ अंगाभिव्यक्ति की जाती है। उछल-कूद के साथ शौर्य प्रदर्शन किया मिलता है। स्त्री पात्रों की भूमिका पुरूष पात्र प्रस्तुत करते हैं। स्त्रियोचित कोमलता के अभाव के बावजूद इनके अभिनय में शीलता और शालीनता का अभाव नहीं होता है। ये अपने

आंगिक और वाचिक अभिनय द्वारा लोगों को विमोहित करते हैं। इसलिए ये नाटक लोगों द्वारा बहुत चाहे जाते हैं।

भाषा- सभी लोकाभिव्यक्तियां हिन्दी में प्रस्तुत की जाती हैं। लोगों की मातृ-भाषा अलग होने पर भी लोग इसे खूब समझते हैं। **संगीत-**हारमोनियम के साथ तबला तथा ढोलक का उपयोग किया जाता है। राधेश्यामी तर्ज में राग-रागनियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। गद्यात्मक संवादों में संगीत का उपयोग नहीं किया जाता है। **साज-सज्जा-वेशभूषा-** अभिनेता पात्रानुकूल वेशभूषा धारण करते हैं। प्रायः मुकुट धारण किये जाते हैं। मुख की कांति बढ़ाने के लिए 'क्रीम' तथा 'पावडर' का इस्तेमाल किया जाता है। देहातों में उपलब्ध सौंदर्य उपकरणों का भी प्रयोग होता है। स्त्रियां गहने पहनती हैं तथा नकली जटाएं धारण करती हैं। नाटक का शुभारम्भ मंगलाचरण से होता है। इन नाटकों में भी विशेष पात्र- 'प्राम्टर' पात्रों को संवाद धीमी आवाज में नाटक की प्रस्तुति के बीच बताता चलता है और वह पात्र उन कथ्यों को ऊंची आवाज में, जनता के सामने प्रस्तुत करता है।

बच्चों के अनुकरणात्मक नाटक- लोकधर्मी नाट्य परम्परा में बच्चों के इन अनुकरणात्मक नाटकों का बड़ा महत्व है। रामलीला तथा नाटकों की प्रस्तुति के बाद बच्चे प्रायः (1) रामलीला का अनुकरणात्मक और (2) नाटकों की प्रस्तुति के अनुकरणात्मक नाटक प्रस्तुत करते हैं। बच्चों के ये अनुकरणात्मक नाटक जनपद में बहुत प्रसिद्ध हैं और जहां देखिये वहां बच्चे खेल-खेल में, इनकी प्रस्तुति करते मिलते हैं। इन दो अभिव्यक्तियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति के अलावा बच्चे (1) बादी-बादीण के नृत्य और (2) स्वाँगों की नकल भी प्रस्तुत करते हैं। रामलीला, नाटकों तथा स्वाँगों के अनुकरण के निमित्त निर्मित इनका रंगमंच, जहाँ ये अपनी अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति की प्रस्तुति करते हैं, वह कोई खुला खेत, खुला खलिहान, देवालय अथवा पंचायती चौक होता है। इस खुले मंच पर बच्चे एकत्र होते हैं। छोटी-मोटी लकड़ियां गाड़कर उसके ऊपर चद्दर तानकर उसे मंच का स्वरूप देते हैं। इस मंच के पास ही उनका परदे से ढका अथवा परदा डालकर बनाया गया सज्जागृह भी होता है। इसमें वे चौक, गेरू और अगारे की कालिख का उपयोग रूप सज्जा में करते हैं।

कथानक- ये बच्चे अनुकरण किये नाटक, स्वाँग अथवा रामलीला की पूरी कथा को नहीं लेते हैं। ये इनके बीच-बीच के प्रसंगों को लेकर रामलीला, नाटक अथवा स्वाँग खेलते हैं। इसमें तारतम्य कथा की दृष्टि से नहीं होता लेकिन प्रसंगगत एकरूपता होती है। घटनाओं और प्रसंगों को ये काट छांट कर अथवा इधर से

उधर पकड़ कर, प्रस्तुत करते हैं। इनके कथानक इतने छोटे होते हैं कि प्राय: एक-दो घण्टे में ही ये सम्पूर्ण लीला, नाटक अथवा स्वाँग प्रस्तुत कर लेते हैं और कभी -कभी ऐसा भी होता है कि एक ही प्रसंग की प्रस्तुति में पूरी लीला अथवा नाटक समाप्त हो जाता है। पात्र और पात्र-सज्जा-बच्चों के अनुकरणात्मक नाटकों, लीला और स्वाँगों के पात्र सभी लीला नाटक और स्वाँगों के परिचित पात्र ही होते हैं। कोई राम, कोई सीता तो कोई रावण, हनुमान, भरत और दशरथ बन जाते हैं। ये पात्र कागज अथवा पत्रों के मुकुटों से अपने आपको सजाते हैं। वेशभूषा और रंग सज्जा में स्थानीय साधनों का ये खूब प्रयोग करते हैं। बांस और चाई के धनुष-बाण बनाये जाते हैं। स्त्री पात्र धोती, अंगिया पहनते हैं। राक्षसों के मुँह पर काला मोसा (अंगारे की कालिख) पोता जाता है। कभी-कभी बच्चे बाँस की जड़ों से निकलने वाले बड़े मोटे और मजबूत पत्तों का इस्तेमाल मुखौटों के रूप में भी करते हैं।

कथोपकथन तथा अभिनय- प्राय: पद्य में ही कथा प्रस्तुत की जाती है। दोहा, चौपाई और राग-रागिनियों में ही, लीला अथवा नाटकों की तरह उत्तर दिये जाते हैं। गाने के साथ आंगिक अभिनय- अंग प्रदर्शन झटके साथ किया जाता है। तो भी कहीं-कहीं और कभी-कभी पद्य के साथ गद्य में भी कथोपकथन प्रस्तुत किये मिलते हैं। हाथ फैला-फैलाकर और कदम आगे बढ़ा-बढ़ा कर एवं छाती पर हाथ से जोर से प्रहार कर शौर्य का प्रदर्शन किया जाता है। मार काट और युद्ध के दृश्यों की प्रस्तुति में बच्चे अच्छी खासी दिलचस्पी प्रदर्शित करते हैं और इन अवसरों में से एक दूसरे से खूब लड़ाई-भिड़ाई भी करते हैं। धनुष बाण से रावण और राम की लड़ाई के मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं जो बहुत रोचक और दिलचस्प होते हैं।

भाषा- भाषा हिन्दी और तर्ज राधेश्यामी राग-रागिनियों की होती है। प्राय: पद्य के साथ गद्य अंश भी हिन्दी में प्रस्तुतकिये जाते हैं। ये छोटे बच्चे भी इन राग-रागिनियों का अर्थ भली भाँति समझते हैं।

संगीत- ये मधुर ध्वनि के साथ दोहा, चौपाई, राग-रागिनियाँ प्रस्तुत करते हैं। रावण के वध पर कंटर (कनस्तर) पीट कर राम की विजय की घोषणा करते हैं। वाद्य मंत्रों में कनस्तर पीटना और टिन के टुकड़े बजाना ही मुख्य अभिव्यक्ति है। नाटकों में से गद्य अंशों का अधिक उपयोग करते हैं। स्वाँगों की अनुकृति में तो ये पूरे स्वाँगी ही बन जाते हैं। बादीगण की तरह धोती पहनकर नाचते हैं। सजावट के लिए पत्तों अथवा कागज के मुकुट पहनते हैं। बादी और बादीण द्वारा प्रयोग किये गये व्यंग्यों की सही और सटीक नकल उतारते हैं। इन व्यंग्य भरे कथोपकथनों में सामाजिक ढांचे में व्याप्त अनाचार और अत्याचार के खिलाफ आवाज रहती है तथा उसका व्यंग्य भरी वाणी से माखौल उड़ाया जाता है।

विशेष मंच- कहीं-कहीं बच्चे लकड़ी के चार डंडे खड़ा करके उसके तीनों ओर चादर लपेट लेते हैं और सामने कोई अच्छी सी सफेद चादर डालकर उसे मंच का स्वरूप दे देते हैं। इस मंच के बीच में एक अलग चद्दर डालकर ये इसके दो भाग कर लेते हैं। इस तरह इस रंगमंच पर ये अपने नाटक प्रस्तुत करते हैं। प्राय: यह भी देखने को मिलता है कि गांव के स्त्री-पुरूष बच्चों के इन नाटकों, स्वाँगों और लीलाओं को देखने एकत्र हो जाते हैं और इनका आनन्द उठाते हैं। रोशनी के लिए लालटेन का उपयोग किया जाता है। इन प्रस्तुतियों के अनुकरण के अतिरिक्त बच्चे, पाण्डव नृत्यों की नकल भी उतारते हैं। इसमें आँगिक, वाचिक दोनों तरह की प्रस्तुतियाँ होती हैं। इन पर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आते हैं, ये उन्हीं के अनुरूप बोलते हुंकारते और किलकारी मारते अभिनय प्रस्तुत करते हैं। इन प्रस्तुतियों में भी कनस्तर पीटकर वाद्य यंत्रों की कमी पूरी की जाती है। इन्हें देखकर भी गाँव के लोग आनन्द उठाते हैं। बड़े-बूढ़ों और नक्कालों की नकल उतार कर भी ये अनुकरणात्मक अभिनय प्रस्तुत करते हैं। इस अनुकरण अथवा नकलबाजी में बच्चों को खूब आनन्द आता है और गाँव के बड़े-बूढ़े भी इनमें भाग लते हैं तथा इनसे आनन्द उठाते हैं।

व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियां-

क्रियाएं और अभिव्यक्तियों जिनमें आँगिक रूप में नाटकीयता अथवा लोकधर्मी नाट्य परम्परा के दर्शन मिलते हैं वे हैं- (1) पाण्डव नृत्यान्तर्गत व्यक्तिपरक देव विशेष के बल पौरूष का अभिव्यक्तिकरण (2) नृत्यान्तर्गत बाजा मांगने की प्रवृत्ति तथा (3) बाजों में पाया जाने वाला व्यक्तिपरक देवविशेष के पौरूष बखान की प्रस्तुति का एक अंग कह सकते हैं। सामूहिक नृत्य प्रदर्शन में अभिनय के साथ कथोपकथन भी साथ चलते हैं। खुले मैदान में ये नाचते व संवाद बोलते चलते हैं तथा दूसरा व्यक्ति भावानुकूल अभिनय प्रस्तुत करता हुआ निर्देश देता है यथा, छांटो छड़बड़ कदम मिलेकी, माई मर्द का चेला, लाठी निभिलाने मइ और भनासी मर्दों इत्यादि। इसमें नाटकीयता व कथोपकथनों का प्रयोग होता है। व्यक्तिपरक अभिनय में अर्जुन, भीम और नकुल, सहदेव के बल और पौरूष की नाटकीय अभिव्यक्ति अभिनेता अथवा नर्तक द्वारा की जाती है। इन अभिव्यक्तियों का मंच मण्डाण होता है। भीम देवता वाले पुरूष का अभिनय दर्शकों को रिझा देता है जिससे दर्शक झूम उठते हैं। इस मण्डाण के बीच बाजा मांगने की अभिनयात्मक अभिव्यक्ति, नर्तक, अभिनेता द्वारा की जाती है। कानों पर अंगुली रखकर अभिनेता संवाद शैली में कथानक प्रस्तुत करता है। इसे स्थानीय बोली में बाजा मांगना कहा जाता है। इसमें आँगिक अभिनय की प्रचुरता रहती है। नर्तक के साथ आवजी (औजी) भी एक कान पर अंगुली रखे रहता है तथा दूसरे हाथ से धीरे-धीरे ढोल पर थाप देता है। तीसरे प्रकार के बाजे के साथ पायी जाने वाली व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति, देव विशेष के पौरूष के बखान

की प्रस्तुति है। नरसिंह और भगवती के नर्तक आंगिक अभिनय के अद्भुत कौशल का प्रदर्शन करके, दर्शकों को चकित कर देते हैं। दर्शकों को इससे संतोष और आनन्द की प्राप्ति होती है। नाटकीय प्रवृत्ति का प्रदर्शन, इन व्यक्तिपरक नृत्याभिव्यक्तियों के अतिरिक्त (1) दो महिलाओं के झगड़े और (2) औरतो तथा पुरूषों द्वारा नकल किये जाने में भी मिलती है। औरतों के झगड़े में आंगिक तथा वाचिक दोनों ही प्रकार के अभिनयों की प्रस्तुति होती है। (2) औरतों अथवा पुरूषों द्वारा नकल की प्रवृत्ति के फलस्वरूप भी, नाटकीय प्रदर्शन का अनोखा दृश्य दर्शकों के सामने उपस्थित हो उठता है। आंगिक और वाचिक प्रदर्शन द्वारा ये एक मनोरंजक नाट्य प्रस्तुत कर देते हैं।

लोक नाट्य परम्परा की स्वाँग शैली-

गढ़वाल में स्वाँग की एक विशेष शैली है। यह गढ़वाली लोक धर्मी रंगमंच की एक महत्वपूर्ण और प्रमुख इकाई है । लोक जीवन में इसका बड़ा महत्त्व तथा मान है। गढ़वाली की स्वाँग की परम्परा की शैली को हम दो भागों में बांटते हैं। (1) व्यवसायी तथा (2) अव्यवसायी। अव्यवसायी से तात्पर्य एक ऐसी परम्परागत शैली से हैं जिसमें समायानुसार लोग मिलकर, स्वाँग प्रस्तुत करते हैं। लोगों द्वारा 'जोकरिंग' के नाम से जाने जाते हैं। समाज इन जोकरिंग को सुनना और देखना चाहता है। प्रायः ये हास्य प्रस्तुतियाँ-'जोकरिंग- रामलीला और पौराणिक नाटकों की प्रस्तुति के बीच दिखाये जाते हैं। रामलीला और नाटकों के प्रसंगों के बीच, दर्शकों के मनोरंजनार्थ 'जोकरिंग' नाम की अभिव्यक्तियों की प्रस्तुति की जाती है। इस तरह नाटकों तथा लीला के बीच मंच पर प्रस्तुत इन लोकाभिव्यक्तियों की स्थानीय शैली को ही अव्यवसायी स्वाँग परम्परा नाम दिया गया है। जोकरिंग-हास्य प्रस्तुतियों की समयावधि अधिक से अधिक 15 से 20 मिनट तक होती है। इनका उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना होता है। इन प्रस्तुतियों का उद्देश्य सामान्यतः व्यंग्य है, सामाजिक अंधविश्वासों और रूढ़िवादी प्रवृत्तियों पर कटाक्ष करना है। लोगों को रूढ़िवादिता के खिलाफ जागरूक बनाना है, शिक्षित करना है। इनके अभिव्यक्तिकरण में आवश्यकता से अधिक अभिनेयता और एक्शन होता है। पात्र 3 से 4 अथवा कभी-कभी दो भी होते हैं। इनकी वेशभूषा आकर्षक होती है। मुकुट और मुखौटे धारण किये जाते हैं। काले, नीले, पीले और लाल रंग से वे चेहरों को पोतते हैं। बहुरंगियों की तरह ये लोगों का मनोरंजन करते हैं। अभिनय में उछल-कूद अधिक मिलती है। अपने इस अभिनय में मसखरापन लाने के लिए ये अजीबो गरीब, आंगिक और वाचिक अभिनय प्रस्तुत करते हैं। लीला और नाटकों के बीचलोगइन प्रसंगों को देखना पसंद करते हैं। कुछ प्रसिद्ध स्वाँग हैं:- (1) भूत भगाने का स्वाँग (2) बूढ़े को पैसो के लोभ में लड़की बेचने का स्वाँग (3) वाक्या से रोग का निदान ढूढ़ने

का स्वॉग (4) पाखण्डी जोगियों के स्वाँग तथा सटक बाबा इत्यादि (5) शराब और उसकी बुराइयों के स्वाँग और (6) शिक्षा के महत्व को दर्शाने वाले स्वाँग । इनसे मनोरंजन के साथ जनता को शिक्षा भी मिलती है। इनकी भाषा प्रायः हिन्दी तथा कभी-कभी स्थानीय बोली भी होती है। पेशेगत कला के रूप में, स्वाँग लोक नाट्य मंच की एक ऐसी प्रस्तुति है जो कि आदिकाल से आज तक अपने मूलरूप में जीवित मिलती है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि इन स्वाँगों का आदि रूप ऐसा ही रहा होगा तो भी स्वाँगों के साथ 'औसर' शब्द की उपलब्धि इस बात का संकेत करती है कि अपने मूल रूप में यह प्रस्तुति किसी और रूप में रही होगी। 'औसर' के साथ आज अश्लीलता का पुट होने का जो संकेत है वह 'ओसर नाट्य' के नैतिक दृष्टि से नीचे स्तर का होने का संकेत करता है। यह कि इनमें हंसाने के लिए, मनोरंजन के लिए भोड़े, गंवारू और अश्लील शब्दों का प्रयोग होता था।

स्वाँग-शैली-

स्वाँग शैली ही गढ़वाली लोक धर्मी नाट्य परम्परा की मूल शैली है। इसका अपना रंगमंच है। अपनी भाषा है और अपने शैलीगत कथोपकथनों के साथ इसमें परम्परागत पेशेगत व्यवसायी प्रवृत्ति मिलती है। प्रत्येक वर्ष इस वर्ग और जाति के लोग इन नाट्यों का प्रदर्शन करते हैं। इन स्वाँगों के प्रदर्शन के पीछे धार्मिक आस्था और शिव जी के वरदान की बात, ये पेशेवर लोग करते हैं। स्वाँग में लोकोत्सव लाँग परम्परा अति प्राचीन है। वैदिक काल में जिस तरह अश्वमेघ और पुरूष मेघ यज्ञ की परम्परा थी, उसी तरह पार्वत्य प्रदेश में लॉग (वेदार्त, भडयाणा औसर-स्वाँग की) यज्ञ द्वारा औंसर गायन (इतिहास किया जाता था) द्वारा तत्कालीन समाज के हित चिन्तक, श्रेष्ठजनों की गाथायें और कालान्तर में प्राचीन नरेशों की शौर्य गाथाएं गाई जाती थी, उनका यश-गान किया जाता था । मानव की इस आदिम अभिव्यक्ति जिसमें गीत, नृत्य, और अभिनय तीनों एक रूप में प्रस्तुत हुये हैं, ने लोक नाट्य को जन्म दिया है और यह लोक नाट्य की परम्परा ही आधुनिक नाट्य कला की जनक मानी जाती है। इसका स्वरूप हमेशा लोक धर्मी रहा है इसलिए लोक जीवन से लोकोत्सव का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये लोकोत्सव आज भी लोक जीवन से जुड़े हैं।

लॉग- लॉग लोकोत्सव में, नौ गांठ वाले बांस को, गांव के मध्य-स्थल (पंचायती चौक इत्यादि) पर गाड़ दिया जाता है। इस बांस के ऊपरी सिरे पर रस्सी इस तरह बांध दी जाती है कि लॉग उत्सव प्रस्तुतकर्ता, पेट के बल बाँस के ऊपरी हिस्से से चारों ओर घूम सके। इस खड़े बांस के डन्डे को लॉग (कहीं-कहीं लाक भी) कहा जाता है। 10 से 15 दिन और कहीं-कहीं महीनें भर, ये लोकोत्सवकर्ता आम जनता का

मनोरंजन करते हैं। इस उत्सव के आयोजन के एक अथवा दो दिन पहले से ये लोग, नृत्य और संगीत के साथ एक विशेष प्रकार की अभिनयात्मक प्रस्तुति का, प्रस्तुतिकरण भी करते हैं। इसे औंसर कहा जाता है। औंसर की अभिनयात्मक प्रस्तुतियों में (1) महादेव पार्वती का स्वाँग (2) कुटनेटी का स्वाँग (3) बुढ्या का स्वाँग और (4) ढाकरिया का स्वाॅग प्रमुख हैं। इन प्रस्तुतियों के साथ वर्तमान में जहां कहीं भी और जैसे भी इस उत्सव के आयोजन का मौका मिलता है, ये लोग सामाजिक समस्याओं, अंधविश्वासों और कुरीतियों पर भी तिलमिलाने वाला आघात करते हैं। वैसे अब इन लोकोत्सवों का आयोजन प्रायः बंद जैसा हो गया है। इसका कारण समय के साथ, प्रस्तुति के समय, नर्तकों की ऊंचे डन्डे से गिरकर मौत होना अथवा रस्सी से फिसलकर, प्राणांत का भय भी रहा है, और है। औंसर-स्वाँगों की प्रस्तुति के समय नायक-नायिकाएं अपने आपको वस्त्राभूषणों से सजाते-संवारते हैं। मुंह पर मुखौटे पहनते हैं। अपनी वेशभूषा और रूप आकर्षक बनाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। अन्तिम दिन, जिस दिन कि लोकोत्सव लाॅग की आकर्षक प्रस्तुति की जानी होती है, उससे एक दिन पूर्व ये महादेव का स्वाँग निकाल कर इस स्थान परआते हैं जहां बीस गाड़ा गया होता है और उक्त आकर्षक प्रस्तुति की तैयारी करते हैं। गढ़वाल में जिस प्रकार राम कथा मंच पर राम की लीलाएं प्रस्तुत की जाती है उसी तरह गढ़वाली लोक रंगमंच की स्वाँग परम्परा में, राम कथा मंचन से बहुत पहले, इन स्वाँगों में महादेव और पार्वती की कथाओं का मंचन होता था। इस तरह लोक रंगमंच की परम्परा में स्वाँगों में महादेव-पार्वती का चरित्र चित्रण और उनकी कथा का प्रस्तुतीकरण, रामकथा मंच के पूर्व ही, इसी मंच पर प्रतिष्ठित और प्रचलित था ।

लाॅग वाले स्थान पर आकर ये लोग, महादेव और पार्वती की आरती उतारते हैं और मुखौटा तथा जटा जिसे कि प्रस्तुतकर्ता धारण करते हैं, उसे लाॅग के पास स्थापित कर देते हैं। नाट्य प्रस्तुतकर्ता को स्नान कराया जाता है। जिस गांव में यह आयोजन होता है, उस गांव के 'प्रधान' का दान किया जाता है। इस उत्सव की यह विशेषता है कि जिस गांव में देवालय (मंदिर) होते हैं, वहां प्रस्तुतकर्ता रस्सी के सहारे काठ के घोड़े पर सवार होकर ऊपर से नीचे की ओर खिसकता हुआ, अपना खेल प्रदर्शित करता है। लेकिन ऐसे गांव, जहां देवालय नहीं होते, वहां ये लाॅग (बांस का डन्डा) पर चढ़कर उत्सव की प्रस्तुति करते हैं। लेकिन जिस प्रस्तुति में रस्सी के सहारे काठ की घोड़ी पर पेट के बल, टिक कर नीचे उतरना है उसे इस उत्सव की भाषा में 'कठवादी रणाया' जाना कहा जाता है। लाँग में प्रस्तुतकर्ता बाँस के डन्डे के ऊपरी शिरे पर चढ़ता है और पेट के बल, नाभि के बीचों बीच शरीर का संतुलन बनाकर चारों ओर घूमता है॥ प्रस्तुतकर्ता द्वारा पेट के बल घूमने की इस क्रिया को 'खण्ड खेलना' कहा जाता है। पहला 'खण्ड' (चक्कर) महादेव

के नाम का होता है। इसके बाद पंचनाम देवता और गांव के प्रधान के नाम 'खण्ड' खेलने का रिवाज है। वाद्य यंत्र खासतौर से, ढोल दमाऊं और ढोलक से संगीत की एक विचित्र रोमांचक स्थिति पैदा की जाती हैं। इससे दर्शकों के हृदय में अद्भुत रोमांच पैदा होता है। इस नाद को सुनकर और दृश्य को देखकर, दर्शक आत्मविभोर हो उठते हैं। खण्ड खेलने से पूर्व प्रस्तुतकर्ता लाँग के नीचे खड़े लोगों के सवालों का उत्तर भाले-भाले कहकर देता है। वाद्य यंत्रों को जोर-जोर से पीटते और ढोलक पर रामांचक स्थिति पैदा करने वाले वादक, इस लोकोत्सव लॉग की एक अजीब कथा सुनाते हैं। पार्वत्य प्रदेश की यह प्रस्तुति राजस्थान के तुर्रा और कलंगी का मिला जुला स्वरूप है जिसमें शिव और शक्ति (पार्वती) के उपासक, शिव पार्वती के यशोगान के माध्यम से नरेशों का यशगान करत हैं। इस लोकोत्सव में देवों और गांव प्रधान पंच नामदेवताओं, सती-सावित्रियों और भरों, नागराज, स्थानीय देवों के साथ दानी राजाओं-सामन्तों के यश का वर्णन करते हैं। दृष्टव्य है कथा का मूलपाठ-जब 'बरमा' के दरबार में बंटवारा हो रहा था तब वहां हर एक जाति के लोग थे। लेकिन वहां विधाधर (बादी) नहीं था। दूसरे जाति के लोगों को हिस्सा मिलतादेखकर, विधाधर जाति का पुरूष दौड़कर शिव जी के पास गया और उनसे बोला 'महाराज मैं यहां आत्म हत्या करता हूँ क्योंकि मेरे पास कोई बांठा नहीं है। 'शिवजी के पास ही पार्वती बैठी थी। उन्होंने विधाधर की बात सुनकर महादेव जी से कहा 'इन्हें इनका हिस्सा दे दूं।" पार्वती जी की बात सुनकर महादेव जी ने कहा 'जाओ तेरा हिस्सा जमीन जोतने वालों (किसानों) की फसल से मिलेगा। तुम नौ गांठ की लाँग लगाना । उस पर चढ़कर अपने कर्तव्य दिखाना । फिर तुम्हें, तुम्हारा हिस्सा मिल जायेगा ।' उस दिन से किसानों के जिम्मे विधाधरों का हिस्सा लग गया। तभी से ये प्रस्तुतकर्ता विधाधर भाले-भाले कह कर अपनी सहमति व्यक्त करता है।

उत्सव की समाप्ति का दृश्य भी रोमांचक होताहै। प्रस्तुतकर्ता अपने प्रदर्शन के पश्चात् लाँग से उतरता है। लोग उसे घेर लेते हैं। उसकी आरती उतारते हैं और बारी-बारी से गांव के पंच हिस्सेदार विधाधर के बालों को धोते हैं। बादी(विधाधर) के ये बाल बहुत पवित्र माने जाते हैं। इसलिए अक्सर बालों को छूने में छीना-झपटी हो जाती है। और ऐसा भी देखा गया है कि बादी (विधाधर) लहूलुहान हो उठता है। लोग उसके (विधाधर) बालों को नोच लेते हैं और उन्हें अपने पूजागृह में रखकर, उनकी पूजा करते हैं।

ऐसा विश्वास है कि लाँग लोकोत्सव के आयोजन से महामारी और बीमारियाँ ठीक होती है। इसलिए विधाधर के बाल, पवित्र और रक्षक समझे गये हैं। कैप्टन ठाकुर शूरबीर सिंह पवार ने अपने लेख

"वेडवार्त" में उल्लेख किया है कि ऐसे लोकोत्सव अकाल, महामारी तथा बीमारी जैसी प्राकृतिक दुर्घटनाओं के निवारणार्थ किये जाते थे। जिनके उद्देश्य के बारे में अंग्रेज कमिश्नर मिस्टर मूर क्राफ्ट ने फरवरी 1820 में बच्चू बेड़ा से इन आपदाओं के निवारणार्थ किये गये आयोजन की उपयोगिता और उपादेयता के बारे में विचार-विमर्श किया था। देर-सबेर महाराज कीर्तिशाह ने सन् 1910 में "लांग" और "वेडवार्त" पर प्रतिबंध लगाकर उसे बंद करा दिया था। इसी तरह सन् 1930 में टिहरी राज्यान्तर्गत जौनपुर परगना के थत्यूड़ ग्राम में जनता द्वारा आयोजित लांग-वेडवार्त टिहरी दरबार के आदेश से बंद की गयी थी। गांव के पंच और प्रधान तथा आम जनता जब विधाधर के बालों को छूती है तो विधाधर उन्हें जमीन के अपने हक की याद दिलाता है, उन्हें कसमें खिलाता है ताकि प्रत्येक फसल पर उसे अपना हक मिल सके। वाद्ययंत्रों की आकर्षक और उत्तेजना युक्त गर्जना के बीच, विधाधर लांग के ऊपर घूमता "भाले-भाले" कहता, खण्ड खेलता हुआ क्रम से निम्नांकित कविता का जोर-जोर से वाचन करता है:-

खण्डबाजे हो खण्ड बाजे
पंचनाग देवताओं को, खण्ड बाजे
गांव की भगवती को, खण्ड बाजे
नरसिंह नागराजा को, खण्ड बाजे
भैरों, निरंकार को, खण्ड बाजे
गांव के प्रधान को, खण्ड बाजे
सतधर्मी नारियों को, खण्ड बाजे
दानी राजाओं को, खण्ड बाजे
पंच हिस्सेदारों को, खण्ड बाजे।

और इस अंतिम प्रस्तुति के साथ समाप्त होता है, पार्वत्य प्रदेश का लोकोत्सव लांग और उसकी आकर्षक प्रस्तुति ।

कठबादी- लाँग की तरह ही कठबादी रड़ाया जाना लोक नाट्य की दूसरी प्रस्तुति है। जहां देवालय नहीं होते तात्पर्य जिस गांव में मन्दिर नहीं होते वहां विधाधर (बादी) काठ के घोड़े पर पेट के बल सवार होकर ऊँचे स्थान से नीचे स्थान की ओर लुढ़कता (रड़ता) है। कठबादी रड़ाये जाने से सम्बद्ध शब्द हैं- वर्त, काठी, और वर्तखूंटा। इस लोक नाट्य प्रस्तुति में भी 15 दिन से 1 माह तक औंसर-स्वांग निकाले जाते थे। विषय वही होते हैं जो कि लाँग नाट्य की प्रस्तुति में स्वाँगों के होते हैं। वादी (विधाधर) को

उसी तरह तैयार किया जाता है तथा सभी धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण किये जाने के बाद ही वादी काठ की काठी पर सवार होकर, ऊंचे स्थान के खूँटे से नीचे स्थान के खूँटे की ओर पेट के बल खिसकता है। वर्त, रस्सी मोटे बावड़ से बनायी जाती थी। इसे मजबूती से तैयार किया जाता था तथा इसे तेल से भिगोकर इतना चिकना बनाया जाता था कि काठ की काठी सुगमता से इसके ऊपर से ढाल की ओर कुशलतापूर्वक खिसक सके। काठी, काठ से निर्मित की जाती थी। इस पर बादी सवार होता था। इसे ऐसा बनाया जाता था कि यह कुशलता से रस्सी के ऊपर अपना **"बैलेंस"** बनाये रखकर, विधाधर सहित, सकुशल, जमीन में उतर सके। रस्सी को ऊपर तथा नीचे जिन खूंटों से बांधा जाता था उन्हें वर्त खुंट कहते हैं। पार्वत्य प्रदेशों में माल्या वर्तखुंट और तल्या वर्तखुंट जैसे नाम प्रायः मिलते हैं। मल्वा वर्तखुंट से तात्पर्य उस ऊपरी खूँटे से था जिस पर वर्त का ऊपरी हिस्सा तथा तल्या वर्तखुंट से तात्पर्य उस नीचे के खूँटे से था जिस पर वर्त का निचला हिस्सा बांधा जाता था। नियत समय पर काठ पर सवार होकर बादी (विधाधर) ऊंचे पहाड़ के खूँटे से नीचे पहाड़ के खूँटे की ओर बढ़ता था। बादी के सकुशल नीचे उतरने पर उसकी आरती उतारी जाती थी और उसके केशों को स्पर्श करने तथा लूटने की होड़ लोगों में लग जाती थी। कठवादी रड़ाये जाने का उद्देश्य भी महामारियों, भूख और अकाल तथा अन्य बीमारियों का शमन करना ही था। लेकिन कठवादी के साथ लाँग के प्रस्तुतकर्ता वादी के साथ यदि ये बीच में लाँग से अथवा काठ से गिर जाते थे तो गांव वाले, गांव के लिए इसे अपशकुन मानकर, वादी की गरदन तलवार से उड़ा देते थे। ऐसी प्राचीन प्रथा के इतिवृत्त मिलते हैं इसलिए कालान्तर में लाँग तथा काठवादी रड़ाने पर सार्वजनिक रूप से प्रतिबंध लगा दिया गया था और इन प्रथाओं को समाप्त कर दिया गया था। लाँग और कठवादी रड़ाये जाने सम्बन्धी कतिपय शब्द जो गढ़वाली लोकमंच पर व्यक्त होते रहे हैं- बेड़ा, एक जाति विशेष जिसे बेड़ा, वादी तथा विधाधर नाम से जाना जाता है। बेडवार्त, बेड़ाओं द्वारा आयोजित लाँग नाट्य, जिसके अन्तर्गत लाँ तथा समाजिक विषयों को लेकर अनेक प्रकार के व्यंग्य और कटाक्ष नाट्य रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। लाँग, नौं पोरी (नौं गांठ वाला) बांस का लट्ठा जिसे प्रस्तुतकर्ता खेल के लिए उपयोग करता था और जिसके सिरे पर पेट के बल घूम कर बादी कलाकार खण्ड बाजे, कहकर घूमता था तथा भाले-भाले कहकर वादकों की बातें सुनता तथा उनका उत्तर देता था। वर्त, बाबड़ की घास की रस्सी होती है। इसे स्थानीय बोली में वर्त कहते हैं। यह वर्त कई लड़ों को जोड़कर बनाई जाती थी और काफी मजबूत होती थी ताकि बेड़ा के पेट के बल और काठी पर सवार होकर रणने (फिसलने) पर यह टूटे नहीं। इसे कई दिनों तक फिसलन बनाये रखने के लिए तेल में भिगोया जाता था। खूंट यह एक

प्रकार का खूंटा होता था जिस पर वर्त का ऊपरी तथा निचला हिस्सा मजबूती से बांधा जाता था। वर्तखुंट, वह खूंटा, जिस पर यह वर्त बांधी जाती थी। ये स्थान प्रायः निश्चित होते थे और गांव की सीमा में एक ऊंचे तथा दूसरा ऊपर वाले की सीध में सीधा नीचे होता था। स्वांग, इसके बारे में लोक नाट्य लाँग में विस्तृत रूप से लिखा गया है। औंसर, औंसर में अश्लीलता का भोंड़ापन होता था। अश्लीलता इनमें नंगी मिलती है जिसका आनन्द दर्शकगण (स्त्री-पुरूष) शर्म महसूस करते मुंह और आंखे चुराकर लेते थे। प्राचीन काल में बादियों के ये औंसर स्वाँग प्रायः गांव के ओबरों (मकान की निचली मंजिल के कमरों में) होता था। यह भी सुविदित है कि इसमें प्रायः गांवों के उच्छृंखल नौजवान होते थे। बड़े बुजुर्ग प्रायः इन ओबरों में नहीं होते थे। सार्वजनिक रूप से चैत के महीने, फसल कटने पर, बादी नाच का गांवों में आयोजन करते हैं। इन आयोजनों में अश्लीलता अपने ढंके रूप में होती थी लेकिन लाँग लोकोत्सव अथवा कठबादी रणाये जाने के अवसर पर आयोजित, औंसर स्वाँग में, सार्वजनिक रूप में, इन लोगों द्वारा, अश्लीलता नंगे रूप से प्रदर्शित की जाती थी, जिसे नौजवान युवक चटकारे मारकर, नवयुवतियां आँखें नीचे करके, मन ही मन मुस्कुराती और बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरूष मुंह को हाथों से दाबे, दबी मुस्कराहट से आनन्द लेते थे और आज भी आनन्द लेते हैं।

डडवार- फसल पकने और खेतों-खलिहानों से किसान के घर जाने पर, भूमि की, फसल के हिस्सेदार, बादी और औजी (वादक जाति) चैत के महीने, किसानों के घर द्वार, गीत गाकर और नाच कर (औजीण द्वारा अथवा बादीण द्वारा) अपना हिस्सा मांगते हैं। इसे यहां "डडवार" मांगना कहा जाता है। इस डडवार का सम्बन्ध बादियों के लिए उस कथा से है जिसमें शिव जी ने उन्हें जमींनदार (किसान से) से फसल पर अपना हिस्सा उगाने से है। औजी, ढोल पर गीत गाकर, इन्हें यहां औजियों के गीत कहते हैं, डडवार मांगते हैं यह "भीख" नहीं है। वास्तव में डडवारों के पीछे, अधिकार पूर्ण कर वसूली जैसा भाव है जिसे अनिवार्यतया किसान को देना ही पड़ता है और औजी, साधिकार, अकड़ कर इसे लेता है। नांच, सामान्यतः बादियों द्वारा प्रस्तुत नृत्य को, बादियों का नाच अथवा "नाच" कहते हैं। भड्याणा, बेड़ों का भड्याणा के पीछे प्रलाप जैसी बात तो नहीं है तो भी लाँग लोकोत्सव और कठवादी रणाये जाने के समय तथा औंसर और स्वाँगों में बादियों द्वारा स्थिति और परिस्थिति के अनुरूप, ऊपर लाँग पर झूलते बादी को विमोहित, प्रोत्साहित और रोमांचित करने के लिए तथा जनता को आश्चर्य में डालने के लिए जो भड्या-उच्चस्वर में कहा जाता है, कथा कही जाती है अथवा इतिहास दुहराया जाता है उसे ही, बेडों का भड्याणा कहा जाता है। खण्ड बाजे, लाँग लोकोत्सव में, बाँस की ऊपरी धुरी पर पेटके बल,

एक फेरा घूमने को खण्ड बाजे कहते हैं, ।यह खण्ड बाजे, पहले देवताओं की स्तुति में, फिर ग्राम प्रधान, पंचनाम देवताओं और फिर सती-सावित्री नारियों के नाम, सम्मान के लिए फेरा (घूमा) जाता है। देवताओं और विशिष्ट व्यक्तियों और नारियों को इसके द्वारा प्रणाम अथवा नमस्कार बोला जाता है। औंसर गायन, प्रसिद्ध इतिहास लेखक और गढ़वाली संस्कृति और साहित्य के अध्येता, कैप्टन ठाकुर शूरवीर सिंह पंवार के अनुसार औंसर गायन वैदिक अश्वमेघ और पुरूष मेघ यज्ञ की परम्परा है। औंसर, ऐश्वर्य शब्द का अपभ्रंश है। औंसर अर्थात् इतिहास कहो। अश्वमेघ यज्ञ और पुरूष मेघ यज्ञ में जिस तरह नरेशों का यशोगान अर्थात् उनके ऐश्वर्य की गाथा गायी जाती थी वैसे ही औंसर में गढ़वाल में, गढ़वाल के प्राचीन नरेशों की शौर्य गाथा गायी जाती थी। वेड्वार्त, लाँग लोकोत्सव और कठबादी रणाये जाने पर कहीं 15 दिन और कहीं 7 दिन औंसर पाठ होता है।

स्वाँगी मंच- वादी जब लाँग लोकोत्सव का आयोयजन जब कभी भी किसी गांव में करते हैं तो वे उस गांव में आकर डेरा डाल देते हैं। इस डेरे के साथ के स्वांगी मंच की व्यवस्था भी कर देते हैं। ये प्राय: ऐसी जगह स्वाँगी मंच बनाते है, जहां पास ही उनके रहने का कमरा हो। इस कमरे का उपयोग साज सज्जा गृह के रूप में किया जाता है। मंच के लिए चार बल्लियां गाड़ी जाती हैं। इनके बीच, तख्ते ठोककर मंच बनाया जाता है। मंच तीन ओर से कपड़े से बन्द रहता है। पीछे एक परदा रहता है जिसको ऊपर उठाकर साज सज्जा गृह में प्रवेश किया जाता है। आगे की ओर परदा टंगा होता है जो कि लोक मंच की प्रस्तुति के समय खोला और बन्द किया जाता है। पहले पर्दे के बाद भी दूसरा परदा मंच पर होता है जिसे आवश्यकता के अनुसार उपयोग में लाया जाता है। मंच के बगल में गाड़ी गयी कड़ी (बल्ली) पर गैस टंगी रहती है। दर्शक मुख्य मंच से सटकर बैठते हैं। स्वाँगों का प्रदर्शन मंच पर ही होता है। इस मंच की साज-सज्जा साधारण होती है। लेकिन लोगों को आकर्षित करने के लिए बादी लोग कभी-कभी बड़े चमक-धमक वाले पर्दो और रंग विरंगी पतंगियों का उपयोग भी करते हैं।

कथानक- इस स्वांगी मंच की मुख्य कथा, महादेव-पार्वती की कथा और उनके द्वारा बादी को दिये वरदान वाली ही होती है। ये पूरी तरह शिव के उपासक होते हैं। इसलिए शिव-कथा की धार्मिक भावना का इनकी प्रस्तुतियों पर सर्वाधिक प्रभाव होता है। महादेव-पार्वती की कथा के अतिरिक्त ये सामाजिक समस्याओं, कुप्रथाओं, बुराइयों, रूढ़ियों और अंध विश्वासों का उपहास करने

हैं। अतः इनके मुख्य कथानक (1) महादेव-पार्वती की कथा तथा (2) सामाजिक समस्याओं को लेकर चलने वाले कथानक ही होते हैं । शिव-पार्वती सम्बन्धी स्वाँगों को ये विशेष महत्त्व देते हैं । इसीलिए कथारम्भ प्रायः प्रतिदिन शिव-पार्वती के स्वाँगों से ही होता है। सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों का उपहास करने के लिये ये विभिन्न प्रकार के कथापूर्ण स्वाँग प्रस्तुत करते हैं। कुछ हैं (1) बुढया जवें (बूढ़ा दामाद), (2) कुटणेटी का स्वाँग, (3) ढाकर्यां (सामान ढोने की प्रथा) का स्वाँग और (4) मोती ढौंगा (मोती बैल) के स्वाँग लोकप्रिय हैं । सामाजिक समस्याओं वाले व्यँग्यात्मक कथानक, आधुनिक प्रवृत्तियों की देन है तथा महादेव-पार्वती के स्वाँग का सम्पूर्ण कथानक पौराणिक कथा है । बादी के बांठा (हिस्सा) बाली बात ये अपने स्वाँगों में किसी न किसी रूप में दे ही देते हैं । पात्र-प्रायः सभी तरह के स्वाँगों के पात्र, जाने-पहचाने ही होते हैं। बादी परिवार के पुरूष और महिलाऐं इन जान-पहचाने पात्रों का अभिनय प्रस्तुत करते हैं। महादेव और पार्वती ये ही बनते हैं। **सामाजिक कथानकों में मनोरंजन-** हँसाने वाले कथानकों के अतिरिक्त जब ये दिल को लगने वाली, चुभने वाली बात और करूणाजनक स्थिति का निरूपण करते हैं तो ये बादी लोग अपने अभिनय से, दर्शकों का मन मोह लेते हैं। प्रायः इनके अभिनय और प्रस्तुति को देखकर लोगों का हँसते-हँसते पेट फूल जाता है तो करूणा से द्रवित होकर आंसुओं की झड़ी लग जाती है। मुखौटों का प्रयोग कभी-कभी ही किया जाता है। संवादानुकूल आँगिक अभिनय को ये कलाकार (पात्र) कुशलता पूर्वक प्रस्तुत करते हैं। इनकी प्रस्तुतियों में पात्रों के अभिनय में निखार और मंजापन होता है। दर्शकों को खुश करके पैसा कमाना इनकी समस्त स्वाँग प्रस्तुतियों का उद्‌देश्य होता है। इसलिए दर्शकों को प्रसन्न और विमोहित करके हंसा-हंसा कर लोटपोट कर देने के लिये ये अभिनय में अनावश्यक शारीरिक, आँगिक उछल-कूद, झटकेदार अभिनय और कथोपकथनों में, अश्लीलता का सहारा लेते हैं। इस छिछोरेपन का आनन्द दर्शक मुंह दबाकर मंद-मंद मुस्कुराते हुये लेते हैं। **संगीत-** संगीत का आधार लोक धुनें और राधेश्यामी तरज तथा नौटंकी की स्टाइल पूर्ण संगीत की ध्वनियां होती हैं। लोक संगीत के माध्यम से ये प्रभावपूर्ण स्थिति पैदा करते हैं। लोक संगीत में लोक गीतों की प्रस्तुति स्वाँगों की प्रमुख अभिव्यक्ति का माध्यम है। संगीत में बाँसुरी, हारमोनियम, सिणार्यी बाजा, तबला तथा ढोलक का प्रयोग किया जाता है। चिमटा डौंर (डमरू) और थाली तथा ढोल भी संगीत के माध्यम हैं। लोक गीतों के स्वरों का आधिक्य इनके संगीत में रहता है। दर्शकों की इच्छा और फरमाइश के अनुसार गीत और नृत्य प्रस्तुत किये जाते हैं। मोछंग का भी प्रयोग किया

जाता है। इसकी सुमधुर ध्वनि से दर्शक विमोहित हो उठते हैं। आधुनिकतम परिवर्तन के अनुसार बादी लोग स्वरचित आशुगीतों के साथ विविध प्रकार की स्थानीय घटनाओं पर आधारित गीत तथा कभी-कभी सिनेमा के गाने भी दर्शकों के मनोरंजनार्थ प्रस्तुत करते हैं। अधिकतर प्रेमपूर्ण, रंगीली रचनाँए ही मंच पर प्रस्तुत की जाती हैं। लोक संगीत का यह वाद्य साज यहाँ बहुत लोकप्रिय है और दर्शकों के दिल इसे सुनने के लिए लालायित रहते हैं। **हास्य-हास्य** को इस लोक-धर्मी मंच पर सबसे अधिक महत्व दिया गया है। पूरा मंच हंसी से गूँजता मिलता है। महादेव-पार्वती के स्वाँग के अतिरिक्त शेष जितने भी स्वाँग इस मंच पर प्रस्तुत किये जाते हैं, वे प्रायः हास्य से परिपूर्ण होते हैं। इनका उद्देश्य हंसी-हंसी में जहां सामाजिक बुराइयों, अंधविश्वासों और कुरीतियों पर चोट करना होता है वहीं, लोगों को हंसा-हंसा कर लोटपोट कर देना भी होता है। ऐसा रूप है लोक मंच के इस मनोरंजन का । यहां तक कि इनके कथानकों, कथोपकथनों और अभिनय में भी हास्य ही प्रधान होता है। इनके संवादों को सुनकर और अभिनय को देखकर जहां पुरूष जी खोलकर खिलखिला उठते हैं, वहीं महिलायें, बूढ़ी स्त्रियां भी मुँह में कपड़ा ठूँसकर दबी-दबी खिलखिलाहट की अभिव्यक्ति करने में नहीं चूकती हैं। इस हास्य के कारण लोगों के हंसते-हंसते पेट में दर्द हो उठता है।

इस लोक नाट्य रंगमंच की प्रमुख विशेषताएं हैं ॥1॥ इनमें संगीत, नृत्य और काव्य का मिलाजुला रूप मिलता है, ॥2॥ इनमें चरित्र पूजा की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती, ॥3॥ नाटक सुखांत और दुखांत दोनों ही किस्म के होते हैं, ॥4॥ लोकवार्ता की सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों का इसमें मिश्रण मिलता है, ॥5॥ इनके द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक और अनैतिहासिक नाटकों में शौर्य और पौरूष की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, ॥6॥ संवाद गढ़वाली में होते हैं, ॥7॥ इन लोक नाट्यों में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक दोनों ही चरित्र समान रूप में, प्रस्तुत हुये मिलते हैं, ॥8॥ यह मंच अकृत्रिम और साधारण होता है ॥9॥ इसमें आंगिक और वाचिक अभिनय में उछल-कूद अधिक होती है तथा ॥10॥ कथानकों में सामाजिक समस्याओं, अंधविश्वासों, कुरीतियों और विषमताओं पर पैना कटाक्ष किया मिलता है।

गढ़वाली के नये नाटक-

गढ़वाली रंगमंच का प्रथम चरण, नये संदर्भ में बीसवीं शदी के तीसरे दशक से आरम्भ होता है। वैसे सन् 1911 में तथा सन् 1914 में पं0 भवानी दत्त थपल्याल ने "जय विजय" और "प्रह्लाद" नाटक लिखे थे। गढ़वाली के नाटकों और उनके लेखकों की सूची इस प्रकार है-

नाटक	लेखक
(1) जयविजय	पं0 भवानीदत्त थपल्याल
(2) भक्त प्रहलाद	पं0 भवानीदत्त थपल्याल
(3) बसन्ती	पं0 विश्वम्भर दत्त उनियाल
(4) परिवर्तन	पं0 ईश्वरी दत्त सुयाल
(5) प्रेम सुमन	पं0 बाणी भूषण शर्मा "निपुण"
(6) भूतों की खोह	पं0 भगती प्रसाद पाथरी
(7) अधः पतन	पं0 भगवती प्रसाद पाथरी
(8) आज अलस छोड़ि देवा	पं0 भगवती प्रसाद चन्दोला
(9) मनसी	पं0 दामोधर प्रसाद थपल्याल
(10) औसी की रात	पं0 दामोधर प्रसाद थपल्याल
(11) जंगली फूल	डाँ0 गोविन्द चातक
(12) बुरांस	डाँ0 पुरूषोत्तम डोभाल
(13) विंदरा	डाँ पुरूषोत्तम डोभाल
(14) श्री कृष्ण नाटक	पं0 विशाल मणि शर्मा
(15) भक्त बालक ध्रुव	पं0 विशाल मणि शर्मा
(16) सीता परित्याग	श्री श्रीधर जमलोकी
(17) अनपढ़	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(18) गैल्या	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(19) बेमान नोकर	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(20) आजकल की पंचैत	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(21) शराब अर खराब	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(22) क़न्या बेची	श्री सुरेन्द्र सिंह रावत
(23) माई को लाल	श्री अबोध बंधु बहुगुणा

(24) अंतिम गढ़	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
(25) कच विटाल	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
(26) बण को फूल	श्री शिवानन्द नौटियाल
(27) खौल्या	श्री नित्यानन्द मैठाणी
(28) नाच्यूँ	श्री नित्यानन्द मैठाणी
(29) मागंण	श्री नित्यानन्द मैठाणी
(30) चौडंडी	श्री नित्यानन्द मैठाणी
(31) सपूत समूण	श्री मोहन डण्डरियाल
(32) कन्यादान	श्री बच्चीराम जमलोकी
(33) मूर्तियों की चोरी	श्री प्रेम लाल भट्ट
(34) बंटवारो	वैद्य पं0 गोविन्द राम पोखरियाल
(35) भारी मूल	श्री जीत सिंह नेगी
(36) मलेथा की कूल	श्री जीत सिंह नेगी
(37) डांडा की अयेड	श्री बुद्धि बल्लभ बहुगुणा
(38) पारवा घसेरी	श्री बुद्धि बल्लभ बहुगुणा
(39) आँसी की रात	श्री पारेश्वर गौड़
(40) गवै	श्री पारेश्वर गौड़
(41) चोली	श्री पारेश्वर गौड़
(42) तिमल्या का तिमल्या खत्या	श्री पारेश्वर गौड़
(43) जुन ख्याली रात	श्री दिनेश पहाड़ी
(44) कन्यादान	श्री सुदामा प्रसाद प्रेमी
(45) मालू से हकार	श्री केशव ध्यानी
(46) कखी नाकना, कखी सुनुना	श्री केशव ध्यानी
(47) टिचंरी	श्री चिन्तामणि बड़थ्वाल
(48) खबेश	श्री मदन डोभाल

(49) फिटकार — श्री मदन डोभाल
(50) खाडू लापता — श्री ललित मोहल थपल्याल
(51) आछर्यू को ताल — श्री ललित मोहन थपल्याल
(52) घरजवैं — श्री ललित मोहन थपल्याल
(53) दुर्जन की कछड़ी — श्री ललित मोहन थपल्याल
(54) एकीकरण — श्री ललित मोहन थपल्याल
(55) इनभि चल्दा — श्री गिरधारी प्रसाद कंकाल
(56) एक जौ अगने — श्री वीरेन्द्र मोहन रतूड़ी
(57) रगढग — श्री किशोर घिल्डियाल
(58) दूजो जनम — श्री किशोर घिल्डियाल
(59) कोड़ कोल्वै — श्री किशोर घिल्डियाल
(60) पुरिया नैथाणी — श्री मदन थपल्याल
(61) तीलू रौतेली — श्री मदन थपल्याल
(62) चैती की एक रात — श्री विश्व मोहन बडोला
(63) जंकजोड़ — श्री राजेन्द्र धस्माना
(64) अर्द्ध ग्रामेश्वर — श्री राजेन्द्र धस्माना
(65) सपूत — श्री कन्हैया लाल डंडरियाल
(66) कसानुक्रम — श्री कन्हैया लाल डंडरियाल
(67) अदालत — श्री स्वरूप ढौडियाल

इन नाटकों की संख्या को देखकर गढ़वाली रंगमंच के विकास के बारे में सोचा जा सकता है, लेकिन वास्तव में ये सब नाटक एक सीमित क्षेत्र में लिखे और खेले गये हैं। इनका विस्तार गढ़वाल क्षेत्र में नहीं है। ये केवल शहरों में ही मंचित हुए हैं। खासतौर से दिल्ली में ही इन्हें मंचित किया गया है। खुले रंगमंच पर इन्हें गढ़वाल के गावों-गावों तक मंचित किया जाय तो तब कहीं गढ़वाली रंगमंच पर रामलीला और स्वांगी रंगमंच की तुलना के साथ इन नाटकों के प्रभाव को आंका जा सकता है। नाट्यविदों की उपस्थितिके अभाव में इन नाटकों के प्रस्तुति-कौशल के बारे में कोई राय नहीं बनाई जा सकती है तो भी श्री ललित मोहन थपल्याल के नाटकों की प्रायः गढ़वाल में सार्वजनिक रूप से प्रस्तुति हुई है।

उनका "खाडू लापता" खूब विख्यात है, अपने व्यंग्य और हास्य प्रवृत्तियों के लिए मंच पर अभिनीत किये जाने पर ही इन सभी नाटकों के स्तर के बारे में कुछ कहा जा सकेगा और तभी इनकी प्रस्तुति सुलभता तथा मंचीय कौशल की निपुणता के बारे में कोई राय बनायी जा सकती है। वैसे लेखकों का प्रयास, स्तुत्य है। गढ़वाली में इतने नाटक हैं, यह बड़ी बात है।

अध्याय - 9

लोक - नृत्य

लोक का सीधा अर्थ समूहगत अभिव्यक्ति से है और लोक के साथ जब नृत्य शब्द जोड़ा जाता है तो उसका साधारण अर्थ होता है सामूहिक अभिव्यक्ति या सामूहिक नृत्य । जिस प्रकार लोक की काव्यात्मक अनुभूत अभिव्यक्तियों को गीत साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत या समग्ररूप से लोक साहित्य या लोकवार्ता कहा जाता है उसी प्रकार समूहगत मौलिक प्रस्तुतियों को लोकनृत्य के नाम से पुकारा जाता है। ये प्रस्तुत अभिव्यक्तियां चूंकि अधिकतर सामूहिक कर्मो का प्रतिफल हैं यानी इनकी अभिव्यक्ति अथवा प्रस्तुति में समाज की समूहगत अभिव्यक्ति की भावना अधिक मिलती है इसलिए जब हम लोकनृत्य कहेंगे तो उसे हम जातीय प्रयत्न की व्यावहारिक परिणति के रूप में ही स्वीकार करेंगे। संसार के विभिन्न भागों की ही बात क्यों कहें, भारत के प्रान्त और प्रान्तर जनपदीय संस्कृतियां इस अनोखी विरासत से भरी पड़ी हैं। कोई भी ऐसा समूह और जाति अथवा वर्ग नहीं है जिसने अपने आप को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त न किया हो। समाज शास्त्रीय और नृत्य शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार इन अभिव्यक्तियों में समूहगत आनन्द की अभिव्यक्ति, खुले आकाश और खुले खेतों-खलिहानों और चौक के घिरे आंगनों में अधिक हुई है। नृत्य के साथ संगीत और काव्यात्मक अनुभूतियां यानी गीतों ने साथ देकर इन सामूहिक अभिव्यक्तियों को और भी अधिक दिलचस्प और जनोल्लास का प्रतीक बनाया है।

हर देश और राष्ट्र की ये अभिव्यक्तियां जातीय भावनाएं और जातीय उल्लास को लिए हुये हैं। दुःख और सुख सभी के साथ लगे रहे। दुःख के ऐसे क्षणों में, जहां जन-मानस के हृदय का दर्द गीत बोलों के रूप में मुखरित होकर जातीय संस्कृति की निधि बनने में समर्थ होता है तो दूसरी ओर सुख के ऐसे क्षणों में जन जीवन के उल्लास की इस सामूहिक अभिव्यक्ति ने जाति और जातीयता को चिरजीवी बनाया है। कोई भी तो ऐसी जाति नहीं मिलती जो रोई,गाई और नाची न हो। अतः यह सुस्पष्ट है कि जातीय थाती यानी अभिव्यक्ति की इस कलाका मानव जीवन से अनन्त लगाव रहा है और मानव विकास के साथ ही ये प्रस्तुतियां अपने विभिन्नरूपों में, विभिन्न देशों में पनपीं और विकसित हुईं । जन जीवन से हम इन अभिव्यक्तियों को अलग नहीं कर सकते। इसलिए हम यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि इनका विकास बाद की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति की भावना मानव के साथ जन्म से जुड़ी है और वह

किसी न किसी रूप में अपने कौशल अथवा अपनी खुशी या दुःखको प्रस्तुत करती ही है। ऐसी स्थिति में नृत्यात्मक अभिव्यक्तियां बाद की विकसित प्रस्तुतियां हैं, इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। हम इन्हें मानव के साथ चलने वाली अभिव्यक्तियां मानते हैं जिन्हें उसने व्यक्ति की अथवा समूह की और अधिकतर समूहगत उल्लास की अभिव्यक्ति हेतु प्रस्तुत किया है।

नृत्यों के अध्ययन और विश्लेषण से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनोल्लास के ये सामूहिक तरीके हैं जिनके माध्यम से लोक मानस ने अपनी प्रसन्नता को व्यक्त कर समय-समय पर सुख और शान्ति की सांस ली है। इनके स्वरूप में भी विविधता में एकता और एकता में विविधता के दर्शन मिलते हैं। इन अभिव्यक्तियों में भले ही कुछ अन्तर क्यों न हो लेकिन इनमें जो सार्वभौम एकरूपता मिलती है वह इनकी विविधता में भी सार्वभौम एकरूपता के स्वरूप को प्रदर्शित करती है जो कि इस दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। ये नृत्य कहीं के भी क्यों न हों, इनमें प्रस्तुतिकरण की एकरूपता, समूहगत अभिव्यक्ति की भावना, अभिव्यक्तियों का खुलापन, संगीत और गीत का समन्वय तथा झुण्ड के रूप में अभिव्यक्तिय की अधिकता पायी ही जाती है। भरतनाट्य, कथकली, कथकनृत्य और मणीपुरी नृत्य की जो शास्त्रीय शैलियां भारत में मिलती हैं, इन शैलियों के पीछे पायी जाने वाली लोक नृत्यों की विशिष्टता को हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते हैं। हम तो इनके विकास के पीछे जनप्रचलित लोक नृत्य की विभिन्न शैलियां ही मानते हैं और हम इन्हें इन शैलियों का विकसित शास्त्रीय रूप मानते हैं। ये नृत्य अधिकतर धर्म और धार्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं और इनमें प्रस्तुत नृत्यात्मक अभिव्यक्तियों में धार्मिक और सामाजिक जीवन की सुन्दर झांकी मिलती है। अतः लोक नृत्य जातिगत सामूहिक अभिव्यक्तियां हैं, जिनमें जन-जन का सामूहिक उल्लास दक्ष-अदक्ष पैरों में अभिव्यक्त हुआ पाया जाता है। कहना न होगा कि इन सधे-अनसधे पैरों की ये अभिव्यक्तियां अपने मौलिक रूप में आज भी उतनी ही आकर्षक और लोकरंजक हैं, जितनी यह अपने आदि रूप में अभिव्यक्त हुई होगी। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में फोक डांसिंग पर टिप्पणी देते हुए कहा गया है कि लोक नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति अर्वाचीन है। इसका सृजन समाज की विशेष जटिल परिस्थितियों का द्योतक है और आंशिक अथवा समग्र रूप से यह समाज की इन विषम, जटिल परिस्थितियों पर ही आधारित है। किसी प्रागैतिहासिक सामाजिक संगठन का पूरा समाज लोक है और विशुद्ध रूप से हम लोक शब्द का प्रयोग किसी राज्य के समग्र सभ्य

समाज के लिए प्रयोग कर सकते हैं। लोक की इन नृत्यात्मक अभिव्यक्तियों को आधुनिक सुशिक्षित समाज की कला से भिन्न प्राणियों की थातियां ही माना जाता है। इसी क्रम में टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के पोषक लोक सामान्यतः इस लोक नृत्य को ग्रामों की कला तक ही सीमित मानते हैं जो नगर संस्कृति के संपर्क में नहीं हैं अथवा उससे दूर हैं; जिन्हें नियमित शिक्षा नहीं मिली अथवा जो कम शिक्षित हैं या शिक्षित ही नहीं हैं।

सभ्यता की दौड़ में पिछड़ी जातियों में सभी प्रकार के नाचने को लोक नृत्य कहा गया है। समुन्नत सभ्यताऔर संस्कृति के बीच लोक नृत्यों को लोक-मानसी की ऐसी कलाकृति माना जाता है जिसका बीज लोक विश्वासों और रीतिरिवाजों के रूप में पनपता हुआ चला आ रहा है और जिसके प्रस्तुतिकरण के लिए किसी अप्राकृतिक आवरण, लेपन या रंगशाला की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी मत को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि समुन्नत सभ्यता और संस्कृति के परिवेश में लोकनृत्य वह नृत्य है जो कि जन साधारण के बीच उत्पन्न (विकसित) हुआ है और जो कि बिना किसी पेशेवर नर्तक, शिक्षक और कलाकार की सहायता से नगर-संस्कृति के मंचों और नृत्य-गृहों से अलग यानी खुले मंच पर अभिनीत होते हैं। इस प्रकार लोक नृत्य उन तमाम कृत्रिम साधनों से स्वतंत्र अभिव्यक्तियोंके रूप है जिनकी प्रस्तुति खुले स्थान पर समूहगत अभिव्यक्ति में होती है।

लोक नृत्यों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें मुख्यतः दो प्रकार की अभिव्यक्तियां कहा गया है:- (1) सामाजिक नृत्य, जो किसी भी समय, किसी के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। (2) परम्परागत धार्मिक महोत्सव त्योहारों और ऋतुओं और पर्वो परआयोजित किये जाने वाले नृत्य, जो पेशवर रूप में नहीं होते लेकिन जिनमें धार्मिक पर्वो अथवा त्योंहारों का तारतम्य अवश्य ही रहता है।

लोक नृत्यों की विशेषताएँ :

भारतीय लोक नृत्यों की विशेषताएं इस प्रकार हैं, (1) नृत्यों में लोक के समूहगत जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। (2) लोक नृत्य समूहगत चेतना के प्रतिफल हैं। (3) इनमें धर्म और धार्मिक भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं। (4) विशेष ऋतुओं, पर्वों, त्योहारों एवं धार्मिक कृत्यों के समय इनके विशेष आयोजन हुए मिलते हैं (5) इनमें सामूहिक मनोरंजन के साथ सामाजिक अवसरों पर समूहगत

प्रसन्नता की अपेक्षित अभिव्यक्ति मिलती है। ‎(6)‎ इनके स्वरूप की विविधता में एकता और एकता में विविधता मिलती है। ‎(7)‎ इनमें प्रस्तुतिकरण की एकरूपता, मौलिकता है। ‎(8)‎ इनमें काव्य और संगीत साथ-साथ चलते हैं। ‎(9)‎ व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियों के स्थान पर समूहगत अभिव्यक्तियां अधिक हैं तो भी कुछ धार्मिक नृत्यों में जो व्यक्तिपरक कौशल की अभिव्यक्ति हुई है, वह धार्मिक भावना से वेष्ठित है। ‎(10)‎ इनमें जातिगत मूर्तवादिता मिलती है। ‎(11)‎ इनके अर्वाचीन सभ्यता के अछूतेपन के कारण इनमें मौलिकता बनी पायी जाती है। ‎(12)‎ इनको पर्व, त्योहार, और धार्मिक, पौराणिक आख्यानों की नृत्यात्मक अभिव्यक्ति, कृष्ण और रामलीला की शैलियों और नृत्याभिव्यक्तियों ने अधिक प्रभावित किया है।

गढ़वाली लोक नृत्य :

हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से घिरे गढ़वाल की सुरम्य घाटियों में बसने वाली इन जातियों के विश्वास अपने विशिष्ट रूप में हमारे अध्ययन के विषय हैं। यहां का जीवन मेहनत और परिश्रम का है। जीविकोपार्जन के साधनों की उपलब्धि के लिए यहां जी तोड़ परिश्रम करना पड़ता है। संघर्ष और प्रतिस्पर्धा से इस प्रदेश का जीवन अटूट लड़ी की भाति जुड़ा हुआ है फलस्वरूप यहां के लोक म ानस के विश्वासों में कोमल कांत भावनाओं के साथ श्रमिकों के जी तोड़ परिश्रम की सुन्दर अभिव्यक्ति की अधिकता पायी जाती है। लोक साहित्य एवं लोक कला इस प्रदेश की प्रतिकृति है। कला अभिव्यक्ति-उपकरणों का विधान भी कोमल न होकर कठोर ही है। सामाजिक विकास के साथ, वर्ग व्यवस्था की उत्पत्ति के फलस्वरूप, श्रम विभाजन कृत विषमता के कारण, मानसिक कलात्मक अभिव्यक्ति, उच्च वर्ग के आस्वादन का विषय रही। जनसाधारण के लिए वह जीविकोपार्जन का साधन बनी रही। इस विषमता के फलस्वरूप उच्च वर्ग यानी धनी समाज ही कला का पारखी और खरीददार रहा। कला का कलात्मक रूप यानी सौंदर्यानुभूति, राज दरबारों के रसास्वादन का विषय बनी। फलस्वरूप चित्रकला, वस्तुकला को छोड़ यह तो नहीं कहा जा सकता कि लोक कला में कलात्मक रूप सौंदर्य पक्ष नहीं आया तो भी जहां यह मान लिया जाता है कि कला कला के लिये है, वहां इस प्रदेश की कला हमेशा जीविकोपार्जन का साधन बनी रही। कला का वह रूप, जिसमें मानसिक कलात्मक अभिव्यक्ति-हृदय

सौंदर्य की प्रधानता रहती हैं, वह यहां की कला में समाहित न हो पायी। जनसाधारण ने कला को पेशे के रूप में बदल दिया। फलतः कला का अभिप्राय कलात्मक अभिव्यक्ति न रह कर धन प्राप्ति हो गया। इस प्रकार यह पेशेवर कला उपवर्गों में विभाजित हो गई। यद्यपि कला के इस भौतिक पक्ष के साथ मानसिक कला पक्ष ने भी समुचित स्थान पाया है और कलात्मक अभिव्यक्ति की सर्वांगसुन्दर अभिव्यक्ति हुई है तो भी भौतिक रूप और मानसिक कलात्मक अभिव्यक्ति अलग से विकसित न हो सकीं। आज भी दोनों में एक रूपता है। अतः गढ़वाल की इन जातियों के रीति-रिवाज, आचार-विचार, सुख-दुख और राग-द्वेष की अनुभूतियां, संगीत, समस्त गीत साहित्य, त्योहारों के विश्वास एवं आमोद-प्रमोद का व्यक्तरूप ही गढ़वाली लोक कला है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण इन लोक नृत्यों में उमंग और उल्लास से परिपूर्ण है। निराशा को कहीं स्थान नहीं मिला है। मृत अतृप्त आत्मा का जीवित मनुष्य की आत्मा से एकीकरणकी आत्मतुष्टि की नवीनता लेकर ये लोक विश्वास कला के क्षेत्र में आते हैं। अतृप्त आत्मा अपनी तृष्णाओं की जीवित मनुष्य के मुख से स्पष्टीकरण करवाती है। पूछे गये प्रश्नों का समुचित उत्तर पाकर उसकी तृष्णा की तृप्ति हो जाती है। यहां तक कि इन लोक विश्वासों के अनुसार जीवित आत्मा, आत्मा के एकीकरण की तुष्टि के लिये उसे भेंटती है, आंसू बहाती है, और बोलती है। आत्मा के एकीकरण का यह सिद्धान्त आत्मा के अजर, अमर, अनादि और शस्त्र और आग द्वारा भी नष्ट न किये जाने वाली युक्ति का प्रतिरूप है। शब्दों के उच्चारण वैचित्र्य से नर्तक के हृदय में अलौकिक स्थिति का निरूपण देव विशेष की आत्मा से एकीकरण द्वारा पैदा कर, कथित देव के गुणों की अभिव्यक्ति, नर्तक हाव-भाव द्वारा प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के ये विश्वास अपने तरीके के एक ही हैं। भाव और भावना के क्षेत्र में ये अद्वितीय हैं। किसी भी स्थान के लोक विश्वास इनकी समता नहीं कर सकते। स्वाभाविकता और सरलता ही इन लोक नृत्यों की विशेषता है। मंत्र-तंत्र से यह कला अछूती नहीं है। दुष्ट आत्माओं द्वारा पवित्र आत्मा के सताये जाने पर मंत्र द्वारा दुष्ट आत्मा को भगाने के लिये बलिष्ट आत्मा को बुलाये जाने का प्रयत्न किया जाता है। इस आहवान का रूप बलिष्ट आत्मा के गुणों की प्रशंसा करना होता है। इस प्रकार दुष्ट आत्मा बलिष्ट आत्मा के भय से ग्रसित मनुष्य आत्माको अपने प्रभाव से मुक्त कर देती है।

भूत-प्रेतादि दुष्ट आत्माओं के प्रभाव में आयी मनुष्य आत्मा विभिन्न-भावों की अभिव्यक्ति प्रेत आत्मा की पूर्ति के लिये करती है। इस कला में आत्म तुष्टि का भाव न होकर दुष्ट आत्मा के छल,

बल और तृष्णा का विकार होता है। दुष्ट आत्मा के प्रभाव में की गई भावाभिव्यक्ति से करूण और घृणास्पद भावों की उत्पत्ति दर्शकों के अन्तः स्थल में होती है। पाण्डव जैसे नृत्य की तरह इस नृत्य में दर्शकगण शामिल नहीं होते हैं । लोक रंजन की जगह इनमें लोक श्रद्धामिश्रित भय अधिक होता है। समस्त गढ़वाल में इन नृत्य विश्वासों का आयोजन, कलात्मक पिपासा की शान्ति हेतु नहीं होता जैसे कि मनोरंजन के लिये अवसर विशेषों पर श्रमिक वर्ग त्योहार कृत प्रसन्नता को गा और नाच कर व्यक्त करता है। देव-विशेष की अप्रसन्नता पर इस श्रेणी के नृत्य समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। इसमें मनुष्य के अपवित्र शरीर के साथ एकीकरण न मानकर नर्तक की आत्मा से एकीकरण माना जाता है और वह देव के गुणों की अभिव्यक्ति विशेष कौशल के साथ करता है। इन लोक नृत्य विश्वासों को हम इस प्रकार श्रेणीवद्ध कर सकते हैं:-

(1) वे लोक नृत्य, जिनमें लोक मानस की सौंदर्यदृष्टि पूरी तरह समाहित मिलती है।

(2) वे लोक नृत्य, जो पेशेवर कला के रूप में हमारे सामने आते हैं और जिनके सृष्टाओं का उद्देश्य कलात्मक अभिव्यक्ति न होकर जीविकोपार्जन के साधनों की उपलब्धि मात्र है।

पेशवर कला के रूप में पाये जाने वाले इन लोक नृत्यों का सामान्य दृष्टि से कोई महत्व नही है। इस कला के कलाकारों का इस प्रदेश में अपना एक वर्ग है जिसे यहां की बोलचाल की भाषा में बादी कहा जाता है। यदि इनके जीवन को संगीतमय ही कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। वाद्य यन्त्रों से ये हमेशा घिरे रहते हैं। संगीत के साथ-साथ गीतों का निर्माता भी यह वर्ग है और लोक साहित्य के निर्माण में इन्होंने यथेष्ट योग दिया है। ये लोग अक्सर खानाबदोश होते हैं। घूम-फिर और नाच-गाकर जीविकोपार्जन के साधनों को जुटाते हैं। नर्तकों का उद्देश्य दर्शकों के हृदय में कला के प्रदर्शन द्वारा एकीकरण की अवस्था पैदा करना नहीं होता, बल्कि विषैले कटाक्षो द्वारा कलात्मक पहलू को छोड़कर आकर्षण की विशेष अवस्था की ओर बढ़कर उपलब्धि के निमित्त भावों के साथ-साथ अंग-प्रत्यंगों को तोड़-मरोड़ कर, कला के नग्न रूप का प्रदर्शन करना होता है। इन नृत्यों का प्रदर्शन

अधिकतर युवतियां ही करती हैं। इनका सामाजिक बहिष्कार धीरे-धीरे हो रहा है। सभ्य और सुसंस्कृत लोगों के समाज में आज ये पेशेवर नृत्य घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे इनका प्रचलन बन्द होता जा रहा है। इतना होने पर भी इस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने वाले कितने ही लोगों के द्वारा इन नृत्यों का सामूहिक आयोजन गढ़वाल के कोने-काने में होता है।

इन पेशेवर कलाकारों द्वारा अभिनीत प्रमुख लोक नृत्य लांग (लांक) नृत्य है। नौ गांठ वाले बांस को देवता के स्थान पर गाड़ दिया जाता है। इस बांस के ऊपरी सिरे पर रस्सी को इस तरह बांध दिया जाता है कि नर्तक पेट के बल उस पर धूम सके। इस खड़े बांस के डंडे को यहां लांग या लांक कहा जाता है। लगभग 10 या 15 दिन और कहीं-कहीं 15 से 20 दिनों तक ये लोग नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करते रहते हैं। इस नाच का एक मात्र उद्द्देश्य पैसे की उपलब्धि है। लांग नृत्य खेलने के दो दिन पहले से ये लोग नाच-गाने के साथ-साथ एक विशेष प्रकार का अभिनय करते हैं। जिसे यहां की प्रचलित भाषा में 'औसर' कहा जाता है। जिस रूप में औंसर हमारे सामने आते हैं, इनका यही रूप पहले न था। पहले इसके पीछे अनैतिक आचरणों की छूट थी। आज यद्यपि इस फूहड़ प्रथा का वह रूप नहीं है तो भी इनका सामाजिक स्तर निम्न श्रेणी का है और इनके मनोरंजन के इन अभिनयों में अश्लीलता कुछ कम नहीं है लगभग ये लोग एक ही प्रकार के स्वांग निकालते हैं जैसे (1) महादेव-पार्वती का स्वांग (2) कुटनेटी का स्वांग (3) बुढ़या का स्वांग (4) तथा ढाकरिया का स्वांग । नायक और नायिका भिन्न-भिन्न तरह के आभूषण एवं वस्त्रों से अपने आपको सजाते हैं। मुंह पर ये बहुरंगी मुखौटे पहनते हैं। इस प्रकार इन अप्राकृतिक साधनों द्वारा अपने आपको छिपाकर विशेष आकर्षणीय अवस्था पैदा कर लोगों का मनोरंजन करना इनका उद्देश्य है। अंतिम दिन महादेव पार्वती की आरती की जाती है। तत्पश्चात् जटा और मुखारे को लांग के पास रखा जाता है। वादी को स्नान करवाने के पश्चात् गांव के प्रधान का दान होता है। जिन गांवों में देवी-देवता का मंदिर होता है वहां वादी लांग पर नहीं चढ़ता। कुछ दूरी पर एक रस्सी लगा दी जाती है और उसी रस्सी से वादी पेट के बल, काठी के सहारे नीचे आता है। इस क्रिया को कठवादी रड़ाया जाना कहा जाता है। ऐसे स्थान, जहां देवता की थाती नहीं होती, वहां वादी रस्सों के सहारे खड़े बांस और बबूल के सहारे बने तीर जैसे नुकीले मुंह पर चढ़ता है और पेट के बल चक्कर काटता है। इस क्रिया को 'खण्ड खेलना' कहा जाता है। सर्व प्रथम महादेव के नाम का खण्ड खेला जाता है। इसके बाद पंचनाम देवता तथा गांव प्रधान के नाम खण्ड खेलते हैं। अजीब रोमांच दर्शकों के हृदय में

हो जाता है। इस रोमांचजनित अवस्था के फलस्वरूप कौतूहलवश दर्शक आत्म विभोर हो उठते हैं। बादी रड़ाये जाने से पहले एक अनोखी भाषा का प्रयोग करता है और दूसरे बादी द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर बादी भाले-भाले कहकर देता है।

नाच गाने से लेकर मनोरंजन के विभिन्न अभिनयों का एकमात्र ध्येय पैसे का उपार्जन करना है। इतना होने पर भी यह लोक लांग नृत्य गढ़वाल के कोने-काने में अभिनीत किया जाता है। **'भाले-भाले'** कहनेके बाद बादी सुन्दर कविता पाठ एक बार घूमने के पश्चात् करता है। कविता की अंतिम पंक्ति के साथ औजी आकर्षक एवं विचित्र स्थिति पैदा करने के लिये ढोल को बड़े जोरो के साथ पीटता है।

खण्ड बाजे हो खण्ड बाजे।
पंचनाम देवतों को खण्ड बाजे ।।
गौं की भगवती को खण्ड बाजे।
नरसिंग नागराजा को खण्ड बाजे ।।
भैरौं निरंकार को खण्ड बाजे ।
गौंका प्रधान को खण्ड बाजे।।
सत धर्मी नारियों को खण्ड बाजे।
दानी राजों को खण्ड बाजे।।
पंच हिस्सेदारों को खण्ड बाजे।

गढ़वाली लोक विश्वास, रीति रिवाजों एवं समस्त व्यापक जीवन और मानव हृदय सौंदर्य का जो दिग्दर्शन कराते हैं, वे लोक नृत्य पहली श्रेणी में आ पाते हैं। प्रथम श्रेणी के लोक नृत्य भी उपवर्गो में विभाजित है। चार प्रकार के वाद्य यन्त्रों से नृत्य किये जाते हैं। (1) ढोल दमौंउ (2) हुड़की (3) डौंर और थाली तथा (4) ढोलक । ढोल के साथ दमौं एक प्रकार का ताम्बे का बना नगाड़े की शक्ल का होता है। इसे भैंस के चमड़े से मढ़ा जाता है। यह नगाड़े का ही छोटा रूप है। कठोर लकड़ी की बनी लांकुड़ (डंडियों) से इसे बजाया जाता है। हुड़की भगवान शंकर के डमरू की भांति दोनों ओर चमड़े से मढ़ी होती है। हुड़की का ही दूसरा रूप डौंर है। जहां हुड़की लम्बी होती है, वहां डौंर लम्बाई में छः इंच से अधिक नहीं होता। थाली काँसे की बनी होती है: और थाली को लांकुड़ से बजाया जाता है। जन जीवन के उल्लास के माध्यम ये ही वाद्य यंत्र हैं। जहां एक ओर ढोल दमौं के शब्दों से मरते हुये मनुष्य

का खून उबल जाता है तो वहीं डौंर, थाली और मुरली की मधुर आवाज से करूणा का सागर उमड़ पड़ता है।

गढ़वाल के इन नृत्यों का विद्वानों ने विविध तरीके से वर्गीकरण किया है। कोई गीत के आधार पर तो कोई उनमें पायी जाने वाली नृत्यात्मकता के आधार पर इनका वर्गीकरण करते हैं। इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप मनमाना वर्गीकरण तो अवश्य हुआ है लेकिन वैज्ञानिक विधि से कोई भी वर्गीकरण प्रस्तुत नहीं कर पाया है। जो कुछ भी प्रयत्न किये गये हैं उनमें घास काटने वाली का घसियारिन और खुंखरी के नाम से खुंकुरी जैसे नृत्यों की कल्पना की गई है। लेकिन इन्हे इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इन नृत्यों के पीछे धर्म और धार्मिक भावनाओं की गहरी पृष्ठभूमि है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सामूहिक नृत्यों से लेकर मनौती के रूप में आयोजित सभी प्रकार के घड़ियाली नृत्यों में धार्मिक भाव ही मूल प्रेरणा स्रोत है। धार्मिक प्रभाव के अतिरिक्त दूसरे नृत्य, जिनमें सामूहिक प्रवृत्ति पायी जाती है, उल्लास की भावना अधिक है लेकिन संख्या धर्म और धार्मिक प्रभाव को लेकर चलने वाले नृत्यों से अधिक नहीं है।

अतः हम गढ़वाल के नृत्यों को (1) धार्मिक प्रभाव वाले तथा (2) धार्मिक प्रभाव विहीन, इन दो वर्गों में बांटते हैं। धार्मिक प्रभाव वाले नृत्यों में (अ) सामूहिक अभिव्यक्ति के नृत्य (ब) व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति के नृत्य और धार्मिक प्रभाव विहीन नृत्यों में (क) सामूहिक वृत्ति वाले (ख) व्यक्तिपरक तथा(ग) त्योहार-पर्वों से सम्बन्धित नृत्यात्मक अभिव्यक्तियां आती हैं जो कि उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि धार्मिक प्रभाव वाले नृत्य। धार्मिक प्रभाव वाले सामूहिक अभिव्यक्ति के नृत्यों में पंडों अथवा पाण्डवों से संबंधित नृत्य अधिक हैं। इन नृत्यों की अभिव्यक्ति समूहगत होती है। एक ही स्थान पर सभी पाण्डव नाचते हैं। अतः इस दृष्टि से इन्हें (क) अर्जुन बाजा नृत्य (ख) नकुल बाजा नृत्य(ग) सहदेव बाजा नृत्य (घ) युधिष्ठर बाजा नृत्य (ड.) द्रोपदी बाजा नृत्य (च) कुन्ती बाजा नृत्य में विभाजित कर सकते हैं। दूसरी ओर व्यक्तिपरक धार्मिक प्रभाव वाले नृत्यों में घड़ियाली नृत्य मुख्य हैं। ये घड़ियाली बाजा नृत्य देव विशेषों और उनकी सन्तुष्टि के आधार पर चलते हैं। देव विशेष के नाम पर (अ) नरसिंह बाजा नृत्य (ब) नागराजा बाजा नृत्य (स) निरंकार बाजा नृत्य और (द) भैरों बाजा नृत्य हैं। इसके अन्तर्गत दूसरा वर्गीकरण शक्ति नृत्य का है जिसे भगवती का बाजा भी कहते हैं। तीसरी श्रेणी में हत्या तथा मातृकायें आती हैं। धार्मिक प्रभावविहीन सामूहिक प्रवृत्तियों पर चलने वाले नृत्यों में (1)

थड्या नृत्य और चोफुला नृत्य ही मुख्य हैं। व्यक्तिपरक नृत्यों में (1) बादी-बादीण नृत्य तथा (2) बादी नाट्य प्रदर्शन आते हैं। अंतिम और तीसरा वर्गीकरण त्योहार पर्वो से सम्बन्धित अभिव्यक्तियां हैं इनमें (1) होली (2) दीवाली के भैला नृत्य (3) माघ पंचमी का वसन्तोत्सव और (4) विरहानुभूति की सभी प्रकार की अभिव्यक्तियां आती हैं।
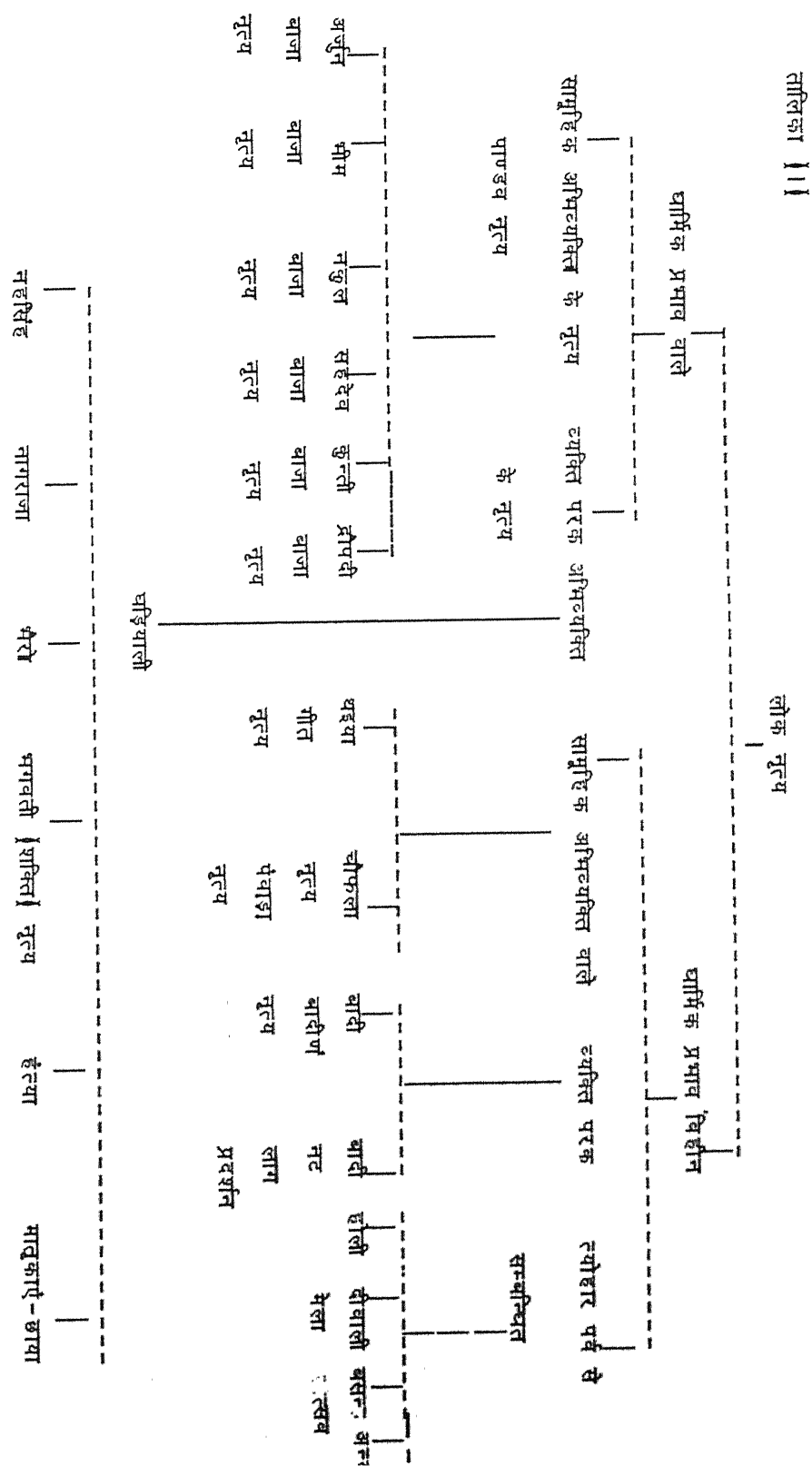
अपने वर्गीकरण और तालिका में हमने सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों जिनमें नृत्यात्मकता पायी जाती है, का उल्लेख नृत्यों के अन्तर्गत किया है। लेकिन दिये गये वर्गीकरण की व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति के नृत्यों को हम लोक नृत्य की वैसी परिभाषा के अन्तर्गत नहीं मानते हैं जैसे दूसरे सामूहिक नृत्यों अथवा समूहगत अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आने वाले नृत्य हैं। ये नृत्य, जिन्हें हमने व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति के नृत्यों के नाम से वर्गीकृत किया है वस्तुतः सामूहिक रूप से आयोजित नृत्य नहीं हैं बल्कि अवसर विशेष अथवा मनौती और "उचाणां" विशेष पर इनका आयोजन किया जाता है। नरसिंह, नागराजा, भगवती और हंत्या के ये बाजे व्यक्ति विशेष द्वारा किसी खास उद्देश्य और व्यक्ति विशेष द्वारा की जाती है। इसलिए इनके अन्तर में सामूहिक नृत्य की न तो प्रवृत्ति ही मिलती है और नहीं इनमें सामूहिक उल्लास और जन-भावना की प्रेरणा मिलती है। बादी और बादीण द्वारा प्रस्तुत लांक के प्रदर्शन में यद्यपि सामूहिक प्रवृत्ति नहीं है तो भी यह पेशेवर कला है और इसे जीविकोपार्जन के माध्यम के रूप में परम्परागत रूप से अभिनीत किया जाता है। होली के आयोजन में नृत्य की प्रधानता मिलती है। सामूहिक भैला देखने में भी व्यक्ति कौशल का अभाव नहीं है। लेकिन वसन्तोत्सव जैसी नृत्यपरक अभिव्यक्तियों में इतनी सामूहिक प्रवृत्ति नहीं है कि उन्हें हम ठीक माने में नृत्यों की संज्ञा दे सकें। अतः इस दृष्टि से हम लोक नृत्यों का दूसरा वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहें हैं:

तालिका (2)
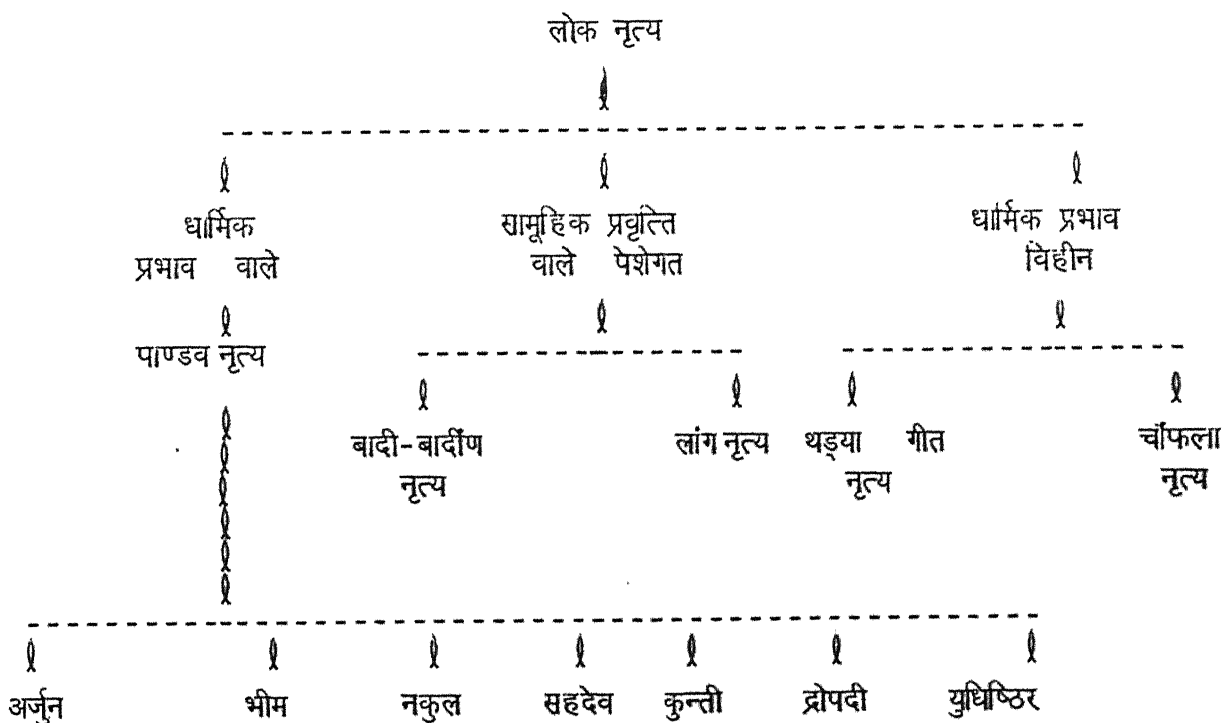
पंडौं (पाण्डव) नृत्य :

गढ़वाली लोक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति पांडव लोक नृत्य में मिलती है। जितना परिश्रमी और कठोर यहां का लोक जीवन है उतनी ही कठोर अभिव्यक्ति इस लोक नृत्य के द्वारा होती है। वीर रस प्रधान, कोमल कान्त भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर कठोरतम भावों की अभिव्यक्ति नृत्यों में हुई है। औजी के द्वारा देव विशेष का आह्वान किया जाता है। इस आह्वान में सम्बन्धित देव के गुणों की गाथा गायी जाती है। सहृदय और श्रद्धावान भक्तों द्वारा आह्वान्वित किये जाने वाले इन देवों में, प्रशंसा तृप्ति की उत्कट इच्छा होती है। अपनी इस तृष्णा की पूर्ति के लिए ये देव सद्आत्मा को प्रभावित करते हैं और अति मानवीय शक्ति प्रदान कर सम्बन्धित व्यक्ति को मानवीय स्तर से ऊँचा उठा देते हैं। देव आत्मा से प्रभावित हो जाने पर, असाधारण दैवी शक्ति प्राप्त करती आत्मा, देवात्मा, के अनुकूल कर्मो को कर उसकी तृष्णा पूर्ति करती है। इस तृष्णा पूर्ति हेतु मनुष्य आत्मा से वह अपना सम्बन्ध जोड़कर अपनी संतुष्टि करती है। अति मानवीय शक्ति वाली आत्मा को ही लौकिक प्राणी देवात्मा मानकर श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और पूजते हैं। इस प्रकार एक ही आत्मा के माध्यम द्वारा दो आत्माओं की आत्मिक तृष्णा की पूर्ति होती है। देवात्मा मनुष्यात्मा को प्रभावित कर अपनी इच्छित तृष्णाओं की तथा नश्वर प्राणी अति मानवीय आत्मा को अपनी आत्मा से उच्च मानकर, सुख का विशेष अनुभव करती है। इस व्यापार में एकत्रित जन समूह नाचने वाली अति मानवीय आत्मा के हाव-भाव एवं नृत्य कर्म से प्रभावित होकर तन्मय हो जाते हैं। नृत्य के साधारण रूप की तरह इस प्रकार के लोक नृत्यों में दर्शक, स्वयं मनोरंजन हेतु नर्तक के साथ नहीं कूद पड़ता। कला की रसनिष्पत्ति वाली अवस्था यहां पैदा हो जाती है और सहृदय लोग नाचने वाली, अति मानवीय गुणों वाली, आत्मा के साथ एकीकरण की अवस्था पैदा कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। पाण्डव नृत्य अपने समस्त वर्ग उपवर्ग के साथ प्रसन्नता प्राप्ति तथा रसानुभूति की अवस्था पैदा करते हैं। जहां देवात्मा मनुष्य आत्मा को प्रभावित कर अपनी तृष्णा की तृप्ति हेतु नश्वर प्राणी के शरीर में कंपन पैदा कर उसके मुंह से कहलाती है या स्वयं नाचती है, वहीं कला के रस निष्पत्ति वाले स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण होता है। जहां पंडौं नचाने का एकमात्र ध्येय मनोरंजन होता है, वहां कला का दूसरा रूप यानी प्रसन्नता प्राप्त करना ही रहता है। वादक स्वयं गाता हुआ झूम उठता है। पंडौं नृत्य अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, द्रोपदी के बाजों का ही सम्मिलित रूप है, यानी अर्जुन, सहदेव, नकुल बाजा ही पंडौं नृत्य है।

बाजा नृत्य प्रारम्भ करने से पहले ढोल और दमाऊँ से सजे औजी नौबत लगाते हैं। साधारण मनोरंजन के साथ गढ़वाल में नवरात्रि मण्डांणों (नौ दिन तक) में पांडवों को बाजे के साथ, नाचने की प्रथा भी है। नवरात्रि मण्डांण में देवों की अतृप्त तृष्णाओं की पूर्ति नश्वर प्राणी की आत्मा के साथ, एकीकरण के द्वारा की जाती है। मंगलाचरण यानी नौबत के पश्चात् मण्डांण लगता है। सबसे पहले औजी वृतभानता देवता के गुणों का बखान करता है। कथित देव के वृत भनाये जाने पर दर्शकों में से जिस किसी की आत्मा को देवआत्मा प्रभावित करती है, वह आत्मा उस देव की सब प्रकार की तृष्णाओं की पूर्ति इच्छित कर्म को करने पर करती है। सद्आत्मायें तथा दुष्ट आत्मा अपनी-अपनी तृष्णा हेतु चक्कर काटती हैं। किसी पवित्र मनुष्य आत्मा को प्राप्त कर सद्आत्माएं उसे अपने दैवी प्रभाव से ऊपर उठा देती है। इस प्रकार वृत मनाने के बाद जिस किसी पर देवात्मा का प्रभाव होता है उसके शरीर में कंपन पैदा होता है। उस कंपन से उसके हृदय तन्त्री के तार हिल उठते हैं। वह अपने नश्वर शरीर को भूल जाता है। उसकी आत्मा दैवी चेतना से प्लावित हो उठती है। दैवी चेतना के फलस्वरूप वह निचेत अवस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में देवात्मा के वशीभूत होकर, वह सदात्मा द्वारा इच्छित कर्मों को करके देवात्मा की संतुष्टि करता है। इस व्यापार के पश्चात् धूप-दीप से उसकी पूजा की जाती है। धूप की सुगंध उसकी प्राण शक्ति से टकराती है और वह पुनः अपनी चेतना को प्राप्त होता है। मण्डाण प्रारम्भ होता है। जीवन के कटु अनुभवों से ऊबा जन जीवन ढोल और दमौं के शब्दों से गदगद होकर थोड़ी देर के लिए अपने आप को भूल जाता है। वे नाचने वालों के बीच में स्वंय कूद पड़ते हैं। औजी ढोल के मनमोहक ताल प्रारम्भ करता है। अर्जुन के बाजे में "जैकला तू जडक जै ना ताक, भीम-गिजा गिजडी धिन्न गिता, नकुल-जैकता तु जड़े, सहदेव-तु जड़क जैकता जैनात, युधिष्ठिर-जैकता तु जक जैकता ताक" बोल फूट पड़ते हैं। इस नृत्य में मन की प्रसन्नता को व्यक्त किया जाता है। ये नृत्य अधिकतर ऐसे अवसरों पर आयोजित किये जाते हैं जब किसान फुर्सत पाते हैं। ढोल बजाते हुए दास से नाचते-कूदते नर्तक अधिकतर कहते सुने जाते हैं-"हाथ छालो तेरो दास पैर छालो मेरो, छांटो छड़ पड़ो गाई मर्दो (हे दास तुम्हारा हाथ ढोल पर जितनी जल्दी चलेगा मेरे पैर उतने ही तेज नाचेंगे हे मर्दों (वीरों) तुम सटकर न नाचो) इस नृत्य में दोनों हाथों को फैलाकर तथा दूसरे हाथ को कोहनी के बल मोड़कर नाचने की प्रथा यहाँ प्रचिलत है। नर्तक घुटनों के बल बैठकर भी नाचता है।

बाजा धीरे-धीरे शुरू होकर चरम परिणति पर पहुंचता है। ऐसे समय में नर्तक बड़ी मुस्तैदी से हाथ उठाकर हाथ-पावं को खूब फैलाकर नाचता है। "छांटो छड़वुड़ों तथा छंद सीं" विभिन्न प्रकार के वाक्यों से अपने आगे वाले नर्तक को सचेत करते हैं। अक्सर गोल दायरे में लोग नृत्य करते हैं। नाचते हुए लोगों के हाथ में डंडे रहते हैं। कभी-कभी नर्तकों के डंडे ही डंडे नाचते हुए नजर आते हैं। एक बाजे या वार्ता के समाप्त होने पर औजी ढोल को रोक लेता है। इस पर हाथ की एक अंगुली कान पर लगाये दूसरा हाथ ढोल पर रखे, नर्तक लम्बी ढोल से (टोन) बाजा मांगता है। इस अवसर पर औजी नर्तक की वार्ता को सुनता हुआ एक हाथ से ढोल पर थाप देता रहता है। नर्तक के कथन का समर्थन एवं उत्तेजना के लिये ऐसा किया जाता है। बाजे में नर्तक कान में अंगुली लगाये हाथ अपनी कमर या ढोल पर रखे इस प्रकार कहना शुरू करता है "अमर रयान तेरी राम तोता वाणी (तेरी वाणी अमर रहे), हृदय सागर(हृदय सागर अमर रहे)सोवन कनौठी(सोने की कनौटी), तामा विजेसार(तामा की विजेसार), नौ टंका नगार और सोलह टंक का ढोल पिता स्यामदास। माता महाकाली। लगौ मेरा दास तकनौरी रांसा जंगुली की सैर। अच्छा का झमाको। (हे मेरे दास तुम रांसा लगाओ, जंगलों की सैर की वार्ता लगाओ और झमाको लगाओ)।

नर्तक के वचनों को सुनकर औजी, गिजा-गिजड़ी के बोलों के साथ मांगे गये बाजे को प्रारम्भ करता है। इस प्रकार के मण्डाण हृदय जनित प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के लिये समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं।

घडियाली नृत्य

डौंर-थाली का सम्मिलित नाम ही बाजे के साथ घडियाली है। घडियाली नृत्य के अन्तर्गत आने वाले सभी बाजे नृत्यों से एक ही प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। किसी विपत्ति के आ जाने पर लोग देवताओं की मनौती मांगते हैं। लोक मानस का विश्वास है कि इस प्रकार से मनौती मंगाने से उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है। लेकिन जब ऐसा होता है कि वे देवता के उचांण(मनौती) को पूरा करना भूल जाते हैं या अहंकार में आकर उसे पूजते ही नहीं है। तो ऐसे समय देवता उनपर

रूष्ट हो जाते हैं और उनके बुरे कर्मों के फलस्वरूप उन्हें दण्ड देते हैं। इस प्रकार के दण्ड का परचा उनके लौकिक जीवन में आने वाली बाधाओं के रूप में सामने आता है। गाय, भैंस का अचानक मर जाना, छूट जाना, बदन पर चकत्ते निकलना, मुंह सूजना, दाद पैदा होना और कोढ़ी होना दोष माने जाते हैं। मनौती दिये जाने वाले देव का उच्चारणां संकल्पों की दृढ़ता, भावों की तन्मयता एवं श्रद्धा और विश्वास ही है। नरसिंग, नागराजा, भैरों, निरंकार, हंत्या लगभग सभी देवताओं को समभाव और श्रद्धा से पूजा जाता है। विशिष्टिता किसी एक देव की नहीं मानी जाती है। मानवीय जीवन को, सच्चाई के पथ की ओर अग्रसर करना ही, इन देवों की विशेषता है। जहां प्रसन्नावस्था में ये तीनों लोकों का वैभव प्रदान कर देते हैं, वहां असंतुष्ट होकर दारूण दुःख भी देते हैं। जब मनुष्य बुरे कर्मों की ओर उन्मुख होते हैं और सदाचार खो देते हैं एवं घृणित कर्मों को कर सदात्माओं को दुःख देते हैं तो ऐसी अवस्था में इन देवों के अनन्य भक्त मनुष्यों को उनके द्वारा की गयी प्रतिज्ञाओं के पूरा न होने पर दण्ड देते हैं। अचानक बाधायें उत्पन्न कर मनुष्य को उसके द्वारा किये गये पापों की चेतावनी देते हैं। ये देव विशेष स्वंय किसी प्राणी को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। जिस प्रकार सदात्माओं को उनके अनन्य भक्त घेरे रहते हैं, उसी प्रकार देवताओं को भी उनके अनन्य भक्त घेरे रहते हैं। मनुष्यों द्वारा प्रतिज्ञा किये जाने पर, शुभ कर्मों के न करने से देवात्मा को पीड़ा पहुंचाने के फलस्वरूप ये, उनको समुचित दण्ड देते हैं। यही दण्ड परचे का दूसरा रूप है। दण्डि किया व्यक्ति फिर एक बार अपने कार्यों के विषय में सोचता है। डोंर- थाली धमक उठती है। घर के सभी सदस्य ऐसे अवसर पर उपस्थित रहते हैं। देवात्मायें घर की सबसे उच्च मनुष्य आत्मा को प्रभावित कर उसके मुख से बोलती है। आत्मसंतुष्टि के लिए उपायों को बतलाती है और समुचित सम्मान प्राप्त कर, ग्रसित मनुष्य आत्मा को दुःख से मुक्त कर देती है। देव श्रद्धा और सम्मान के भूखे होते हैं। श्रद्धा सहित आहवन्वित किये जाने पर संतुष्ट हो सुख की वर्षा बरसाते हैं। डौंर-थाली के अतिरिक्त ढोल दमौं पर भी इन देवताओं के बाजे लगाये जाते हैं। ढोल दमौं के ही साथ केवल हत्याका बाजा लगाया जाता है।

धामी (नाचने वाला) जौ के भरे पाथे (माप का बर्तन) के बीच घी का दीपक जलवाता है। दीपक का मुंह पूरब की ओर होता है। दूसरे पाथे के ऊपर कांसे की मोटी थाली को उल्टा रख, एक हाथ थाली के किनारों पर तथा दूसरें हाथ पर लांकुड़ लिये थाली बजाना शुरू करता है। इसे बाजा कहा जाता है। बाजे में देव विशेष का आह्वान किया जाता है। आह्वान के तरीके भिन्न है। नरसिंग के

बाजे में "धामी गुरू खेकदास बिनौली कांठा कल्पण्यां, अजै पीठा गजै पीठा, सौरंग दे, सारंग दे राजा बगिया ताम पात्र को जागरे ये बाबा जागरे" कहता धीरे-धीरे थाली बजाता रहता है। डौंर वादक भी डौंर को बजाता हुआ अंतिम अलाप "जागरे बाबा जागरे" के साथ भौंण पूर्णता (अलाप भरता) है। भैरौं के बाजे में "धामी जुआरो मनौलो वीर बजरंगी, आदेशु लगैल्यौं गुरू तू वे लामा गुरू को है, वीर वीं धौला उडियारी रौल्यौं सुधी लेई मेरा बाबा। हे वीर नाक नीछ मुक जरा सुधी, जै घोल्या उडियारी होली जैकार चिलम, वीर आदेशु लगाये तिन वै लामा गुरू को" कहता हुआ अग्याल (अक्षित) उठा कर ताड़े मारता है। हंत्या के बाजे में "धामी औ ध्यान जागी जा ध्यान जागीजा, गड़् का बग्यां को भेल लमड्यां को, सर्प डस्या को विष खैकी मरयां को ध्यान जागी जा" कहता हुआ ताड़े मारता है। ठुला (निराकार, निरंकार) देवता के बाजे में धामी "मंगल बोला निरंकार मंगल बोला, रमा मंगल बोला बूढ़ा केदार, जोगी बाबा रैदास चमार" कहता डौंर-थाली को छणकाता (बजाता) है। प्रत्येक घडियाली नृत्य में डौंर वाला व्यक्ति भौंण पूर्णता (अलाप भरता) रहता है। आह्वान के पूरे होने पर धामी बाजा लगाना शुरू करता है।

नरसिंह बाजा-नृत्य

नरसिंह बाजा-नृत्य में धामी नरसिंह की कथा डौंर-थाली बजाता हुआ दुहराता है। जिस नायक की आत्मा को देव नरसिंह प्रभावित करते हैं उसके शरीर में कंपन शुरू होता है। कंपन के साथ वह अपनी चेतना को भूल जाता है। इस चेतनाविहीन अवस्था में देवआत्मा के प्रभाव स्वरूप मनुष्य आत्मा के मुख से देवात्मा अपनी लालसा एवं असंतुष्टि का कारण व्यक्त करती है और संतुष्टि के उपाय बतलाती है। समुचित सत्कार एवं संतुष्टि की शर्तों के पूरा हो जाने पर दुःख से परिवार को उबार लेती है। कंपन द्वारा जब मनुष्य अपनी शक्ति खो देता है और दैवी शक्ति से प्रभावित रहता है, ऐसे अवसर पर नर्तक देव विशेष के पौरूष को विभिन्न कलाबाजियों एवं हाव-भावों से व्यक्त करता है। पद्मासन की मुद्रा में बैठा नर्तक पहले बैठे-बैठे ही नाचता है। जोश में आकर फिर वह खड़ा हो जाता है और कठोर मुख-मुद्रा बनाये मुस्तैदी के साथ अभिनय करता है। इस बाजा-नृत्य में कलात्मकता को यथेष्ट स्थान मिला है। दर्शकगण अभिनय की विचित्रता से द्रवीभूत होकर तन्मय हो उठते हैं। नर्तक देवता के पौरूष के अनुकूल ही कार्य करता है। मोटे लोहे के बने छड़ों को मोड़ना एवं लोहे की संकल से शरीर को पीटना साधारण अपितु आश्चर्यजनक कलाबाजी है। कंपन आ जाने पर स्नान के लिये दौड़

जाना, नर्तक का ऐसा विचित्र कार्य है जिससे दर्शकों का मस्तक स्वतः ही देवता के चरणों में झुक जाता है। अन्त में धूप-दीप से नर्तक की पूजा की जाती है। देवता शांत हो जाते हैं और मुनष्य अपनी चेतना को पुनः प्राप्त होता है। इस नृत्य में बकरे को बलि देने की प्रथा संपूर्ण गढ़वाल में पायी जाती है।

नागराजा (नाग) बाजा :

गढ़वाल ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष की जातियों के परंपरागत विश्वासों में नाग-पूजन या नाग-नृत्य की प्रथा पायी जाती है। यद्यपि पूजन के तरीकों में बहुत भिन्नता है तो भी नृत्य की मुद्राओं एवं भाव-भंगिमाओं में साम्य पाया जाता है। इस नृत्य में नाग के नाचने का अभिनय किया जाता है। दूसरे देवताओं की भांति नाग देव भी मनुष्य को प्रभावित कर अपनी तृष्णा की पूर्ति करते हैं। धामी बाजा लगाना शुरू करता है। बाजे में कृष्ण की कथा का बखान किया जाता है। नर्तक के शरीर में अनोखा कंपन होता है। इस कंपन के फलस्वरूप उसकी मानवीय चेतना लोप हो जाती है और विलक्षण शक्ति के प्रभाव से आत्मा जगमगा उठती है। बकरे की बलि देना साधारण रिवाज समझा जाता है। कंपन के पश्चात् नर्तक उठ खड़ा होता है और हाथों को सिर से ऊपर उठाकर अभिनय करता है। जमीन में लेट कर कमर को अनोखे ढंग से मोड़ना एवं सांप की तरह लेट कर अभिनय करना, नर्तक की विशेषता है। यहां का यह नाग, सेम का नागराजा-कृष्ण हैं।

निरंकार बाजा नृत्य :

हरिजनों का निरंकार (ढुला देवता) जिससे अव्यक्त नाद, अव्यक्त नाद से ऊंकार, ऊंकार से विष्णु, विष्णु से नाभि, नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, समस्त गढ़वाल में हरिजनों के सिवाय और किसी दूसरे से नहीं पूजा जाता है। हरिजनों का विश्वास है कि जब निरंकार ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य जातियों के द्वारा नहीं थामा गया तो केवल हरिजन ही ऐसे थे, जो कि इस देव को बंधन में रख सके। जिस किसी के द्वारा भी यह देव अपनी पूजा चाहता है उसके नित्य प्रति के जीवन में कुछ विशेष घटनाएं घटती हैं। भ्रम निवारण के लिए वह पोथी न्यूतता (दोष का पता लगाता) है।

न्यूतने में दोष का स्पष्टीकरण होता है और वह संकल्प कर लेता है पूजा देने का। जिस दिन से उस पर देवता का प्रभाव पड़ जाता है उस दिन से वह पूरे साल तक बालों को रखता है तथा साल भर अपने हाथों खाना बनाता है। छुआ एवं चला भोजन नहीं करता। संयमनियम के विरुद्ध यदि

कोई चला तो उनका विश्वास है कि वह कोढ़ी हो जाता है। साल भर के बंधन में बंध जाने के पश्चात अन्त में वह पूजा देता है। इस पूजन में सुअर का बलिदान दिया जाता है। धामी 4 या 5 दिन तक बाजा लगाता है। इस बाजें में पंच-देवों की बैठक में नारद जी द्वारा पूछे गये प्रश्न कि सबसे बड़ा भक्त कौन है, के उत्तर की गाथा जो कि भगवान कृष्ण बताते हैं, का उल्लेख किया जाता है। किस प्रकार रैदास चमार द्वारा देव की आराधना की गयी और हीत जो कि रैदास चमार का चेला बना,किस प्रकार देवताओं द्वारा पिंजड़े में बंद किये जाने पर भी, पक्षी का रूप धारण कर निकल जाता है, की कथा है। नर्तक देवता के अनुकूल खड़ा होकर अभिनय करता है। इस अभिनय द्वारा यह देवता के पौरूष को लोगों के सामने रखता है। अंतिम दिन से पहले पूरे कुनबे के लोग 24 घंटे का उपवास रखते हैं। दिन में वे लोग पैंया पूजन के लिये जाते हैं और जब तक सुवर्ण गरूड़ पैंया के पेड़ के ऊपर नहीं आ जाता है, तब तक पेड़ को नहीं काटते हैं। पैंया पूजन में डौंर-थाली की छनछनाहट से वातावरण स्निग्ध हो जाता है। पैंया पूजन के बाद रात को अंतिम बाजा लगता है और फिर भोग लगाया जाता है। भोग लग जाने के पश्चात नर्तक बंधन से मुक्त हो जाता है।

हंत्या नृत्यः-

अचानक पहाड़ से गिर जाने पर, सांप के डस लेने तथा नदी में बह जाने एवं फाँस खा लेने पर जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसके मन में अपने आकस्मिक निधन के कारण जो लालसा अपने पुत्र-परिवार के प्रति रह जाती है, उसके कारण उसको सद्गति नहीं प्राप्त होती है। लालसा को लेकर मरने वाले उस व्यक्ति की आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। उसकी आत्मा अपनी मुक्ति के लिये भटकती रहती है। तृष्णा तृप्ति की इस दौड़ में वह आत्मा, संबंधित व्यक्ति या परिवार को मौका पाकर ग्रसित करती है। इस प्रकार अपनी तृष्णा की तृप्ति के लिये वह परिवार के दिन प्रतिदिन के कार्यों में बाधा डालती है। हंत्या या मृत अतृप्त-आत्मा, जीवात्मा को प्रभावित कर, अपनी तृष्णा की तृप्ति करती है। अतृप्त मृत आत्मा तृष्णा तृप्ति के लिये चक्कर काटती है और झपेटे (प्रभावित) जाने पर मनुष्य को अचेत कर देती है। इस व्यापार में मनुष्य चेतना विहीन हो जाता है और मृत आत्मा के वशीभूत होकर अंतिम लालसा एवं पीड़ा का दिग्दर्शन अभिनय द्वारा (जिस प्रकार का दुःख मृत आत्मा को प्राणांत के समय मिला हो) प्रस्तुत करता है। धामी मृत्यु की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन 'ध्यान जाग रे, ध्यान जाग रे' कहता हुआ मृत आत्मा (मृतात्मा) का आहवान करता है। जिस व्यक्ति की आत्मा को मृत आत्मा प्रभावित करती है, वह अक्सर देखा गया है, मृत आत्मा के प्रभाव स्वरूप अपनी आकस्मिक

मृत्यु के कारण उकसता है और फिर रोता है। रोने के साथ-साथ जिस व्यक्ति पर मृत आत्मा की मृत्यु के समय लालसा रहती है, वह उसे भेंटती है तथा गले लगाती है। कहीं-कहीं डौंर-थाली के अतिरिक्त ढोल पर भी हंत्या नचाई जाती है। लोक विश्वासों में यह नृत्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अन्य किसी भी जगह, मृत आत्मा का जीवात्मा के साथ ऐसे एकीकरण द्वारा, मृत आत्मा की तृष्णा की तृप्ति का विश्वास नहीं मिलता है। भूत (सूक्ष्म शरीर आत्मा) बोलता है और समुचित उत्तर पाकर अपनी तृप्ति करता है। अंत में धूप, दीप, नैवेद्य से उसकी पूजा की जाती है। इस तरह मृत आत्मा शांत होकर ग्रसित मनुष्य को मुक्त कर देती है।

छाया नृत्यः-

डौंर थाली की छनछनाहट में इस नृत्य को पूरे गढ़वाल में स्त्रियां अभिनीत करती हैं। यद्यपि यह पूरी तरह नृत्य नहीं है तो भी अछरी के झपटे में आ जाने पर अथवा कभी-कभी संतान की इच्छुक स्त्रियां अक्सर इस प्रकार नाचती हैं। धामी परियों का आहवान करता है। आहवान्वित किये जाने पर परियां, स्त्री, विशेष की आत्मा को प्रभावित करती हैं। उसके शरीर में कंपन पैदा होता है और वह खड़ी होकर नृत्य करना शुरू करती है। इस नृत्य में वह विशेष भावाभिव्यक्ति द्वारा दर्शकों की करूणा को प्राप्त करती है। अन्त में फूल-फल तथा रंग-बिरंगे कपड़े से सजी, जलती जोत सहित डोली को बहते पानी में बहा दिया जाता है। इस क्रिया को दरिया चलाना कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे सिलौंण भी कहते हैं।

शक्ति नृत्यः-

शक्ति नृत्य संपूर्ण गढ़वाल में स्त्रियों द्वारा अभिनीत किया जाता है। इस नृत्य में गढ़वालीपन की छाप है। औजी बाजा प्रारम्भ करने से पहले मंगलाचरण (दैत संकार) 'जलमते थलमते दैंता धारिणी नरसिंगी नारायणी' के पश्चात, बाजा प्रारम्भ करता है। इस बाजे में दैंतों के बल का वर्णन किया जाता है। देवताओं के शत्रु देत्यों का वर्णन सुनकर भगवती को जोश आता है। वादक 'जै बोला तेरो ध्यान जागलो। ऊँचा धौला गढ़ तेरा दैंत चढ़ि गैन जोग माया, कहता अंगुली कान पर लगाये अन्त में लम्बी ढौल(अलाप) भरता है। ढोली, दमैया के साथ एक आदमी अलाप भरने के लिये साथ में खड़ा रहता है। इस व्यक्ति का काम ही अंत में अलाप भरना ही होता है। भगवती का बाजा प्रारम्भ होने पर जिस युवती पर भगवती आती है उसके शरीर में जोर का कंपन शुरू होता है। अंग फड़कने लगते हैं। वह किलकारी मारती है। पैरों तक की लम्बी धोती के एक छोर से कमर कसे हुए, सिर पर लाल चिरपाट बांधे, दाहिने हाथ में अग्याल से भरी थाली लिये एवं बाँये हाथ में खण्डग थामें, नृत्य करती है। औजी बाजा लगाता हुआ ढोल के विभिन्न तालों को बदलता चलता है। बाजा धीरे-धीरे चरम परिणति पर पहुंचता है। बाजे के चरम परि'णति पर पहुँचते ही नर्तकी पूरी शक्ति के साथ-साथ वह औजी के ताल बदलने पर गोल घेरे में चारों ओर चक्कर काटती है। नृत्य के बीच-बीच में बोलना एवं किलकारी मारना नर्तकी की एक विशेषता मानी जाती है। इस नृत्य का सामूहिक आयोजन देवात्मा की प्रसन्नता एवं संतुष्टि के लिये किया जाता है। आहवान्वित देव अंत में इच्छानुकूल सम्मान प्राप्त कर शांत हो जाते हैं। कहीं-कहीं एक ही समय में चार-चार, पाँच-पाँच स्त्रियां भी नृत्य करती पायी जाती हैं।

थड्या गीत नृत्यः-

बसंत पंचमी के आगमन पर जब लोग खेती के काम से निवृत्त हो जाते हैं, पेंड़-पौधों पर नयी कोपलें आती हैं और सर्वत्र बसंत की मादकता छायी रहती हैं, ग्रामीण स्त्री-पुरूष जोन्याली रातों में एकत्रित होकर थड्या गीत नृत्य प्रारम्भ करते हैं। इस नृत्य में नर्तक बिना वाद्य यंत्र के ही नाचते हैं। ये नृत्य गीतमय हैं। गीत बोलों के साथ ही नर्तक एवं नर्तकी गढ़वाली ठाट के साथ हाथों को एक दूसरे की कमर में डाले बायें से दांयीं ओर घूमते गोल घेरे में, अर्द्ध चन्द्राकर पंक्ति में, खिसकते हैं। इनके सधे हुये पैर समान दूरी पर बढ़ते और पूर्ववत् अपने स्थान पर चले आते हैं। थोड़ का अर्थ ऐसी जगह से होता है, जिस पर किसी का अधिकार न हो और लम्बी-चौड़ी हो। इस प्रकार थड्या गीत नृत्य हैं जो उपुर्यक्त स्थान पर सामूहिक रूप से बिना किसी भेदभाव के प्रस्तुत किये जाते हैं। गीत की एक पंक्ति

कों एक पक्ष स्त्री या पुरूष पहले गाता हुआ नृत्य करता है और फिर दूसरी पंक्ति वाले गाते और नृत्य करते हैं। ये नृत्य बसंत पंचमी के दिन से संक्रान्ति तक पूरे गढ़वाल में अभिनीत किये जाते हैं। इन नृत्यों में गढ़वाली गले की मिठास और नृत्य ठाठ का अनोखा मिश्रण है। पैरों कीसरसराहट और वस्त्रों की खसखसाहट सें वातावरण स्निग्ध हों उठता है।

चौफूला गीत नृत्यः-

गढ़वाली ठाठपन और संस्कृति का प्रतीक चाफुला नृत्य है। सही रूप में यह गढ़वाल के लोक कलाकारों की अमर कृति है। शायद किसी दूसरे लोक नृत्य विश्वासें में इतना सही मूल्यांकन जाति विशेष के विश्वासों का हुआ हो। घुटनों तक की धोती, कमर के ऊपर मिरजई तथा सिर पर साफा बांधे कलाकार चाफुला खेलने के लिये उतरते हैं। इस नृत्य में चार व्यक्ति एक ही वेशभूषा में सजे, गोलाकार घेरें में खड़े होते हैं। गीत बोलों को दो व्यक्ति पहले गाते हैं फिर गीत गाने के साथ ही चारों व्यक्ति अपने दाये-बायें हाथों को मिलाते हैं। एक हाथ एक व्यक्ति से मिलाने के बाद जोर से एक साथ ताली पीटते हैं। इस प्रकार दूसरे हाथ को दूसरे व्यक्ति से मिलाने के पश्चात फिर ताली पीटते हैं। हाथों को मिलाने और ताली पीटने का क्रम अंत तक चलता है। ताली पीटते और गीत गाते नर्तक पैरों को भी आगे-पीछे बढ़ाते जाते हैं। अक्सर दायें से बायें की ओर पैर चलते हैं। दाहिनी ओर मुड़कर फिर वह पूर्ववत अपने स्थान पर आ जाता है तथा बायीं ओर पैर बढ़ा कर प्रथम अवस्था में आना ही इस नृत्य की विशेषता है। कुशल नर्तकों के सधे हाथ-पैर चतुरता से इस व्यापार को निभाते हैं। दर्शकगण आत्म विभोर हो उठते हैं। पुरूषों के साथ स्त्रियां भी नृत्य की अनूठें ढंग से प्रस्तुति करती हैं। अंगूठे तक की धोती के सिर वाले छोर से कमर कसे गले में जंतर सहित माला डाले, मूंगे से गले को सजाये, कानों पर वजनी झूमक पहिनें तथा हंसुली एवं नथ व बेसर को अनोखे ढंग से हिलाती हुई, गोलाकार घेरे में खड़ी हाथों को एक दूसरे से मिलाती ताली पीटती, दायें से बायें घूमती ये युवतियां 'नणद तेरू दादू का गयूंच-दादू सुनार की ओढी छ' गीत गाती हुई नृत्य में मस्त नजर आती हैं। इस नृत्य का आयोजन मन की प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये किया जाता है। खेती के काम से निपटने के बाद ही, गढ़वाली समाज चाफुला गीत, नृत्य में मस्त दिखायी देता है। जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण इस लोक नृत्य में पाया जाता है।

कों एक पक्ष स्त्री या पुरूष पहले गाता हुआ नृत्य करता है और फिर दूसरी पंक्ति वाले गाते और नृत्य करते हैं। ये नृत्य बसंत पंचमी के दिन से संक्रान्ति तक पूरे गढ़वाल में अभिनीत किये जाते हैं। इन नृत्यों में गढ़वाली गले की मिठास और नृत्य ठाठ का अनोंखा मिश्रण है। पैरों कीसरसराहट और वस्त्रों की खसखसाहट सें वातावरण स्निग्ध हो उठता है।

चौफूला गीत नृत्यः-

गढ़वाली ठाठपन और संस्कृति का प्रतीक चाफुला नृत्य है। सही रूप में यह गढ़वाल के लोक कलाकारों की अमर कृति है। शायद किसी दूसरे लोक नृत्य विश्वासें में इतना सही मूल्यांकन जाति विशेष के विश्वासों का हुआ हो। घुटनों तक की धोती, कमर के ऊपर मिरजई तथा सिर पर साफा बांधे कलाकार चाफुला खेलने के लिये उतरते हैं। इस नृत्य में चार व्यक्ति एक ही वेशभूषा में सजे, गोलाकार घरे में खड़े होते हैं। गीत बोलों को दो व्यक्ति पहले गाते हैं फिर गीत गाने के साथ ही चारों व्यक्ति अपने दाये-बायें हाथों को मिलाते हैं। एक हाथ एक व्यक्ति से मिलाने के बाद जोर से एक साथ ताली पीटते हैं। इस प्रकार दूसरे हाथ को दूसरे व्यक्ति से मिलाने के पश्चात फिर ताली पीटते हैं। हाथों को मिलाने और ताली पीटने का क्रम अंत तक चलता है। ताली पीटते और गीत गाते नर्तक पैरों को भी आगे-पीछे वढ़ाते जाते हैं। अक्सर दायें से बायें की ओर पैर चलते हैं। दाहिनी ओर मुड़कर फिर वह पूर्ववत अपने स्थान पर आ जाता है तथा बायीं ओर पैर बढ़ा कर प्रथम अवस्था में आना ही इस नृत्य की विशेषता है। कुशल नर्तकों के सधे हाथ-पैर चतुरता से इस व्यापार को निभाते हैं। दर्शकगण आत्म विभोर हो उठते हैं। पुरूषों के साथ स्त्रियां भी नृत्य की अनूठें ढंग से प्रस्तुति करती हैं। अंगूठे तक की धोती के सिर वाले छोर से कमर कसे गले में जंतर सहित माला डाले, मूंगे से गले को सजाये, कानों पर वजनी झूमक पहिने तथा हंसुली एवं नथ व वेसर को अनोखे ढंग से हिलाती हुई, गोलाकार घेरे में खड़ी हाथों को एक दूसरे से मिलाती ताली पीटती, दायें से बायें घूमती ये युवतियां 'नणद तेरू दादू का गयूंच-दादू सुनार की ओढी छ' गीत गाती हुई नृत्य में मस्त नजर आती हैं। इस नृत्य का आयोजन मन की प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये किया जाता है। खेती के काम से निपटने के बाद ही, गढ़वाली समाज चाफुला गीत, नृत्य में मस्त दिखायी देता है। जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण इस लोक नृत्य में पाया जाता है।

पंवाड़ा गीत नृत्यः-

बिना वाद्य यंत्रों की सहायता से गीतकार नर्तक, नृत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति करता है। नर-नारियों का एकत्रित समूह तनमय होकर झूम उठता है। गायक, नर्तक, तर्जनी को कान पर लगाये ऊँचे स्वर से गाना शुरू करता है। गाते-गाते नर्तक झूम उठता है। मुख के भावों द्वारा विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति करता जाता है। इस गीतनृत्य द्वारा जिस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति होती जाती है,उसी प्रकार का प्रभाव दर्शकों पर पड़ता जाता है। जहां वीर भावों की अभिव्यक्ति से दर्शक तिलमिला उठते हैं वही करूण भावों की अभिव्यक्ति से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। इस नृत्य में गीत बोलों एवं मुख मण्डल के भावों की अभिव्यक्ति द्वारा दर्शकों का मनोरंजन किया जाता है। रसनिष्पत्ति वाली अवस्था इस गीत में समाहित मिलती है।

व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियाँ:-

सामूहिक अभिव्यक्ति के नृत्यों के बाद अब हम व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित करेंगें। इसके अन्तर्गत (1) बादी-बादीण नृत्य शैली और (2) लांग की अद्भुत अभिव्यक्ति मिलती है। व्यक्तिपरक नृत्यों की बादी नाच शैली विशेष महत्व की है जिसमें बादी की ढोलकी के साथ बादीण नृत्य प्रस्तुत करती है। लोक नृत्यों की वह विशेष शैली है जो कि पेशेवर कला के रूप में आज गढ़वाल के हर हिस्से में प्रचलित मिलती है। इन नृत्यों का प्रस्तुतिकरण जहां एक ओर खुले मैदानों में होता है वहीं दूसरी ओर लुक-छिपकर ओवरों में भी पाया जाता है। खुले मैदान में ये नृत्य जितने लोकप्रिय हैं, घर-घर के "ओवरो" में ये उतने ही बुरे समझे जाते हैं। बादी नट नाट्य कला का सीधा सम्बन्ध खेती-बाड़ी से है। इस नाट्य के समय बादी द्वारा कही जाने वाली कथा में जमीन के मालिक जमींदार से वह खेती का अपना हिस्सा मांगता है।

खेल की समाप्ति के बाद बादी के बालों से मिट्टी का ढेला छुआ दिया जाता है और उसे खेतों में बिखेर दिया जाता है। इस धारणा के पीछे ऐसा विश्वास है कि इस मिट्टी को खेतों में बिखेरने से खेतों के सभी कीड़े मर जाते हैं और फसल अच्छी होती है। धार्मिक दृष्टि से ये शिव के "भक्त" होते हैं और इनके इस आयोजन में शिव सम्बन्धी भजनों, गीतों और स्वांगों की अधिकता पायी जाती है। बादी लोग गांव में लांग (बांस का लम्बा डंडा) का आयोजन करते हैं। ऐसा गांव, जिसमें इसका आयोजन किया जाता है इसके धार्मिक महत्व के कारण अन्न के साथ धन देकर इस बादी परिवार का सम्मान करता है। इसके पीछे धर्म के साथ पेशेगत धारणा बहुत अधिक पायी जाती है। पेशेवर नृत्य कला की इस व्यक्तिपरक शैली में मुख्य नृत्य बादीण द्वारा किया जाता है। बादी नृत्य में ढोलक बजाकर

गीत गाता है और नृत्य में विभिन्न प्रभावकारी शब्दों, यानी दूसरे अर्थों में स्थानीय बोली में रहस्यमय अश्लील शब्दों का उच्चारण कर मनोरंजक स्थिति पैदा करता है। नृत्य में सामान्यतः एक बादीण ही नृत्य करती है। बादी द्वारा गीत की एक कड़ी (लाइन) कही जाने पर बादींण कड़ी को दुहराती, गोल घेरे में घूमकर नृत्य करती है। ऐंसी भी बात नहीं है कि इसमें एक ही बादींण नाचती हो कभी-कभी दो और दो से अधिक औरतें भी सज-धज कर नाच करती हैं। नृत्य में मुख्याकर्षण गीत की कड़ी दुहराने और गोल दायरे में घूमकर घाघरे की अस्पष्ट तो भी स्पष्ट बनती रेखा की गोलायी में दर्शकों को मोहित कर देना है। इन नृत्यों का आयोजन व्यक्तिगत घरों से लेकर सामूहिक रूप में भी किया मिलता है। जिसमें गांव के सभी लोग दर्शक पाये जाते हैं। सामूहिक रूप से मंच पर खड़ी होकर नाचने वाली, गढ़वाल में ये ही युवतियां है और इसी वर्ग ने पेशे के रूप में इस कला को जीवित रखा है। चूंकि इस कला के पीछे पेशेगत भावना है इसलिए कला के सौंदर्य पक्ष को छोड़कर, पैसे कमाने की इनकी मनोवृत्ति के कारण कुछ लोग इन नृत्यों को हिकारत की द्रृष्टि से भी देखते हैं। लेकिन लोककला में इनका अपना महत्व है। सामूहिक मनोरंजन के ये आधार हैं। आज सिनेमा और अर्वाचीन सभ्यता के संपर्क में जो लोग आ गये हैं, उनमें से कुछ ने इस पेशे को छोड़ ही दिया है। बदलती परिस्थितियों के साथ ये नये गीत साहित्य का भी निर्माण करते आ रहे हैं और नृत्य की शैली में भी विशेषकर सिने तारिकाओं का अनुकरण कर, आकर्षक स्थिति पैदा करने में समर्थ हुए हैं। नाच का मंच या तो खुला स्थान होता है अथवा गांव के "ओबरे" पाये जाते हैं। लांग के समय ये आकर्षक अभिनय प्रस्तुत कर खूब पैसा कमाते हैं।

भैला-भैला नृत्यः-

दिवाली के अवसर पर भैला-भैला नृत्य की जगमगाहट से संपूर्ण गढ़वाल के गांव-गांव जगमगा उठते हैं। किंवदंती है कि भगवान रामचन्द्र के आयोध्या से लौट आने पर प्रसन्नता से आयोध्यावासियों ने सारे शहर को रोशनी से परिपूर्ण कर दिया था। इस दिन की याद को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये भैला-भैला नृत्य (रोशनी नृत्य) किया जाता है। यह नृत्य दो दिन तक चलता है। इसमें पुरूष अपनी कलाबाजी दिखाते हैं। पहले छीला (चीड़ के पेड़ की गिरी) का पूजन किया जाता है और फिर गांव के बालक, युवा सभी देव स्थान में एक दो-जले छीलों को देवता को समर्पित करते हैं। इसके पश्चात् नर्तक छीलों के छोटे-छोटे गट्ठर बनाते हैं और उसे बीचोंबीच से मजबूती के साथ बांधते हैं। ढोल व दमौं के

साथ लोगों का जत्था निश्चित स्थान पर पहुंचता है। नर्तक छीलों के गट्ठर, जिसे भैला के नाम से पुकारा जाता है, को अपनी कमर पर लम्बी रस्सी के सहारें बांधता है। इसके बाद भैला के दोनों और आग लगा दी जाती है। जब भैला जोरों के साथ जलना शुरू हो जाता है, तो नर्तक भैले की रस्सी को घुमाना प्रारम्भ करता है। इस प्रकार भैला तेजी के साथ गोल घेरे में घूमता रहता है। नर्तक कमर को इस प्रकार हिलाता है कि रस्सी के बल कमर पर बंधा भैला भी साथ घूमता चलता है। नर्तक भैले को टांग उठाकर दोनों जांघों के बीच घुमाता जाता है। अक्सर चार-चार, पांच-पांच नर्तक एक ही साथ मैदान में उतर कर अपनी कला-प्रदर्शन करते हैं। इन नृत्यों का सामूहिक आयोजन मनोरंजन के लिये किया जाता है। भैले का पीठ के बल घुमाना, एक पैर को उठाकर भैले को जांघों के अन्दर करना तथा तीन-चार नर्तकों का विशेष कौशल के साथ एक दूसरे के आमने-सामने निकलना एवं बीच-बीच में खड़े होकर भैले को पूर्ववत घुमातें रहना, कुशल नर्तकों की कला के अनोखे उदाहरण हैं, जिसे ये कलाकार नर्तक प्रस्तुत करते हैं।

होली नृत्यः-

अबीर गुलाल की बौछारों के बीच मस्त पर्वतीय समाज ढोलक के बोलों के साथ-दसरथ को लछिमन बाल जती चौदह बरस सीता संग रैयौ पाप निलागी एक रती-, गाता हुआ सुनायी देता है। इस नृत्य के अवसर पर वे सब कुछ भूल जाते हैं और बिना जाति-पांति का भेद-भाव किये रंग की बौछारें एक कोने से दूसरे कोने तक चलती रहती हैं। इस अवसर पर स्वांग निकालना विशेष प्रथा है। झुण्ड के झुण्ड लोग "तमाशबीन" बनकर गाते हुये स्वांगी के पीछे-पीछे चलतें हैं। नर्तक ढोलक वाद्य यंत्र के साथ नाचते हैं। होली गीत नृत्य में, युवक ही भाग लेते हैं। ये नृत्य परम्परागत विश्वासों के प्रतिफल हैं। साल के लम्बे समय से ऐसे अवसर की टोह में रहकर, लोग एकत्रित होकर समूहगत प्रसन्नता को व्यक्त करते हैं।

गढ़वाली लोंक नृत्यों की विशेषताएं

गढ़वाली लोक नृत्यों की विशेषताएं निम्नवत् हैं-

(1) इनमें समूहगत अभिव्यक्तियों की अधिकता मिलती है।

(2) व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियों का अभाव है।

(3) पेशेगत और समूहगत अभिव्यक्तियों का स्पष्ट विभाजन है।

(4) समूहगत अभिव्यक्तियों में लोक के लदबदे स्वरूप की अधिकता है।

(5) पेशवर कला में निखार के कौशल के स्थान पर, भौड़े आकर्षण को पैदा करने की प्रवृत्ति है।

(6) संगीत और गीत साथ चलते हैं।

(7) मुख्य अभिव्यक्तियां पाण्डव नृत्य मानी गई हैं।

(8) पद संचालन की विशेष रीति है।

(9) वाद्य-यंत्रों के साथ मुख्यरूप से ढोल दमौं का प्रयोग होता है।

(10) धार्मिक पृष्ठ भूमि लिए, नृत्याभिव्यक्तियां मिलत हैं।

(11) मृतआत्मा का जीवआत्मा की आत्मा में प्रवेश का अनोखा विश्वास है।

(12) लोकरंजन इनका मुख्य उददेश्य है।

(13) नृत्यों के आयोजन में, पर्वो-त्योहारों, खेती के मुहूर्तो और फुरसत के क्षणों का अधिक महत्व है।

(14) ये नृत्य सामाजिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हैं

(15) वेशभूषा साधारण मिलती है।

(16) इनमें देवताओं के आवतरित होने की प्रवृत्ति है।

(17) आदि देवों के व्यक्तिपरक नृत्यों में सामूहिक प्रसन्नता के स्थान पर देव तुष्टि का भाव अधिक मिलता है और

(18) इनमें पद संचालन में गढ़वालीपन और ठाट की अभिव्यक्ति है।

अध्याय - 10

गढ़वाल का लोक संगीत

गढ़वाल के लोकगीतों की स्वर रचना के आधार पर उनकी लोकधुनों का निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है-

(1) जिनमें शब्दों और स्वरों की सादगी है। उतारचढ़ाव कम होता है तथा शब्दों में लालित्य कम पाया जाता है

(2) जिनमें गायन की सामूहिक प्रवृत्ति और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति मिलती है

(3) व्यावसायिक समूह की नई रोशनी और नये जमाने के स्वर । शब्द और स्वरों की रचना की दृष्टि से सरल स्वर

(4) पूजा, अर्चना, रतजगा के भजन के स्वर । सीमित दायरे के किन्तु विवेकशील भक्तिपूर्ण भजन। इनमें रागों का स्वरूप स्पष्ट नहीं है

(5) शक्ति और शौर्य के प्रतीक लम्बीतान के स्वर, इनमें बीरता का ओज उतार चढ़ाव अधिक और शब्द लालित्य है

(6) दबे स्वर, भारी आह लिए विरह के स्वर। शब्द मार्मिकता लिये हैं, उतारचढ़ाव कम है

गढ़वाल की लोकधुनों का स्वररचना के आधार पर किये गये अपने इस वर्गीकरण के पश्चात अब हम जनपद के लोक संगीत का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। वैज्ञानिक आधार पर हमारा किया गया यह वर्गीकरण इस क्षेत्र में पहला और मौलिक है, जो प्रस्तुत है

(अ) मांगल के स्वर (ब) व्रत-त्योहार व स्तुतिपूजा के स्वर(स) विरह तथा ऋतुओं से सम्बन्धित स्वर (द) सामूहिक गीतों के स्वर (य) तंत्रमंत्र के स्वर (र) लघुगीतों के स्वर तथा (ल) जातियों के स्वर ।

लोक संगीत के प्रकार

लोक धुनों का स्वररचना के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत करने के बाद अब हम गढ़वाल के लोक संगीत के प्राप्त लोक गीतों, उनके स्वरों, उनके शब्दों और उनके अन्दर पाये जाने वाले भावोद्वेग के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे।

लोक संगीत का वर्गीकरण इस प्रकार है:-

(1) मांगल के स्वर (2) ब्रतत्योहार, स्तुतिपूजा रतजगे के स्वर (3) विरह, खुद तथा ऋतुओं के स्वर (4) सामूहिक गेय गीतों के स्वर (5) तन्त्रमंत्र के स्वर (6) लघुगीतों के स्वर तथा (7) जातियों के स्वर । मांगल स्वरों के अन्तर्गत लोक मानस की मंगलमय वाणी के दर्शन होते हैं। ये स्वर यद्यपि सोलह संस्कारों से सम्बन्धित हैं तो भी मुख्य रूप से जन्म तथा विवाह के विविध संस्कारों में इन मंगलमय वाणियों अथवा सुहागिनों के मंगल बोलों को सुनने का अवसर मिलता है। गढ़वाल के गीतों में इनका महत्व अधिक है और चूंकि इनका उद्देश्य मंगल की आकांक्षा करना है इसलिए इनमें मधुर और उल्लसित विश्वास की अभिव्यक्ति मिलती है। स्वर ऊंचे नहीं मिलते। चढ़ान अधिक नहीं है। सामान्यतः स्थायी में गाये जाते हैं। ब्रतत्योहार रतजगे के स्वर सामूहिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के प्रतिफल हैं। लोक जीवन में धार्मिक दृष्टि से इनका महत्व कम नहीं है। देवस्थान में इस प्रकार के स्वरों को सुनने का अवसर प्रायः मिल ही जाता है। इनमें स्वरों का उतारचढ़ाव सामान्य मिलता है। भावोन्मेश की अधिकता रहती है। संगीत सरल और स्थायी में ही चलता है। विरह, खुद और ऋतुओं से सम्बन्धित स्वरें में दाम्पत्य जीवन की विरह वेदनाएं, नवनवेलियों की मायके की ललक और पति के विरह सम्बन्धी मार्मिक अभिव्यक्तियां मिलती हैं। बारहमासे इन्हीं के अन्तर्गत हैं जिनमें खुद जैसी अभिव्यक्तियां भी पायी जाती हैं। इन स्वरों में हृदय का दबा 'उमाल' सरल रूप में अभिव्यक्त किया गया है। गीत स्थायी में चलते हैं तथा स्वरों में अधिक उतारचढ़ाव नहीं है। सामूहिक अभिव्यक्ति के स्वर गढ़वाल में अधिक लोक प्रिय हैं। इनके शब्दों में सौन्दर्य और लालित्य की अधिकता है। ये शूरता और वीरता की भावना से ओतप्रोत मिलते हैं। इनमें उठान अधिक है। स्वरों में उतारचढ़ाव अधिक होने के कारण इनमें ओजपूर्ण लम्बी ढौल की अभिव्यक्ति हुई है। शब्द जोशीले और लालित्य लिए हैं। मंत्रतंत्र की भाषा और स्वर वीभत्स हैं। अभिव्यक्ति का स्तर भी वही है । यह जादूटोना तथा सम्मोहन का मंत्र बल विधान है। शब्दसौंदर्य और लालित्य के स्थान पर भयावह प्रस्तुति अधिक है। लघु गीतों के स्वर सरल हैं। प्रायः स्थायी में गाये जाते हैं। जातियों के गीतों में, परम्परागत पेशे के रूप में औजियों द्वारा अभिव्यक्त गीतों के स्वर सरल होते हैं। इनमें उठान अधिक नहीं होती । शब्द लालित्य के स्थान पर इतिवृत्तिता अधिक मिलती है। वादियों के गीत स्थायी में चलते हैं। इनमें उठान कम तथा भाषागत लालित्य अधिक पाया जाता है।

लोक वाद्यकार

लोक संगीत के ﴾1﴿ स्वर तथा ﴾2﴿ वाद्य, दो विभाग हैं। स्वर विभाग के अन्तर्गत स्वर रचना के आधार पर गढ़वाल के लोक संगीत का वर्गीकरण किया गया है। इसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख संक्षिप्त टिप्पणियां देकर किया गया है। तीसरा भाग, लोक गीतों के सरगम का है। वाद्य के क्रम में हमने ﴾1﴿ ढोल सागर और ﴾2﴿ विविध वाद्य और उनका वादन उपविभाग किये हैं। इन दोनों उपविभागों में ढोल सागर के अतिरिक्त, दूसरे यंत्रो को बजाने का इतना बड़ा विधान नहीं मिलता है। ढोल से सम्बन्धित इस विद्या को ढोल सागर नाम, उसकी विशालता, विस्तार और विविधता के कारण ही दिया गया है। इसका अपना विधान है और तरीका है। दूसरे वाद्य यंत्र सामान्य वाद्ययंत्रों की तरह मिलते हैं और उनका प्रयोग भी सामान्य ही होता है। इस विद्या को अच्छी तरह समझने के लिए हम इससे सम्बन्धित वर्ग या जातियों का परिचय देना उचित समझते हैं। गढ़वाल में वादक जातियों में मुख्य ﴾1﴿ औजी तथा ﴾2﴿ वादी हैं। वादियों से मिलतेजुलते ढाकी तथा मिरासी मिलते हैं। ﴾1﴿ औजी गढ़वाल की मुख्य वादक जाति है। ये लोग गढ़वाल में शादी से लेकर धार्मिक प्रकार के सभी खेलबोलों में, वाद्य यंत्र ढोलदमौं बजाते हैं। इनके ढोल को शुभ और मंगलमय समझा जाता है। गीतों में ढोल को, पहले 'पिठाई' लगाने की बात कही गई है। लोक जीवन के साथ ढोल और ढोलदमौं तथा यह वादक जाति इतनी घुलीमिली है कि समाज में इसे एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। मंगलमय अवसरों पर इनके ढोलदमौं को मान दिया गया है। पेशे से ये लोग ढोल बजाने के साथ गांवों में कपड़ा सीने का भी काम करते हैं। अतः इन्हें औजी के साथसाथ दर्जी भी कहा जाता है। गांवों में कपड़े सीना ही इनका मुख्य पेशा है। ढोल वादन में ये पारंगत होते हैं। खेत-खलिहान से इन्हें साल में 'डडवार' के रूप में अन्नमिलता है। वादक जातियों में इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा सब से अधिक है। इसीलिए मंगलमय कार्यों में इन्हें तथा इनके ढोल को बड़ा सम्मान मिला है। वादकों में दूसरे हैं ﴾2﴿ वादी वर्ग के पेशेवर लोग । इनके साथ ढाकी तथा मिरासी दो और उपवर्ग मिलते हैं। लोक जीवन के साथ वादी वर्ग का घनिष्ट सम्बन्ध है। ये लोग ढोलक के साथ नाचनेगाने का काम करते हैं। इनके वादन का सम्बन्ध सामान्य मनोरंजन से होता है। ये गीत रचते हैं। गढ़वाल की लोकनाट्य परम्परा में स्वाँग शैली के नाट्याभिनय इनकी बड़ी देन हैं । ये एक प्रकार का धार्मिक भाव लिए किसान से अपना बाँटा उगाने के लिए विर्तियों में लाँग नट नाट्य का प्रदर्शन करते हैं। ये लोग इसे धार्मिक जामा पहना कर प्रस्तुत

करते हैं जिसमें शिवपार्वती को बहुत महत्व दिया जाता है। गढ़वाल के साहित्य में नये जमाने की नयी रीति पर आधारित गीत इसी समाज की देन हैं। लोक संगीत के क्षेत्र में इन्होंने लोक गीतों को नईनई धुनें दी हैं। इन दो वर्गों के अतिरिक्त धामी है जिसे 'घडयाल्या' भी कहा जाता है। यह एक पेशा है लेकिन इसे जातिगत् या वर्गगत् पेशे का रूप नहीं मिला है। चारों वर्णो के लोग धामी का कार्य करते पाये जाते हैं। झाड़, फूंक तथा बाजे लगाना इनका मुख्य काम है। इसमें सन्देह नहीं कि ये इसी पेशे से रोटी खाते हैं लेकिन इनका कोई वर्ग या जाति नहीं होती जिसे हम नाम विशेष से पुकार सकें। इन जातियों में औजी (वादक) जाति ही ऐसी है, जिसका सम्बन्ध गढ़वाल के मुख्य वाद्य और वाद्य संगीत सागर, ढोल सागर से है। ढोल सागर, ढोल संगीत का सागर है, इसके विषय में हम आगे, विस्तार से विचार करेंगे।

लोक वाद्य यंत्रः लोक संगीत के साथ, लोक वाद्ययंत्रों का अटूट सम्बन्ध है। लोक संगीत के विषय में जानकारी देने के साथ यह जरूरी हो जाता है कि उससे सम्बन्धित वाद्य यंत्रों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। अतः महत्व और उपयोग की दृष्टि से वाद्य यंत्रों का क्रम इस प्रकार है (1) ढोल (2) दमौं (3) ढोलक (ढोलकी) (4) हुड़की (5) डौंर (6) थाली (7) मोछंग (8) बाँसुरी (9) मसक बाजा (10) सारंगी और (12) इकतारा।

ढोल ढोल तांबे अथवा पीतल या चाँदी का बनाया जाता है। भैंस के चमड़े से इसे मढ़ा जाता है। पूड़ को रस्सी से कसा जाता है। बजाने पर एक हाथ से थाप दी जाती है तथा दूसरी ओर लकड़ी की डंडी या लाकुड़ से इसे बजाया जाता है।

दमौं यह गहरे तसले की शक्ल का बना होता है। इसे भैंस के चमड़े से मढ़ा जाता है। जिस तरह ढोलवादक को 'ढोली' कहा जाता है उसी प्रकार दमौं के वादक को 'दमैया' कहा जाता है। दमौं की पूड़ को नीचे की ओर से कसा जाता है। ढोल तथा दमौं एक साथ बजाये जाते हैं। इसलिए इनमें संगत की एकरूपता होती है। यह आकार में छोटे नगाड़े की तरह होता है। प्रायः बोलने में ढोलदमौं का एक साथ प्रयोग किया जाता है। ढोलक या ढोलकी का प्रयोग अधिकतर बादी वर्ग के लोग करते हैं। नृत्य में इसी का प्रयोग किया जाता है।

हुड़की हुड़की डमरू की शक्ल का छोटा यन्त्र होता है। यह लकड़ी का बनाया जाता है तथा इस पर बकरी या बन्दर की खाल की पूड़ होती हैं। इसका प्रयोग यहाँ पवाँड़ों या वीर गीतों के गाने में किया जाता है। इस यन्त्र को एक हाथ से पकड़े हुए दूसरे हाथ से बजाया जाता है। इसकी आवाज गमकदार और गहरी होती है।

डौंर डौंर हुड़की की शक्ल का होता है। लकड़ी के बने इस डौंर पर बकरी के चमड़े की खाल की पूड़ होती है। इसका प्रयोग थाली के साथ किया जाता है। घडियाली में डौंरथाली एक साथ बजती है। सामान्य मनोरंजन के लिए भी लोग इसे बजाते हैं।

थाली थाली काँसे की बनी होती है। इसका उपयोग घडियाले के समय डौंर के साथ किया जाता है। बजाते समय इसके नीचे अंदर से खोखली ऊंची चीज रखी जाती है।

मोछंग लोहे का बना होता है। इसे ओठों के बीच रखकर दातों से मिलाते हुए उंगली से बजाया जाता है। इससे एक ही तारतम्य में झंकार पैदा कर मधुर ध्वनि के साथ गीत गाये जाते हैं ।

बाँसुरी बांस की बनी होती है। इस पर सात छेद होते हैं । इसे "अलगोजा" भी कहा जाता है। बांसुरी में गीत सुमधुर ध्वनि से गाये जाते हैं।

मसक बाजा चमड़े के थैले पर दो 'पाइप" लगे रहते हैं। बजाते समय पाइप से फूंक भर दी जाती है और आगे भी बाँसुरी लगी होती है, उससे स्वर निकाले जाते हैं। लम्बे समय से इसका उपयोग गढ़वाल में होता आया है। यह गढ़वाल के लोकप्रिय वाद्य यंत्रों में है। व्याहशादियों में इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है।

सारंगी इसका प्रयोग मिरासी लोग अधिक करते हैं। नाँच में इस पर गीत तथा रागरागिनियों के स्वर फूंके जाते हैं।

इकतारा यह तानपूरे की शक्ल का होता है। इस पर केवल एक तार होता है। इसका उपयोग सन्यासी लोग गीत गाने के लिए करते हैं।

ढोल सागर- लोक संगीत वादन में ढोल सागर का नाम गढ़वाल में सर्वाधिक प्रचलित मिलता है। गढ़वाल के गांवगांव में ढोलदमौं प्रचलित है। इन्हें बजाने का काम पेशे के रूप में किया जाता है। गढ़वाल में औजी इस वादन को पेशेवर कला के रूप में पीढ़ीदरपीढ़ी सुरक्षित रखते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सभी औजी इस कला में पारंगत हैं तो भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस वर्ग के कुछ लोग ढोलदमौं बजानेकी कला में प्रवीण हैं और वे अपनी इस कला दक्षता का परिचय देकर, लोगों की आश्चर्यान्वित कर देते हैं। गढ़वाल में प्रचलित यह कला सामान्यतः ढोलदमौं बजाने की है। तबलावादन में अथवा मृदंग बजाने में जिस प्रकार बोल निकलते हैं, उसी प्रकार ढोली लांकुड़ (बजानेकी लकड़ी) तथा एक हाथ से थाप देकर ढोल से बोल निकालता है और दमौं बजाने वाला दो लॉकुड़ों के सहारे उसके बोलों से संगत करता है। सामान्य बोलचाल में ढोल का यही स्वरूप है और इसे ही ढोलवादन कहते हैं। इसके साथ ही यहाँ ढोलवादन से मेल खाता शब्द ढोलसागर मिलता है। औजी कहते हैं कि यह ढोल का सागर है, इस सागर में ढोल है और इस ढोल में सागर है। हमारा मत है कि यह ढोल से सम्बन्धित शास्त्र है यानी ढोल विद्या (वादन) की शास्त्रीय रचना है जो कि सामवेद के एक अंग के रूप में ढोल-दमौं के उद्भव और विकास और वादन के विभिन्न बोलों का सविस्तार वर्णन प्रस्तुत करती है।

ढोल सागर रचना

गोरखपंथी, नाथियों-नाथ, बंण और कनफटे जोगियों और गृहस्थों की जमात, गढ़वाल में प्राचीन काल से पाई जाती है। गढ़वाल नरेश द्वारा देवलगढ़ में सिद्ध सत्यनाथ के मठ का निर्माण किया गया था। गढ़वाल में इस परम्परा के गोरखनाथ, नाथ सम्प्रदाय के जमातियों की जमात तब से आज तक पायी जाती है। इस परम्परा के सत्यनाथ की गद्दी पर शिवनाथ से बसन्त नाथ तक 14 महंत रह चुके हैं जिनमें (1) सत्यनाथ पंथी (2) रावल (3) राम के जोगी (4) पतड़ (5) भड़नाथी (6) आई पंथी (7) नागे (8) निरंजनी (9) बैरागी (10) धर्मपंथी और (11) योगण के जोगी पाये जाते हैं। ये कनफटे और बिना कनफटे होते हैं। इस नाथपंथ गोरख सम्प्रदाय की वाणियों का विभिन्न नामों से संग्रह पाया जाता है। गढ़वाल राज्य के राजा अजयपाल के समय से गोरखपंथी संत सत्यनाथ की गद्दी की परम्परा मिलती है । अजयपाल से पूर्व इस मत का यहाँ प्रभाव न रहा हो, यह नहीं माना जा सकता है। अजयपाल द्वारा नाथ सम्प्रदाय को महत्व देना और मठ की स्थापना करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि इनका

प्रभाव अजयपाल से पूर्व था। हिन्दी साहित्य में, गोरखवाणीसंत साहित्य के नाम से इनकी रचनाएं उपलब्ध होती हैं।

स्वर्गीय डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपने सम्पादित ग्रन्थ "गोरखवाणी" में इनका संग्रह किया है। अपने इस संग्रह में स्वर्गीय डॉक्टर साहब ने "जोगेस्वरी वानी" जिसमें गोरखनाथ तथा अन्य योगियों की वाणी के बोल हैं, संग्रह के रूप में दिये हैं। बौद्ध बज्रयानियों के तंत्र-मंत्र साहित्य और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित कृतियाँ, गढ़वाल के लोक साहित्य में उपलब्ध हैं। इन तन्त्र-मन्त्र के गीतों में "ॐ नमो बाबा आदेश" से लकर बिन्दु, शून्य घट, निरंकार, निरंकार से फुंकार, फुंकार से धौं-धौं कार इत्यादि ऐसी रहस्यमयी वाणियां पढ़ने और सुनने को मिलती हैं जो कि निश्चित रूप से नाथ मत, नाथों की वाणियों से प्रभावित मिलती हैं। गढ़वाल में इस तरह की अटपटी वाणी के संग्रह समैण, श्रीनाथ का सुकलेस, इन्द्रजाल और घट स्थाप्या नाम से मिलते हैं। जिसमें "पंचसती किया सभाऊ घर स्थाप श्री गोरखराऊ" से स्पस्ट संकेत गोरखवाणी से हैं। समौंण में भूत विद्या के सम्बन्धित, असंख्य गीत दिये गये हैं।

"ऊंकार गुरू न चेला धौं-धौं कार
माई न वाप उपजै संभु आपै-आप"

इन्हीं के साथ एक ग्रंथ है, ढोलसागर। गढ़वाल में यह वाद्य अधिक प्रचलित है और यह ढोल वादकों का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रंथ की भाषा संस्कृत, हिन्दी, गढ़वाली तीनों की खिचड़ी मात्र है। संस्कृत के साथ गढ़वाली बोली तथा हिन्दी के आधुनिकतम शब्द इसमें पाये जाते हैं। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, सप्त द्वीप नवखण्ड, वायु मण्डल, निराकार मण्डल, और बैकुंठ मण्डल तक की बात मिलती है। इसमें शून्य, शब्द, अक्षर, बिन्दु, जोंग की कोटियां, वाद्यों के नाम, पक्षियों के नाम तथा ताल दिये गये हैं। ग्रन्थ में दूसरी बातें अधिक और तालो के विषय में थोड़ा सा प्रकाश डाला गया है। लेकिन इस ग्रंथ में तंत्र-मंत्र, ढोल के बोलों के साथ पृथ्वी की उत्पत्ति, शंकर वेदांत, घट,-बीज, बिन्दु, वृक्ष, शब्द और अक्षर की बात विस्तार में पाई जाती है। जहां तक इस कृति के समय की बात है इस विषय में हमारी धारणा है कि कृति 9वीं से 10वीं शताब्दी के बीच की है। 10वीं शताब्दी तो सुस्पष्ट सी है लेकिन 9वीं शताब्दी के पूर्व की हम इसे मान नहीं सकते हैं।

ढोल सागर का उपलब्ध स्वरूपः-

इससे पूर्व कि हम उपलब्ध ढोल सागर के विषय में विशद विवेचन प्रस्तुत करें, यह उपयुक्त समझते हैं कि तथाकथित उच्चिष्ट-कला ढोल सागर के विषय में कुछ प्रकाश डालें । पर्वतीय संस्कृति

केअंक में स्वर्गीय श्री अगमदास के पुत्र श्री सोहन लाल का आभार दर्शाते हुये उन्हें उच्चिष्टकला ढोल सागर की पांण्डु लिपि दिखाने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद दिया गया है। स्वर्गीय श्री अगमदास ढोल सागर के महान ज्ञाता रहे हों, इसमें हमें कुछ भी नहीं कहना है । हमें यकीन है जैसे कि आज भी गांवों में इस वादन विद्या के पारंगत मिलते हैं, स्वर्गीय श्री अगमदास भी पारंगत रहे हों । हम उनके इस ज्ञान और शास्त्रज्ञता के प्रति आदर प्रदर्शित करते हैं लेकिन जिस पाण्डुलिपि उच्चिष्टकला ढोलसागर की "भवानी" अष्टक के रूप में उदाहरण प्रस्तुत किये हैं वह विवादास्पद है क्योंकि इसमें भवानी के स्वरूप को विभिन्न प्रकार की उपमाएँ देकर व्यक्त किया गया है। इनकी भाषा भी गढ़वाल के तंत्र-मंत्र गीतों से मिलती जुलती है। लेकिन इसकी भाषा का वह रूप नहीं है जो कि ढोलसागर की प्रकाशित प्रति में देखने को मिलता है। जितने अष्टक इस पाण्डुलिपि के अनुसार ढोल सागर में गिनाये गये हैं। वे स्पष्टतः यह बात कहने के लिए मजबूर कर दते हैं कि यदि ये ढोलसागर के अंग हैं तो निःसन्देह ये बाद के जोड़े गये अंश हैं और मूल ढोलसागर कुछ और ही है । वैसे यदि "उमा शिव सम्वाद यह, सब ग्रन्थन को सार" मानकर चलें तो सन्देह नहीं कि मूलग्रन्थ का आकार छोटा है, जिसमें वादन के बोलों का ही उल्लेख है और बाकी के हिस्से जोड़कर उसे वृहत् ग्रंथ का रूप दे दिया गया है। हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि ग्रंथकार ने अपने इष्ट देवों को प्रसन्न करने के लिए उनके स्वरूप का विविध प्रकार की उपमाएं देकर आवाहन किया होगा। लेकिन यह बात बिलकुल सही है कि इन स्तुतियों से चाहे आवाहन का संबन्ध क्यों न रहा हो लेकिन ढोल सागर के ताल और वादन से कोई सम्बन्ध नहीं है और इस पर भी ऐसी कोई भी प्रामाणिक अप्रामाणिक ढोल सागर की पाण्डुलिपि नहीं उपलब्ध हो सकी है, जिन पर गम्भीरता से मनन, अन्वेषण और विवेचन करने का व्यापक रूप से किसी संस्था को अवसर मिला हो अथवा कहीं कोई प्रति प्रामाणिक, अप्रामाणिक रूप से सब के देखने के लिए उपलब्ध हो। हम इस बात को मानने से इन्कार नहीं कर सकते हैं कि लोगों के घरों में मंत्र ग्रन्थ की पाण्डुलिपियां हैं और इन घरों के साथ कुछ संस्थाओं के पास भी पाण्डुलिपियां हैं।

अब तक प्रामाणिक और प्राप्त (जो कि अब अप्राप्त है) प्रकाशित प्रति श्री बदरी केदारेश्वर प्रेस पौड़ी गढ़वाल की है। इसका संग्रह जोड़ कर किया गया है, तो भी यह ही एक ऐसा प्रकाशन है जिस पर हम विश्वास करके इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं । 1913 से संग्रहीत होते 1932 में प्रकाशित इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत, हिन्दी और गढ़वाली बोली का मिश्रित रूप है।

कहीं पूरी संस्कृत है तो कहीं ढोल किने ढोल्या किने, तथा ढोल्या किने बटोल्या, रूप मिलते हैं। जहां श्री ईश्वरायनम, श्री पारवर्त्युवाच वेद्रंगति, वेदतिसंगन ग्रीतायुनि आरभ कथं ढोली ढोल की साखा उच्चते, संस्कृत जैसी है तो ढोल किने ढोल्या किने हिन्दी का एक रूप है तथा ढोल्या किने बटोल्या किन ढोल गड़ायों किने ढोल उपर कंडोटी चड़ाया, पूरी तरह गढ़वाली बोली का रूप है। हमारा मत है कि यह ग्रन्थ मिश्रित भाषा का संग्रह है और इसमें गढ़वाली बोली का पाया जाना इस बात का सबूत है कि इसकी रचना या तो संस्कृत, हिन्दी, गढ़वाली जानने वालों द्वारा की गयी है अथवा गढ़वाली के किसी विद्वान ने इसका निर्माण किया है अथवा ग्रंथ मूल रूप में संस्कृत में था और इसे गढ़वाली विद्वान द्वारा संस्कृत के कुछ रूपों को रखते हुए गढ़वाली में किया गया है। गढ़वाल के लोक गीतों में तन्त्र, मन्त्र, के गीत मिलते हैं। इन पर नाथों और विशेषकर गोरख पंथियों का भारी प्रभाव देखने को मिलता है। इन तंत्रमंत्र के उषेलभेद और रखवाली गीतों में गुरू गोरख नाथ का वर्णन मिलता है। निरंकार, नरसिंह, गरूड़ासन और भैरों के आवाहन मंत्रों में जो शब्द और शब्द-रचना मिलती है वह ढोल सागर से नहीं मिलती है।

अब हम ढोलसागर की बात कहेंगे । यह एक लम्बी-चौड़ी गाथा है जो कि ईश्वर और पार्वती के संवाद के रूप में मिलती है। कथारम्भ में ढोली से पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में पूछा गया है। सात द्वीप नौखण्डों के निर्माण का वर्णन है। पृथ्वी के ऊपर के मण्डलों की बात कही गई है। इसके बाद वह ढोली से ढोल की साखा के विषय में पूछता है। पार्वती कहती है 'अरे गुनीजन जल श्रमिते उत्पन्न लीन्या अरनाभमिते आया अन भुमिते गुरूमुख चेतो लीन्या नुन भू मिले समाया।" तत्पश्चात् ढोल की उत्पत्ति के विषय में पार्वती कहती हैं-

"दोपते उत्पन्न ढोले ददी, द्वापते उत्पन्न दमामें, कनक द्वीपते कनक, थर हरी बाजी किरणे मण्डल ते, चार किरणी बाजे सिदु द्वापते सिंदु थर हरी बाजी न टुथरहरीते सिद्धं थर हरी बाजे, चौ दिशा की चार चासणा बाजी चार चासणों की चारवास रणो बाजी, चार चासणें की चार तेल वाले बाजी।"

ढोल के निर्माण के विषय में कहा गया है -

'ढोल्या पारवती ने बटोल्या, विष्णु नारायण जी ने गडाया चारे जुग ढोल मुंडाया ब्राह्मण जी ने, ढोल ऊपरी कदोंरी चड़ाया।' ढोल के मूल और शाखा का वर्णन प्रस्तुत है-

'आरे आवजी उत्तर ढोली, ढोल का मूल पश्चिम ढोलीढोल की शाखा दक्षिण ढोली ढोल का पेट पूरब ढोली ढोल का आँखा'

ढोल, डोर नाद तथा गजावल के पिता के विषय में बताया गया है, 'अरे आवजी ईश्वर पूत्र भवे ढोलं ब्रह्मा पुनं डोरिका पौन पुनं भवेनांद भीम पुत्र गजावलं। आप पुत्र भबे ढोले विष्णु पुत्रं भवे पूडेम् कुण्डली नाग पुत्रंचे कुरूशा पुत्रे कनोटिका गुनीजन पुत्रं-चकारिपा का शब्द ध्वनि आरम्भ पूत्रंच, भीम पुत्रं गजावलं।'

ढोलों के सरनाम गिनाये गये हैं-

श्री, वेद, सत, पासमतो, गणेश, रणका, छणक, बेची, गोपीगोपाल, दुर्गा, सरस्वती तथा जगती बारह शर के ढोल होते हैं।

आवाजी का मूल और कला इस प्रकार है-

'मन मूले, पौंन कला, शब्द गुरू सूरत चला, सिंहनांद शब्द ली । आव, सरत बसन्त देश धरती है मेरों गांव, अलेक को नगर जमराज पुरी बसंते गाँव ।'

राशि

'मेरे, धर्नुराशि कर्म राशि मेरो ढोल, कसणी कदौरी सगुन राशीछ, कुम्भ राशि मेरो दैर्णो हाथ को गजावलूम् ।

'आवाज मेघ रूपंख एगगन रूपचं मेरी धिग, धिगी दाली मई सिंहठाण छऊ, गरूड़ ठाणच मेरो ढोल, माई तो नहिं मरे अण मरि तो मारि जाई बिन चक्कड दिनि फिरौं बिन दन्ताअं ।'

कसणी का विचार :-

प्रथमे कसणी अढाइतें:- त्रिणि, त्रिणु, ता, ता, ता, ठंठं ।

दुतिये कसणी चढाइतें :- दौ देशे चेब कहंती दावंति ढोल उचते ।

तृतीय कसणी चढाइतो :- त्रि, ति, तो, कनाथच त्रिणि, ता, ता, घी धिगला ।

घी जल घि गला, ता ता अनंता कजाई तो ढ कों रौंति कहंति दावति ढोल उच्चते ।

चौथी कसणी चढाइतों :-	चौ नाठिका चैब कहंती
पचमें कसणी चढाइतों :-	पांच पाण्डव बोलंती
खण्टमें कसणी चढाइतों : -	छई चक्रपति बोलंती
सतमें कसणी चढाइतों : -	सप्त धनि बाजिल्ये कहंति,
अष्टमें कसणी चढाइतों :-	अष्ठ कुली नाग बोलंति,
नवमें कसणी चढाइतों :-	नवग्रह बोलंति
दसमें कसणी चढाइतो :-	दूरगा बोलंति,
अग्यारे कणी चढाइतो :-	देवी कालिका बोलंति,
वारां कसणी चढाइतो :-	देवी पारवती बोलंति,

अंगुलियों का विधानः-

प्रथमे अंगुली	ब्रंग बाजती
दूसरी अंगुली	मूल बाजती
तीसरी अंगुली	अबदि बाजती
चतुर्थ अंगुली	ठ' ठ ठ' कारंती
अगुष्टिका	झपटि झपटि बाजी
गजाबलम्	धूम धाम बाजो

दस दिशा का ढोल : नवतम् तवतम् मा, ता, तान, तो, ता ता , दिगि, ता, दिगि, ता ता, धिग, ता,-शब्दम् प्रकिर्तिता ।

पूर्व दिशा को - सुन्दरिका ढोल सेन्दुरि ढोल,

उत्तर दिशा - दिगनि, दिगनि, दिगानि, ता, ता ता, नंता झे, झे, नंता

दक्षिणी - बाकुली वीर बकुली नाम ढोल बजाइते,

पश्चिम दिशा - भौ, भो, नंता ताता, नं ता छ,

चार युगों के ढोलों का इतिहासः

प्रथमें कनिकत्र इंद्र को उदीम दास ढोली अमृत को ढोले,

द्वापरा - मानदाता राजा मानदाता को बामदास ढोली गगन को ढोलम् तम शून्य शब्दम्

त्रेता युगे - मध्ये महेन्द्र नाम राजा बिदिपाल दास ढोली काष्ट की ढीलम् अविकार ,

कलियुगे - मध्ये वीर विक्रमाजीत राजा अगवान दास ढोली अस तत्र को ढोल वस्त्र को शब्दम् तञ्च नामिकं नमो नमः ।

पृथ्वी की उत्पत्ति कुरम देवता द्वारा पृथ्वी उठाने पर तेंतीस करोड़ देवताओं को उपजाने पर महादेव जी पार्वती का सोलह श्रृंगार , 32 आभूषण, पहिनाके नाच नचाते हैं, 6 राग, 36 रागण, 48 राग और 36 बाजेत्र बजायें, जिहवा, शंख, जाग, ताल, ड़ंवर, जंत्र, किगंरी, ड़ंडी, नक फेरा, सिणाई, बीन, बनसरी, मुरलि, विणाई, विमली, सितार, सिजरी, वेण, सारंगी, मृदंग तबला, हुड़की, उफडि, श्रेरी, बुरंग, रणसीगां, तुरी, कसल, घंटा, घुंगरू, डोरू, श्राणे नगारा, रेटि ढोल, ।

पहले	**पीछे**
धरती	आकाश
स्त्री	पुरूष
रात	दिन
गुरू	चेला
सिक	धुवं
माई	पूत

पक्षी -

मोर, परियाऊं, सुवा, हंस, गिरदस, चार्णो, भटा, फगालासी, कुखड़ी, फेचुबा, चाखड़ी, तितरी गैंडा, श्रेकड़ी, सासेछेतरी, ठिठात्री, कोयड़ी, श्रड़ाई, श्रुतराई, लोटासी, चिचल, छछड़ी, बाजू, सिन्टुली आदि सरगचड़ी, मणा, काइल, सरमलेऊ, गघती, चौडिया, चुफलिया, गडमाली, गड़चंदरा, शीचदा, हलदुवा, घुघती, घुलड़ा, बटीली, हेलांशी, समुनहलिया, वेसरों, कागा, गरूड़, टोल, लमक, नुवा, वोड, बदलचढौं, घिऊरो पलयासरी, मलियासे, कटौसी, कलझेंट, घड़ुवा, चुचड़वा, पितपिऊरी, चुचकन्या कटासी, कटगौरा, नारंगी घुग्गू, कप्फू, कोकिला, उल्लू, डुबरों, बारवरा ।

चार वेद बजाना

प्रथमे ऋषि वेदेच - पूर्व दिशा ऋषिवेदं

द्वितीय यजुरवेदा- सदैव युजुरवेदं बजायते दक्षिण दिशा

त्रितेय सामवेदं च - श्यामरूपी नारायण पश्चिम दिशा

जित, ने, मां, ता, ता, ता, ता, मन्ता, तंच श्याम रूद्र नाम बजाइते ।

चतुर्थ अथरवण वेद च उत्तर भये कठंपिता वेद बाजिते इन्द्रा

चासणे

चह, चह, चह, चह, चस, चस, चस, चस, चसणें

बाजी

ऊकारं च मुख चास - चासर्णी बाजो त्रि, ख, टि, त्रि, खि, टि, वेण सुरत्य किरणि भानु मुख वा माता सुख बाजी चासर्णी ।

गाजा मुख, बाजी चासर्णी, चस, चन्द्र, सूर्य, वेद, पुराण, बाजे,

रात दिन, घुरम कुरम पाताल बाजी,

सृष्टि संसार, चह चार खुंट बाजंती,

चौदह भुवन चह घुरम तीन बार बाजंती,

चढ़ाचावगी, चार जुग चौरासी लक्षजीवन, चार वेद, कालदण्ड, तथा गजावलम् बाजन्ती ।

आगवान पिछवान

विजक, नि, च, कं, टु नु च, बात्रिमतिच दैर्णो, ची, उड़ताल चु, बडेरचूं, एकलस चे, दो लग चे, लषन्या च, दुलषन्या चौ, सृबिंदु च, दुवाय बिन्दु च, ।

चकार की उत्पत्ति

चकार	सूर्य पुत्र
चिकार	विष्णु पुत्रं
चीकिरिका	देव पुत्र
नाद	शक्ति पुत्र

शब्द

चकार- चार जुग को शब्द, चौध विद्या, चौंसठ कला,

ताकार- ताकार त्रिभुवन नाम शब्द, त्रिलोक नाथ शब्द, नवम खण्ड डंका बजाइते ।

ओंकार- ओंकार झे गता, ओंकार झे गता, आंकार झे गता झेकार

सत्य शब्द- चासणी वाजे, झुंकार बैठे आसण ठाऊ, त त कार

गरूड़नाद- तग थानिकं तग थानिकं

करोई- करायू, क्र, क्र, कर्कटो, कटकतों, झेगा तारं,

चकोर- झे झेगता, ता ता रंग,

तूती नाम- मुम जुग जुंग जुग,

काका- ग ग नं मु ख झ ड़ ता

भान बोगट्या- हं दिग नि तो दिगनी दिगनी तो दिगनी दिगू नि तो, नाचे चार तलिम, दिगनि दिगनि तों ता ता ता, धिगनिता धीगता ताता धि ग ता धीगनिता ता ता ता ता नन्ता ।

निन्यारा- ओं हे रं रं रं रं रं ग गं गं क्रीदनि क्रीदनि विनति विनती मर्ते । पल्लव तूतियां खिनि खिनि ता ता ता नी ता झे झेता, झी गी ता, झी, गी, ता, ता, ता , ता, दिग नि तां दिग निंता धीता ।

कोकिला - का, का, का किमु ,

ऊपर हमने ढोलसागर की उपलब्ध प्रति के आधार पर स्वर, ताल सम्बन्धी ढोल की उत्पत्ति विषयक बातें स्पष्ट करने की कोशिश की है । इससे पूर्व कि हम इस पर कुछ विचार व्यक्त कर सकें यह जरूरी होगा कि ढोल सागर की इस प्रति की सामान्य विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर दें । यह एक कथा है । जिसको ईश्वरीवाच (ईश्वरोवाच) तथा पारवत्यूं वाच कहकर सवाल-जवाब के रूप में प्रस्तुत किया गया है । कथा में शिव और निरंकार, निरजंन, निर्विकार, शून्यरूप सब एक हैं । कथा क्या है - दो वक्ताओं के संवादों का गठबन्धन है । प्रारम्भ में ऊँ, माता, पिता और गुरूदेवता को आदेश लगाया गया है । ढोली ढोल की कथा कहने की बात नहीं भूला है । ढोली से पृथ्वी के जन्म के विषय में पूछा गया है । विष्णु का कमल से उपजना, कमल से छूटने पर चेते और ऊँकार शब्द हुआ । सात द्वीप नौ खण्ड, रचे गये । पृथ्वी में वायुमण्डल, तेजमण्डल, मेघ

मण्डल, गगन मण्डल, अग्नि मण्डल, हीन मण्डल, सूर्य मण्डल, चन्द्र मण्डल, तारा मण्डल, सिद्धि, बुध, कुबेर, गगन, अगति ब्रह्मा, विष्णु, शिव, निराकार मण्डल तथा वैकुठ मण्डल रचे । इसके बाद ढोंल की शाखा और उसकी उत्पत्ति के विषय में बताया गया है । ढोल के निर्माण, डोरी चढ़ाने, मूल शाखा तथा शरीर के विषय में और शाखाओं का वर्णन मिलता है । बाद में ढोल डोरी नाद और मतवाल के माता-पिता के विषय में बताया गया है । ढोल के बारह सरनाम गिनाये गये हैं । लांकुड़ आंण, ढोल के गुरू बताये जाने के बाद उनके ठांव के विषय में जानकारी की गई है । शब्द के पेट और मुख की बात पूछी गई है । उसके रूप शाखा तथा शब्द विचार उसके मुख, कान, नाक की जानकारी की गई है । आवाजी की राशि, कसणी की राशि, ढोलकी राशि तथा गजावल की राशि गिनाई गई है । सरस्वती के अक्षर प्रकाश - अ इ उ, ऋ, लृ, ए ओ और ह म व र ल ड़ म ण न, झ, भ, घ, ढ, घ, ज, ब, ग, ड, ढ, क, प, श, ष, स इत्यादि । इसके साथ चार वेद को बजाने के ताल और शब्द मिलते हैं । बाद में सर्वत्र धाँ, धाँकार तथा उसी दिन औजी उपजा । पृत्वी की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है पृथ्वी निरंकार थी, निरंकार से साकार हुए । जल-थल में अंड हुआ । अण्डा फूटा नो खण्ड उपजे निराकार गोसांई, गोंसाई ने बाह्मण मालिक ब्रहमा उपजाये । अंग मलके विष्णु और भौं मलकर के भोलानाथ उपजाये । पांव मलके पार्वती उपजाई । इस प्रकार गोंसाई ने पृथ्वी रची, सात स्वर्ग तथा सात पाताल रचे । स्वर्ग में इन्द्र तथा पताल में वासुकि रचे । करम उपजाया और उसके ऊपर पृथ्वी रख दी तक तैतीस करोड़ देवता थरपे । तब महादेव ने पार्वती का सोलह श्रृंगार कर उसे नचाया । इसमें 1600 गोपाङ्गनों सहित कृष्ण जी आये । बाद को 36 बाजे गिनाये गये हैं । अगवान के बाद कुण्डली तथा कसणी के नाम पूछे गये हैं । धू धू कार से वादी विवादी सुनकर में आत्मा, निरंजन को नाव बताया गया है । बिन पौन की मड़ी, जनम रटमाता, अनिलधर, पिता, अनिल घट छाजें और शम्भु निरंजा के उत्पन्न के दिन प्रथम बार बाजे बाजे । चास के मुख बोल बताने के बाद चकार के शब्दों का वर्णन मिलता है । ताकार की व्याख्या के बाद आदिनाथ के गुरू अनन्द नाथ गुंसाई उनके गुरू पौन, पौन के चन्द्र सूर्य का सात की बात बताई गई है । घर-अघर और स्वर्ग - मृत्यु चौरासी लाख योनियों के विषय कथाकार बताता हैं। बाद को 64 पक्षियों के नाम गिनाये गये हें । अपुछे के घर माता विसनु घर-पिता तथा बाद को वार गिनाये गये हैं । फिर महीने गिनाये हैं । तिथि मिति का उल्लेख किया गया है । योग तथा जोग का विचार किया गया है । सात करण के विचार के बाद बारामासों के नाम गिनाये गये हैं तथा ऋतुओं के नाम गिनाने के बाद इति पारवती ईश्वर संवाद सामवेदान्त गीत ढोल सागर प्रथम खण्ड समाप्त कहकर कथा समाप्त हो जाती है ।

इस प्रकार पूरी कथा के अवलोकन से हम पाते हैं कि कथा में अधिक भाग ऐसा है जिसमें पृथवी की उत्पत्ति, निरंकार, निराकार शब्द, शून्य और घट की बात अधिक है । चौरासी योनियों की बात के साथ पशु, पक्षी, पृथ्वी, मास, मिति, तिथि दी गई है । इसके बाद कथा के बड़े भाग में ढो़ल की उत्पत्ति, ढोली के स्थान, ढोल के कसने, विविध युगों के ढोल, वेदों के ढोल और युगानुसार ढोलियों के नाम गिनाये गये हैं । कथा में एक छोटा सा भाग , है, जो कि ढोल के शब्द और तालों के विषय में जानकारी देता है । यह भाग अति छोटा है ओर ढोल जैसी वाद्य - विद्या के विषय में ना के ही बराबर जानकारी देता है कथा के अध्ययन से यह निर्विवाद निष्कर्ष निकलता है कि ढोल के शब्दों और ताल के विषय में निश्चय ही यह पर्याप्त रूप से प्रकाश नहीं डालता है और यह ताल सम्बन्धी ग्रन्थ न होकर उसका प्राम्भिक भाग है । इस प्रकार जो यह ढोल सागर के रूप में संग्रहीत भाग है यह वास्तव में ढो़ल सागर की मूल रचना का एक अंश है जिसमें सरसरी तौर पर ढोल सागर के विविध प्रकार, उसकी उत्पत्ति, उसे कसने और अंगुलियों द्वारा उसके विविध शब्दों और तालों के विषय में सरसरा परिचय दिया मिलता हैं । अतः ढोल जैसे वाद्य के तालों का पूरा परिचय देने वाला हम इसे कह नहीं सकते । यह एक ऐसी रचना हे जिसे हम मूल ढोल सागर का प्रारम्भिक अंश कह सकते हैं । ठीक ऐसी ही बात उचिष्टिकला ढोल सागर के अष्टकों के विषय में भी है ।

ढोल, दमौं, डौंर और थाली गढ़वाल के मुख्य बाजे हैं, इनके विविध बोल हैं । हम नीचे ढोल तथा दमौं के कुछ बोल दे रहे हैं ।

ढोल

भगवती	जैकता तु जनकु जैक तातु जनकु
द्रोपती	जैकु जै लाड़ कु
भीम	गिजा गिजड़ी धिना गिता
अर्जुन	जैकता तुजड़क जैनाताक
नकुल	जैकता तुजड़े
सहदेव	जैकता तुजड़क जैनात
युधिष्ठिर	जैकता तुजक जैकता ताक

ढोल पर बजाये जाने वाले बाजे -

नरसिंह - जिकता ताकड़ी, डिमता, टिकड़ी धन्न, धिकड़ी टिंट टिकड़ी

नागराजा	ताक जैकतु ताजनकु
हत्यां	जिकता तिकड़ी जिकता तिकड़ी
आछरी	तक-तक-तक-तक झग झिग जन ताक, ताकता जिन्नातक जगड़ी तकड़ी तक ।
ठुला देवता	जिग जनक तकड़ी जिग जनक तकड़ी
नगेला	झिगत तकड़ी

डौंर-थाली के ताल -

नरसिंह	डिमटि डिमठिपड़ी ढिन ढिन ढिम टिपड़ी
नागराजा	डिंडी तक तक तक धिन तक ।
आछरी	ढिक ढिम डिमीम डगटि डिंग डग डिन टिक ।
हत्या	डिम डिम डिम डिम टि टिपड़ी ।
ठुला देवता	डें ग डें ग डींग दे टक टक ।

तुलनात्मक-खण्ड

अध्याय - 11

कला एवं साहित्य पर तुलनात्मक विचार

कला और साहित्य दोनों ही लोकाभिव्यक्ति के रूप हैं। साहित्य में इनका स्वरूप इतना अभिन्न है कि इन्हें भिन्नता के बावजूद भी एक दूसरे का पूरक माना जाता है। सही अर्थ में कला और साहित्य दोनों ही लोक साहित्य की ऐसी अभिव्यक्तियां हैं जिनमें एक में दूसरे का प्रच्छन्न रूप निहित मिलता है। अभिव्यक्ति स्वयं एक कला है। चाहे वह नृत्य, संगीत के द्वारा हो अथवा गीत-काव्य के द्वारा। कला प्रधान दृष्टि से गढ़वाल के लोक साहित्य पर विचार करने पर स्पष्ट है कि गढ़वाल की लोकाभिव्यक्तियों-लोक साहित्य और कला में एक दूसरे का रूप इस तरह निहित है कि कोई भी एक दूसरे के प्रभाव से अछूता नहीं है। अभिव्यक्ति का स्वरूप हमेशा कलात्मक रहा है। वह चाहे लोक साहित्य की गीत, गाथाएं, कथाएं और कहावतें एवं पहेलियां हों अथवा लोककलाएं हों। कला की दृष्टि से देखें तो इनमें लोक की कलात्मकता की अभिव्यक्ति अवश्य मिलती है। क्योंकि लोक साहित्य के रूप में जो भी अभिव्यक्त हुआ है उसका वह स्वरूप किसी न किसी रूप में कला प्रधान अवश्य रहा है। गढ़वाली मांगल गीतों में जहाँ गायन में कलात्मकता के दर्शन होते हैं वहीं सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति में पौराहित्य कर्म के निमित्त किये गये चित्रांकन यथा देवी देवताओं और षोडश मातृकाओं के चित्रांकन कला की दृष्टि से साहित्य में कलात्मकता की विशिष्टता की पुष्टि करते हैं। मांगलिक अलंकरण और सौंदर्याभिवृद्धि के लिए स्त्रियों एवं पुरूषों द्वारा किये गये चित्रांकन अथवा "वारे" गये "टूपके" जनमानस की साहित्यिक अभिव्यक्तियों की कला प्रधानता के ही प्रतीक हैं।

साहित्यिक अभिव्यक्तियों में सौंदर्याभिवृद्धि के लिए बनाये गये "थापके" तथा अन्य रेखाकंन और अल्पनाओं की सृष्टि साहित्य पर, कला की प्रधानता के प्रतीक हैं। वेदी के निर्माण और व्यवस्था द्वारा लिये गये "फेरों" में कलात्मकता के निर्देश गीत साहित्य में ही दिये गये हैं।

लोक गाथा साहित्य में पात्रों के शरीरालंकरण अस्त्र-शस्त्रों की सजावट और देवी-देवताओं तथा इष्ट देवों के प्रतीकों का विवरण मिलता है। कथाओं में खास तौर से स्त्री पात्रों के शरीरांकन, वस्त्र-विन्यास और केश-विन्यास तथा रंगोली एवं सजावट के लिए विविध प्रकार के रंगों के प्रयोग के निर्देश मिलते हैं। इन कथाओं में पुरूष पात्रों एवं स्त्री पात्रों के मनोभावों और प्रतीक चिन्हों की कलात्मकता तथा अभिव्यक्ति का रूप हमेशा कलात्मक ही है जैसे कि लोक कथाओं में मिलता है। कहावतों और पहेलियों में भी अभिव्यक्ति का स्वर पैना, कटाक्षपूर्ण, व्यंग्य प्रधान तथा कलात्मक है। कला प्रधान दृष्टि से सारा का सारा प्रकीर्ण साहित्य व्यक्ति और समाज की कला प्रधान प्रवृत्ति की भावीकलात्मकता से वेष्ठित है। यद्यपि यह सम्पूर्ण लोक साहित्य - गीत-गाथाएं, कथाएं और प्रकीर्ण साहित्य, साहित्य की गद्य-पद्य विधा में हैं तो भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह सम्पूर्ण साहित्य कला प्रधान दृष्टि से, कलात्मक रूप में ही अभिव्यक्त है। तात्पर्य यह है कि गढ़वाल का यह सम्पूर्ण लोक साहित्य कलात्मकता की दृष्टि से एक दूसरे का पूरक है और उसी पूरक रूप में अभिव्यक्त हुआ भी है।

यही स्थिति ठीक साहित्य प्रधान दृष्टि से गढ़वाल की लोक कलाओं के प्रभाव के बारे में है। लोक कलाओं के व्यक्त रूप में गढ़वाल का सारा का सारा साहित्य अभिव्यक्त हुआ है। ललित कला, पेशेवर कला और चित्रांकन तथा शरीरांकन की प्रस्तुतियों एवं नाट्यपरक अभिव्यक्तियों में साहित्यक विवरणों का लम्बा चौड़ा सिलसिला मिलता है। "लाँग" तथा "जाकरिंग" जैसी प्रस्तुतियों में उपलब्ध साहित्य, साहित्य प्रधान दृष्टि से, लोक कलाओं की अनोखी देन है। इन नाट्यपरक अभिव्यक्तियों में बृहत् कथानक, गद्य और पद्य विवरण तथा नाट्य प्रस्तुतियाँ हैं। नृत्याभिव्यक्तियां साहित्य प्रधान दृष्टि से गद्य और पद्य साहित्य की उल्लेखनीय धरोहर हैं। लोक संगीत में साहित्य प्रधान दृष्टि से गीतात्मक अभिव्यक्तियां हैं जिनमें साहित्य की सभी विधाओं और लोक संगीत एवं साहित्य की मिठास मिलती है। इस प्रकार लोक साहित्य और लोक कलाओं की लोक जीवन में अपनी एक विशिष्ट महत्ता है।

लोक कला ओर लोक साहित्य का अर्थ ही है 'लोक का ज्ञान' जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। लोक की संस्कृति उसके मौखिक साहित्य लोक साहित्य और उसकी संगीत, नृत्य, नाट्य और शरीरांकन से लेकर सोलह संस्कारों की सम्पन्नता हेतु अभिव्यक्त कलाओं में अभिव्यक्त है। लोक कलाओं में जहां लोक की कला के आदिम नमूनों, विश्वासोंओर मनोरंजन की नाट्यअभिव्यक्तियों, खाली क्षणां के नाचनेगाने के उल्लास और सुख और दु:ख की अभिव्यक्ति के स्वर हैं वहीं लोक साहित्य में धर्म, समाज तथा संस्कार सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री निहित हैं। लोकाभिव्यक्तियों में जहाँ उल्लास थिरकन बनकर गांवों खेतों, खलिहानों और मंचों तथा ओबरों में अभिव्यक्त हुआ है वहाँ गीत, गाथाओं, कथाओं और कहावतों तथा पहेलियों में स्थानीय इतिहास तथा भूगोल सम्बन्धी तथ्यात्मक और प्रामाणिक सामग्री भी उपलब्ध है। लोक की अभिनयात्मक अभिव्यक्तियों और लोकोल्लास की अनुभूतियों को समझनेबूझने और लोक संगीत की स्वर लहरी के मर्म की अनुभूति के लिए जहां लोक कलाआं में सामग्री का अपरिमित भण्डार है वहीं भाषा वैज्ञानिकों के लिए लोक साहित्य, जनसाहित्य रत्नाकर के समान है। इसमें गोता लगाने पर अन्वेषकों को अनमोल रत्न प्राप्त होते हैं। लोक साहित्य और लोक कलाओं के महत्व को छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है। ये हैं:

(1) ऐतिहासिक महत्व
(2) भौगोलिक और आर्थिक महत्व
(3) सामाजिक महत्व
(4) धार्मिक महत्व
(5) नैतिक महत्व
(6) भाषा शास्त्र सम्बन्धी महत्व

ऐतिहासिक महत्व

लोक कलाओं और लोक साहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री है । इस दिशा में सम्यक् अनुसंधान एवं अनुशीलन से अपरिमित उपलब्धियां होंगी। लोक कलाओं के आनुष्ठानिक स्वरूप में लोक

की अभिनयात्मक अभिव्यक्ति का इतिहास है। नृत्य और संगीत में उसके विगत इतिहास की सुखदुःख, हासपरिहास, उल्लास, रूदन और विरह तथा मिलन की सुखानुभुतियों के इतिहास का लम्बा सिलसिला है। सारे के सारे लोकवार्ता साहित्य में स्थानीय इतिहास भरा पड़ा है। लोकोत्सव के लांग नृत्य में बादियों के, स्वाधिकार के लिए लड़े गये संघर्ष की गाथा है तो प्रबन्ध गीतों और लोक गाथाओं में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक राज पुरूषों और स्थानीय सूरमाओं तथा वीरांगनाओं के शौर्य और प्रेम तथा प्रेम के लिए उत्सर्ग का इतिवृत्त है। सारे के सारे गद्य साहित्य में स्थानीय संघर्ष की जीवंत कहानी है। राजा मानशाह, अजयपाल, मालूसारी, जगदेव पवार और राजा प्रीतम देव के संघर्ष की कहानी हैं तो सूरज कुंवर , कफ्फू चौहान, गढूसुम्याल,. कालू भण्डारी, बागा रावत, काली हरयाल, मालूरजवा, भागदेऊ, बरभी कौल, सोनू पिरभू, जीतू बगड़वाल, हंसा कुवंर, गंगू रमौला, विधनी, विजैपाल, रणूरौत, ब्रहमदेव, धामदेव, भानु भौंपिला, आशा रौत तथा हंसा हिडवांण का संघर्ष है । जहाँ एक ओर प्रेम और प्रेम में उत्सर्ग होने वाली जोतरमाला, पत्थर माला, ध्यान माला,चन्द्रावली, सुरमा, सरूकुमैणं, नौरंगी राजुला, वरूणा, अमरावती तथा सुरमा के दुःख-दर्द की लम्बी गाथाएं हैं तो दूसरी ओर तीलू रौतेली जैसी वीरांगनाओं की शौर्य गाथाएं हैं जिनमें सारे के सारे गढ़वाल क्षेत्र का इतिहास और भूगोल समाविष्ट मिलता है। लोक वार्ताओं में परिवर्तित परिस्थितियों और समय के संघर्ष की लम्बी कहानी बाजूबंद प्रबंध गीतों में पाई जाती है। स्वतंत्रता संग्राम की कहानी है तो गांधी, नेहरू और सुभाष के गीत हैं। यही नहीं, इन लोकाभिव्यक्तियों में सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन, अकाल, भूख सेक्स और प्रेम तथा प्यार के लिए आत्मोसर्ग के मनोरंजक और लोमहर्षक वृतान्त हैं । राजशाही की तानाशाही है तो मुस्लिम काल के अन्याय का संश्लिष्ट विवेचन है। दुर्व्यवस्था का चित्रण है। अन्यायियों की स्वेच्छाचारिता कामुकता और अत्याचार की कहानी है लोकाभिव्यक्तियों में। सतियों के सतीत्व की रक्षा के संघर्ष का वर्णन है तो रानी बौराणी जैसे दिव्य चरित्रों की गाथाएं हैं। सूरजूकुंवर और जोतरमाला के पवित्र प्यार का, लोमहर्षक संघर्ष है। नारी मन की व्यथा है, भावुकता का उमाल है, बहते और झरते आँसू हैं।इस पार्वत्य प्रदेश के अनेक वीरों की गाथाएं लोक गाथाओं के रूप में पाई जाती हैं । पंवाड़ों में वीर गीतों का गायन है। सूरजू कुंवर और जीतू की गाथाएं हैं। सिपाहियों के गीत हैं तो स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष के गीतों के साथ अंग्रेजों के

अत्याचार, टिहरी राज्य शाही के अत्याचार और खांई कांड की अनुगूंज है। उत्तर भारत के गोपीचन्द्र और भरथरी की कहानी है। गुरू गोरखनाथ का अलख है तो नाथों की अति मानवीयता की अद्भुत प्रस्तुतियाँ हैं। सोलहवीं शताब्दी के जगदेव पवार की गाथा है। यह गाथा राजस्थान में भी अति प्राचीन काल से अत्यन्त प्रसिद्ध है। गीतों, कथाओं, कहानियों और अखाणों और पखाणों से तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। () गढ़वाल वीरों की भूमि रही है। सिपाहियों की जन्मस्थली रही है। गढ़वाल के सिपाहियों का प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में अलौकिक शौर्य, संसार में प्रसिद्ध रहा है। इस अलौकिक लोकवार्ता साहित्य में अनेक ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनसे गढ़वाल का इतिहास जोड़ने में बड़ी सहायता मिलती है। एटकिंसन ने गढ़वाल का इतिवृत्त लेखन में, लोकवार्ता साहित्य और विभिन्न कलानुभूतियों का उपयोग किया है। यहां धार्मिक गाथाएं और ऐतिहासिकअनैतिहासिक वीरों और वीरांगनाओं के गीत बड़े चाव से गाये जाते हैं। इसी तरह की लोक गाथाएं गढ़वाल से लगे क्षेत्र के अलावा खासतौर से राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र और गुजरात तथा बंगाल के लोकवार्ता साहित्य में उपलब्ध होती हैं। इस तरह इनके अध्ययन से गढ़वाल सम्बन्धी प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। स्वतंत्रता संग्राम के समय गांधी, जवाहर, सुभाष, बटोहियों, और फिरंगियों के अत्याचारों की कहानी मिलती है।

भौगोलिक महत्व

गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य, लोकगीतों और लोक कलाओं में, यद्यपि भूगोल विषयक प्रामाणिक जानकारी तो नहीं मिलती है तो भी इनमें भूगोल सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त होती हैं। देव गीतों, देव गाथाओं और तंत्र मंच के गीतों में अनेक स्थानों, भौगोलिक स्थितियों और भूलोकों के वर्णन हैं। देव लोक, भूलोक, ध्रूलोक, पाताल लोक, दिगदिगंत और ढोल सागर जैसे ग्रन्थ में, धूलोक, स्वर्गलोक और दश दिशाओं तक अन्तरिक्ष और आकाश के रहस्यों की स्थितियों का निरूपण किया गया है। गीताभिव्यक्तियों, गाथाओं, कथाओं, पहेलियों और कहावतों में गंगा, यमुना, अलकनन्दा, भागीरथी, भिलंगना, कैलाश पर्वत, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, वाण गंगा, पिण्डर, मंदाकिनी, विष्णु गंगा के नाम आते हैं। बदरीकेदार, काशी, प्रयाग, अयोध्या और जनकपुरी के नाम हैं। कुर्मांचल, जालंधर, नेपाल,

हिमालय और केदार खण्ड, पांच खण्डों के नामों का उल्लेख है। जगदेव पवार, जीतू, सूरजू कुंवर मानशाह, अजयपाल, प्रीतम देव मालूसाही, हंसाहिडवाण, गंगू रमोला, कालू भण्डारी, गढूसुम्याल, विधनी विजैपाल, और जोतमाला, पत्थर माला, चन्द्रावली, सुरभा, सरूकमैणं राजूला, बरूणा, सुरमा तथा तीलू रौतैली की गाथाओं में अनेक नगरों, स्थानों, खेतों, खलिहानों, सेरों पहाड़ की चोटियों और क्षेत्रों की स्थिति का का ज्ञान होता है। लोक कथाओं, कहावतों और पहेलियों में भूगोल की जानकारी है। राजा भरथरी और गोपी चन्द्र की कथा में अनेक शहरों और जगहों के नाम हैं । जागर और तंत्र गीतों में अनेक रहस्यमय वाणियों के साथ उनके स्थानों के नाम परिचय है। लोक गाथाओं में उत्तरी सीमान्त के गाँवों और स्थानों का भूगोल है। उत्तराखण्ड के भूगोल के साथ नेपाल खण्ड, कूर्मांचल खण्ड, हिमालय, जालंधर, वंग प्रदेश, भूटांतिक प्रदेश, तिब्बत, भूटान, कामरूप आसाम, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी, सरस्वती के नामोल्लेख के साथ स्थानों का भी उल्लेख है जो भौगोलिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोकवार्ता साहित्य,लोक-गीतों और लोक कलाओं के सम्बन्ध मं अनुसंधान किया जाय तो बहुत सूचनाएं और सामग्री प्राप्त हो सकती है।

आर्थिक महत्व

सारे के सारे गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य, गीत और कलाओं में जीवन के आर्थिक पक्ष की झांकी मिलती है। कलाओं में, पौराहात्य पूजनों में, गीत और कथाओं में तथा लोकोक्तियों में सोनेचाँदी के आभूषणों और सोने की थाली तथा चाँदी के गढ़वे का वर्णन है। सोने की कंघी और चन्दन की पलंग की बात बारबार कही गई है। रेशम की रस्सी, सोने की नथबेसर और मुरकुलों का वर्णन आया है। गले की हंसली तथा हाथों की पौछियों की याचना बेटियों द्वारा की गई है। मिष्ठानों, पकवानों स्वाला, पकौड़ा और आर्सा, रोट के कर्लेऊ ले जाने वाले लगौण्या और पठौण्यों का जिक्र है। पौराहात्य कर्मकाण्ड में दक्षिणा की बात है तो बेटी द्वारा 'डबली के गौंणा' मांगे गये हैं। 'लाँग' लोकोत्सव में किसानों से डडवार के रूप में अन्न और धन, रूपयापैसा प्राप्त करना उद्‌देश्य है। इससे यह विदित होता है कि लोकवार्ता, गीत और कला में वर्णित समाज धनी तथा सम्पन्न था। इस लोकवार्ता साहित्य में

गढ़वाल का आर्थिक भूगोल भी पाया जाता है। बहू के लिए सुदूर देशप्रदेश में बिकने वाली चीजें लाने का संकेत है तथा बनारसी साड़ी, कुमैया, घाघरा इत्यादि। इसी तरह बेटी को देने के लिए अनेक स्थानों से गहने, कपड़े तथा गाय, भैंसों के लस्कर देने के वर्णन हैं। गीतों में फलों, फूलों, वृक्षों, पुष्पों और अनेक वनस्पतियों का उल्लेख है। इससे हमें अपने भौतिक भूगोल का ज्ञान होता है। आम, अनार, उैकंण,हल्दू. कुलैं लोक जीवन के साथी हैं। प्रेयसियों और पत्नियों के लिए लौंग, इलायची, नीबू, केला, मिठाई, लड्डूपेड़ा का उल्लेख है। वैसे भारत के लोकवार्ता साहित्य की यह विशेषता है कि इसकी लोकाभिव्यक्तियों में उस प्रदेश की वनस्पति पेड़पौधों, पशुपक्षियों से लेकर पाये जाने वाले जानवरों, उसकी ऋतुओं और उसके मौसम, जाड़ागर्मी, ह्यूद और रूड़ी तथा बसगाल का सम्यक विवेचन मिलता है। गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य की भी यही प्रवृत्ति है और इन सबके साथ यहाँ के 'ह्यूंद' (जाड़ा,) रूड़ी(गर्मी) और बसगाल (वर्षा ऋतु) का मनोहारी वर्णन यहाँ की लोकाभिव्यक्तियों गीत साहित्य में है।

समाज का चित्रण

गढ़वाली लोकवार्ता साहित्य में लोक संस्कृति का सम्यक चित्रण मिलता है। लोकगीतों गाथाओं, कथाओं, पहेलियों और लोकोक्तियों तथा लोक कलाओं में जीवन का सच्चा चित्रण है। गढ़वाल के इस लोकवार्ता साहित्य में सम्पूर्ण समाज का अकृत्रिम चित्रित स्वरूप उपलब्ध है। साहित्य का यह चित्रण सत्य है, यथार्थ है। साहित्य में वैसा ही है जैसा कि गढ़वाल का यह समाज रहा है और गढ़वाली लोकवार्ता साहित्य में इसका वैसा ही वर्णन हुआ है जैसा कि यह है। लोक संस्कृति को ही सही परिप्रेक्ष्य में जानने के अभी प्रयास नहीं हुए हैं । अतः गढ़वाल की लोकसंस्कृति के यथा तथ्यचित्रण के लिए गढ़वाली लोकवार्ता साहित्य का सम्यक अनुसंधान आवश्यक है। इनमें मनुष्य जीवन का यथार्थ चित्रित है। गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य में समाज का उच्च, शिष्ट, सभ्य एवं सुसंस्कृत वर्णन किया गया मिलता है। आनुष्ठानिक संस्कारों के रेखांकनों, जनजीवन के उल्लास के प्रतीक लोककनृत्यों, लोकाभिव्यक्ति के स्वांगों, नाटकों और लोक संगीत की सुमधुर धुनों तथा पतिपत्नी, भाईबहन, मातापुत्री, पितापुत्र, ननदभावज और सासबहू के गीतों में गढ़वाली समाज का सच्चा चित्रण है। इनमें भाईबहन का प्रेम, विवाह, विदाई, पुत्र जन्म की खुशी और बेटी का मोल लेने के कारण ही उत्साह हीनता सर्वत्र

अभिव्यक्त हुई मिलती है। लोकाभिव्यक्तियों में पतिपत्नी का दिव्य और अलौकिक प्रेम है, विरह जनित वेदनाएं हैं, बारहमासा की सुदुःख की अनुभूतियाँ हैं और परदेशी पति के विरह में जान देने की अभिव्यक्तियां हैं। रामी के गीत में पत्नी के सतीत्व की पहचान के लिए वेश बदलकर, प्रलोभन दिया गया है, परीक्षा ली गई है। इन लोकाभिव्यक्तियों में जहां सामाजिक प्रेम की मंदाकिनी है वहीं परस्पर कलह, द्वेष, विरोध और संघर्ष का चित्रण भी मिलता है। ननदभावज का विरोध, भाई से भाई की शिकायत, लुकाछिपी सभी कुछ है। सासू और ब्वारी (सासबहू) के सम्बन्धों की कटुता, सास के अत्याचार, बहू की मायके के लिए ललक, ठीक से भोजन न देना, सौतियाडाह, बालविवाह, वृद्धविवाह तथा बहुविवाह के वर्णन मिलते है। गढ़वाल के इस लोकवार्ता साहित्य में

(1) स्थानीय रीतिरिवाज

(2) आचारविचार

(3) खानदान

(4) वेशभूषा और

(5) रहनसहन के तौर तरीके मालूम होते हैं जो समाज शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बहुउपयोगी सामग्री है क्योंकि समाज की संरचना के अध्ययन के लिए उनकी रचना धार्मिता, पौरवाहित्यिक, स्वरूप, कर्मकाण्ड, हासविलास की अभिव्यक्तियों, अभिनय की प्रवृत्तियों और मनोरंजन के उनके आदिम स्वाँगों और प्रस्तुतियों तथा मौखिक साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।

धार्मिक महत्व

गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य में लोक गीतों और कलाओं में जनता की धार्मिक भावनाएं भी प्रतिविम्बित मिलती हैं। गंगामाता, तुलसीमाता, शीतलामाता के गीतों के साथ, स्थानीय देवी देवताओं, मोरी का नरैण, खोल का गणेश, नरसिंह, नागराजा, भैरों आछरी, भगवती, कुल देवता, तांत्रिक देवीदेवताओं और स्थानीय शूरवीरों तथा सती- सावित्री नारियों के गीतों में भक्तिपूर्ण उद्गार मिलते हैं। भजनो में संसार की असारता, जीवन की क्षण भंगुरता तथा वैभव की निस्सारता का उल्लेख हुआ है। सभी वारों और त्योहारों की व्रत कथाओं में गूढ़ रहस्य हैं। भक्ति गीतों और लोक कथाओं तथा लोकोक्तियों की शिक्षा से

लोक मानस सर्वाधिक प्रभावित मिलता है। बदरीकेदार, गंगोत्रीयमनोत्री, स्थानीय देवों, नरसिंग, नागराजा, हीत, भगवती, भैंरों, आछरी, गंगा, भागीरथी, अलकनन्दा, मंदाकिनी और तुलसी की महत्ता लोकाभिव्यक्तियों में सर्वत्र मिलती है। लोकवार्ता साहित्य के अध्ययन से समाज में प्रचलित विभिन्न देवीदेवताओं और उनकी पूजापद्धति का भी पता चलता है। गढ़वाल के इस गीत साहित्य, लोकवार्ता में, हिन्दू पुराण साहित्य के अनेक ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश डाला गया मिलता है। इस तरह गढ़वाली समाज की सारी की सारी संरचना के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं, इन लोकाभिव्यक्तियों अथवा लोकवार्ता साहित्य में।

नैतिक आचरण की श्रेष्ठता

गढ़वाल के लोकवार्ता साहित्य में लोकोत्तर और दिव्यनैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है। गढ़वाल की समस्त प्रकार की लोकाभिव्यक्तियों, लोकोल्लास, अभिनयात्मक अभिव्यक्तियों तथा लोक-धर्मी कलाओं के स्वरूप एवं गीत साहित्य तथा कथाओं के अध्ययन से विदित होता है कि उस समय के लोगों का चरित्र ऊंचा था। उनका नैतिक स्तर बहुत ऊंचा था। रामी वैराणी की कथा तथा सूरजू कुंवर, जैसी लोक गाथाओं और कथाओं की चरित्र नायिकाओं के सतीत्व का आदर्श रूप अलौकिक है, दुर्लभ है। इस तरह इन अभिव्यक्तियों से समाज के उच्च नैतिक आचरण की श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

भाषा शास्त्र सम्बन्धी महत्व

भाषा शास्त्र की दृष्टि से गढ़्वाली लोकवार्ता साहित्यलोक साहित्य का महत्व सर्वाधिक है। गढ़वाली भाषा के अध्ययन और समग्र रूप से भाषा शास्त्र के लिए यह अमूल्य निधि है। शब्द वांङ्मय का अक्षय भण्डार है। गढ़वाली लोक गीतों, गाथाओं, कथाओं पहेलियों और लोकोक्तियों में व्यवहृत शब्दों से शब्दों की निरुति का पता लगाया जा सकता है तथा भाषा शास्त्र सम्बन्धी गुत्थी सुलझायी जा सकती हैं। गढ़वाली में प्रचलित शब्दों द्वारा हिन्दी के अनेक शब्दों की विकास परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। वेदों के बहुत से शब्द प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और खड़ी बोली में नहीं हैं लेकिन उनके पर्यायवाची शब्द लोक भाषा में प्राप्त हैं। इस तरह शब्दों की ऐतिहासिक परम्परा जानने के लिए लोक वार्ता साहित्य अत्यन्त उपादेय है। लोक साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को ग्रहण करने से

हिन्दी की श्रीवृद्धि होगी तथा उसका भाषाभण्डार समृद्ध होगा। नये शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों को अपनाने से हमारी राष्ट्रभाषा की अभिव्यक्ति बढ़ेगी। गाँवों की विभिन्न पेशेवर जातियों लोहार, सुनार, बढ़ई, धुनार, कोली तथा दर्जी जिन साधनों अथवा औजारों से कार्य करते हैं उनके विभिन्न नामों का संग्रहपारिभाषिक शब्द संग्रह तथा उन्हें ग्रहण करने से राष्ट्रभाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए मंगलकारी होगा । गढ़वाली के लोक साहित्य कोश में ऐसे शब्द हैं, जिनके भाव हिन्दी मे व्यक्त करना सम्भव नहीं है यथा "खुद' 'आग भभराना', 'बाडुली लगना' इत्यादि। इस तरह गढ़वाली के ऐसे लोक शब्दों जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी में नहीं हैं, को अपनाया जाय और उनका संग्रह किया जाय तो राष्ट्र भाषा हिन्दी का शब्द भण्डार बढ़ सकता है। भाषा शास्त्र सम्बन्धी लोकवार्ता साहित्यलोक साहित्य के महत्व की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए । इससे राष्ट्र भाषा की शब्दवृद्धि के साथ, भाषा की "रिचनेस" (समृद्धता) भी बढ़ेगी और उसके सौन्दर्य-सौष्ठव में निखार आयेगा , एक समृद्ध भाषा बनेगी।

अध्याय - 12

परिशिष्ट

(सन्दर्भ-सूची)

1.	गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन	श्री मोहनलाल बाबुलकर
2.	ब्रज लोक साहित्य	डॉ0 सत्येन्द्र
3.	पृथ्वीपुत्र	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
4.	एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका	
5.	बेला फूले आधी रात	डॉ0 देवेन्द्र सत्यार्थी
6.	भारतीय लोक साहित्य	डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय
7.	बाजत जावत ढोल	डॉ0 देवेन्द्र सत्यार्थी
8.	लोक संस्कृति विशेषांक	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
9.	ब्रज भारती	
10.	भारतीय लोक साहित्य	डॉ0 श्याम परमार
11.	कविता कैमुदी भाग-5	डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी
12.	इंगलिश एण्ड स्कौटिश पापुलर बैले	-
13.	दि बैले	-
14.	अवदान-ब्रजलोक साहित्य	डॉ0 सत्येन्द्र
15.	डेनमार्क का लोक साहित्य	
16.	मेवाड़ की कहावतें	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
17.	गढ़वाली पखाणां	श्री शालिग राम वैष्णव
18.	लोकवार्ता	श्री कृष्णा नन्द गुप्त
19.	लोक साहित्य की भूमिका	श्री सत्यव्रत अवस्थी
20.	सिंहनाद	श्री भजन सिंह "सिंह"
21.	गढ़वाल का इतिहास	श्री हरिकृष्ण रतूड़ी

22.	गढ़वाल गजेटियर	श्री एच0सी0 वाल्टन
23.	विराट हृदया	श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा
24.	गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां	डॉ0 भक्तदर्शन
25.	देव प्रयाग सांस्कृतिक सम्मेलन पत्रिका	सम्पादक-श्री मोहनलाल बाबुलकर
26.	सूरज कुंवर लोक गाथा	श्री भजन सिंह "सिंह"
27.	गढ़ सुम्याल	श्री.शिव नारायण सिंह विष्ट
28.	गढ़वाल की लोक गाथाएं	डॉ0 गोविन्द चातक
29.	तिलू रौतेली (कर्मभूमि/सम्पादक)	श्री भैरव दत्त जी धूलिया
30.	गंगा बहे	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी
31.	धुयांल	गढ़वाल साहित्य परिषद, दिल्ली
32.	कुमाऊँ का इतिहास	श्री बदरीदत्त पाण्डेय
33.	ग्रामगीत	श्री राम प्रसाद त्रिपाठी
34.	गिरीश	गढ़वाल साहित्य मण्डल, दिल्ली
35.	गढ़वाल प्राचीन और नवीन	डॉ0 पातीराम परमार
36.	नवाणं	श्री गिरधारी प्रसाद "कंकाल"
37.	मौछंग	श्री चक्रधर बहुगुणा
38.	हिलाँस	श्री भगवती चरण निर्मोही
39.	रैवार	श्री सदानन्द जखमोला
40.	प्रेमी पथिक	श्री तोता कृष्ण गैरोला
41.	गढ़वाली कवितावली	श्री विश्वम्भर दत्त चन्दोला
42.	हिमालय परिचय	श्री राहुल सांस्कृत्यान
43.	गढ़वाल गजेटियर	श्री एट किंसन
44.	आणां (संग्रहीत)	श्री सुन्दरलाल बाबुलकर शास्त्री
45.	धरती गाती है	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी
46.	लोक साहित्य	डॉ0 कृष्णदेव
47.	भारतीय लोक साहित्य	डॉ0 अवस्थी

48.	स्नोबॉल ऑफ हिमालय	डॉ0 मुखर्जी और श्री नरेन्द्र सिंह भण्डारी
49.	वसुधारा ⟮1946⟯	गढ़वाल साहित्य परिषद, प्रयाग
50.	वसुधारा ⟮1981⟯	गढ़वाल साहित्य परिषद, प्रयाग
51.	वसुधारा ⟮1983⟯ डॉ0 लखेड़ा स्मृति अंक	गढ़वाल साहित्य परिषद, प्रयाग
52.	वसुधारा-92	गढ़वाल साहित्य परिषद, प्रयाग
53.	गढ़वाल की लोकधर्मी कला	श्री मोहनलाल बाबुलकर
54.	दि बिगनिंग ऑफ आर्ट	-
55.	सम्मेलन-पत्रिका	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
56.	सोशल रूट्स ऑफ दि आर्ट	श्री ल्यूस हाटपस
57.	भारतीय चित्रकला	श्री असीत कुमार हल्दार
58.	नाट्य शास्त्र	-
59.	लोकधर्मी नाट्य परम्परा	डॉ0 श्याम परमार
60.	दि संस्कृत ड्रामा	डॉ0 कीथ
61.	अलकनन्दा उपत्यका	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल "चारण"
62.	आस्था और सौन्दर्य	डॉ0 राम विलास शर्मा
63.	उत्तराखण्ड के भोटांतिक	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
64.	उत्तराखण्ड के पशु चारक	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
65.	उत्तराखण्ड की झाँकी	श्री उमराव सिंह रावत
66.	उत्तराखण्ड की धार्मिक महत्ता	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
67.	कालिदास का भारत	डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय
68.	कुमाऊँ का लोक साहित्य	डॉ0 कृष्णानन्द जोशी
69.	केदार खण्ड	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
70.	कैलाश यात्रा	स्वामी श्री प्रवणानन्द
71.	गढ़वाली लोक गीत	डॉ0 गोविन्द चातक
72.	गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य	डॉ0 हरिदत्त भट्ट "शैलेश"

73.	गढ़वाल के लोक नृत्य	डॉ0 शिवानन्द नौटियाल
74.	गढ़वाली बारामासा	डॉ0 शिवानन्द नौटियाल
75.	गोरख वाणी	डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
76.	गोरख नाथ	डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
77.	तपोभूमि श्री बदरीनाथ	श्री गोविन्द प्रसाद नौटियाल
78.	नाथ और सिद्धों की बानियाँ	डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी
79.	पाणिनी कालीन भारत	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
80.	पार्वती	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
81.	पार्वती	डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला
82.	प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति	डॉ0 राज किशोर सिंह डॉ0 श्रीमती ऊषा यादव
83.	पृथ्वी पुत्र	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
84.	पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली का लोक साहित्य और कला	श्री मोहनलाल बाबुलकर
85.	हिमालय में मतमतान्तर	श्री मोहनलाल बाबुलकर
86.	फते प्रकाश	कै0 शूरवीर सिंह पंवार
87.	विचित्र नाटक	गुरू गोविन्द सिंह
88.	भारत के लोक नृत्य	डॉ0 श्याम परमार
89.	मकरन्द	डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
90.	योग प्रवाह	डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
91.	लोक साहित्य विज्ञान	डॉ0 सत्येन्द्र
92.	लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग	श्री श्रीराम शर्मा
93.	लोक साहित्य और संस्कृति	श्री दिनेश्वर प्रसाद
94.	सभ्य मानव का मूल स्थान	श्री हरिराम धस्माना

95.	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
96.	हिमालय की लोक कथाएं	श्री ओकले और श्री तारादत्त गैरोला
97.	एजूकेशन सोशियोलॉजी	श्री ई0जे0 ब्राउन
98.	डांस ऑफ इन्डिया	श्री ब्रजेश बनर्जी
99.	हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ	डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन
100.	भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी	डॉ0 सुनीति कुमार चादुर्ज्या
101.	गढ़वाल में कौन कहाँ	श्री महीधरमर्षा बड़थ्वाल
102.	केदार खण्ड (स्कन्द पुराण)	श्री वेद व्यास
103.	भारत का भाषा सर्वेक्षण	डॉ0 ग्रियर्सन
104.	राजस्थानी कहावतें	डॉ0 कन्हैया लाल सहगल
105.	गढ़वाली	श्री श्यामचन्द्र नेगी
106.	गढ़वाली का निवेध	श्री भगवती प्रसाद पांथरी
107.	वेदमाता	श्री हरिराम धस्माना
108.	खिजड़ी	डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला
109.	जमना से गंगा	श्री मोहनलाल वाबुलकर
110.	गढ़वाली भाषा	डॉ0 गोविन्द चातक
111.	गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य	डॉ0 हरिदत्त भट्ट "शैलेश"
112.	प्रयत्न जारी है	डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला
113.	जंगल मा मंगल	श्री भगवान सिंह रावत 'अकेला'
114.	गारि	श्री दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल
115.	हिमालय और हिमालय पर्यन्त टिहरी राज्य की भौगोलिक स्थिति	श्री हरिकृष्ण रतूड़ी
116.	देव प्रयागी प्रकाश	श्री देवी प्रसाद कोठियाल
117.	गाड्म्यटेकिगंगा	श्री अबोध बंधु बहुगुणा

118.	पद्य-कादम्बरी	पं0 भगवान दास सतभैया
119.	गढ़वाल के लोक नृत्य गीत	डॉ0 शिवानन्द नौटियाल
120.	महा कवि कालिदास	श्री सदानन्द जखमोला
121.	अखं-पखं	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
122.	नौबत	श्री चक्रधर बहुगुणा
123.	शैलवासी	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
124.	माया मेलुड़ी	श्री भगवान सिंह रावत अकेला
125.	वैताल पच्चीसी	श्री जयलाल वर्मा
126.	रुक्मिणी गौरव	श्री आत्माराम फादेणी
127.	म्वारि	श्री दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल
128.	वीर वाला तील् रौतेली	डॉ0 नन्दकिशोर ढौंडियाल
129.	उत्तराखण्ड के भोटांतिक	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
130.	गढ़वाली चित्र शैली के उन्नायक बैरिस्टर मुकन्दीलाल	श्री भक्त दर्शन
131.	पं0 वृन्दावन ध्यानी स्मृति-ग्रन्थ	श्री मोहनलाल बाबुलकर
132.	आचार्य पं0 चक्रधर जोशी स्मृति ग्रन्थ	श्री मोहनलाल बाबुलकर
133.	बन्दी स्मरण	श्री महावीर प्रसाद बिष्ट
134.	पर्वतीय साहित्यकार कोश	श्री मोहनलाल बाबुलकर
135.	गढ़वाली भाषा शब्द कोश	मास्टर जयलाल वर्मा
136.	खिलदाफूल हँसदा पात	श्री ललित केशवान
137.	गढ़वाली भाषा की दन्त कथाएं	श्री चक्रधर बहुगुणा
138.	श्री देव प्रयाग माहात्म्य	श्री लज्जा राम पण्डा
139.	भारत गोत्र प्रवर दीपिका	श्री दिवाकर शर्मा चतुर्वेदी
140.	गढ़वाल पेंटिंग	श्री मुकन्दी लाल बैरिस्टर
141.	समत्यौणं	श्री जग्गू नौटियाल
142.	अधपतन	श्री भगवती प्रसाद पांथरी

143.	फूल कंडी	महंत श्री योगेन्द्र पुरी
144.	गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ	डॉ० भक्तदर्शन
145.	गढ़वाली के प्रमुख अभिलेख	कै० श्री शूरवीर सिंह पंवार
146.	कॉल ऑफ बदरीनाथ	श्री गोविन्द प्रसाद नौटियाल
147.	मध्य हिमालय में शिक्षा और शोध	श्री चन्द्रशेखर बडोला
148.	जोनि पर छापु किलै	श्री मोहनलाल नेगी
149.	आर्यों का आदि निवास	श्री भजन सिंह "सिंह"
150.	सरगदिद्या पाणि पाणि	श्री राधाकृष्ण कुकरेती
151.	पर्यटकों का स्वर्ग उत्तराखण्ड	श्री जगमोहन सिंह नेगी
152.	हिमालयी पर्यावरण	डॉ० मोहन डबराल
153.	गिरीश	बदरीश पोखरियाल
154.	मंगलू	कन्हैया लाल डंडरियाल
155.	तिड़का	श्री अबोध बंधु बहुगुणा
156.	नवाण	श्री गिरधारी प्रसाद कंकाल
157.	उज्याली	शिवानन्द पाण्डेय
158.	रवांई	श्री धर्म देव शास्त्री
159.	बासुली	श्री भगवती प्रसाद पांथरी
160.	सुमन स्मृति ग्रन्थ	डॉ० भक्तदर्शन
161.	मंदाकिनी	श्री मनोहर लाल उनियाल
162.	नाट्य नन्दिनी	डॉ० शिव प्रसाद डबराल
163.	रैबार	श्री सदानन्द जखमोला
164.	सूना बौणं	श्री गिरधारी प्रसाद कंकाल

165.	उत्तराखण्ड की एक झांकी	श्री उमराव सिंह रावत
166.	खुदेड़	श्री उमाशंकर सतीश
167.	श्री नर नारायण अभ्युमय	पं0 मुरली धर शास्त्री
168.	अलकनन्दा उपत्यका	श्री शिव प्रसाद डबराल
169.	उत्तराखण्ड का इतिहास	श्री शिव प्रसाद डबराल
170.	भोला राम ग्रन्थावली	शिव प्रसाद डबराल
171.	श्री केदारनाथ बदरीनाथ दर्शन	श्री अमर नाथ शर्मा
172.	श्री प्रताप सिंह मेहता स्मृति ग्रन्थ	श्री मोहन लाल बाबुलकर
173.	उत्तरा खण्ड का इतिहास भाग-2	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
174.	उत्तरा खण्ड का इतिहास भाग-3	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
175.	उत्तरा खण्ड का इतिहास भाग-4	डॉ0 शिव प्रसाद डबराल
176.	उत्तरा खण्ड का इतिहास भाग-4 (संशोधित)	डा0 शिव प्रसाद डबराल
177.	गढ़वाल की जीवित विभूतियाँ और गढ़वाल का वैशिष्ट्य	श्री मोहनलाल बाबुलकर
178.	गढ़वाल के लोक संगीत एवं वाद्य	डॉ0 शिवानन्द नौटियाल
179.	पश्चिमी हिमालय की लोक कलायें	श्री ओम चन्द हांडा

पत्र-पत्रिकाएं

कर्मभूमि
देवभूमि
युगवाणी
वसुधारा
सत्य पद्य
शैलोदय
त्रिपथगा
सीमान्त प्रहरी
भूविम्ब
अलकनन्दा
बुग्याल
उत्तराखण्ड केसरी
उत्तराखण्ड
मातृ-पद
अमर उजाला
शक्ति
हिलाँस्
हिमानी
सरहदी
गढ़वाल गजेटियर

गढ़-सुधा
गढ़-गौरव
जन लहर
महकते स्वर
नया जमाना
मसूरी टाइम्स
धर्मयुग
कादम्बिनी
सम्मेलन पत्रिका
चांद
नवनीत
साप्ताहिक हिन्दुस्तान
नवभारत टाइम्स
अमृत प्रभात
राष्ट्रभाषा सन्देश
हिन्दुस्तानी
सुन्दरम् (अंग्रेजी)

चित्र-खण्ड

स्थापत्य कला

णेश की नृत्य करते हुए पत्थर पर बनी प्रतिमा, ीचे बायें दायें दो गण भी उपस्थित हैं। यह ारहवीं शताब्दी की स्थापत्य कला का एक मूना है।

'कल्याण सुंदर' शिव-पार्वती की इस प्रस्तर प्रतिमा में शि विवाह का दृश्य अंकित है नीचे शिव गण विराजमान ह इसमें पार्वती शिव के दाहिने स्थित हैं। वैसे इस तरह अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां पत्नी वामांगी न हो दाहिनी ओर अंकित की गयी है। यह ग्यारहवीं-बारह शताब्दी की कलाकृति है।

दक शिव शिला खण्ड पर नृत्य की मुद्रा में बनाये यह नितांत मौलिक परिकल्पना है यह कलाकृति हवीं-बारहवीं शताब्दी की स्थापत्य कला को प्रदर्शित है।
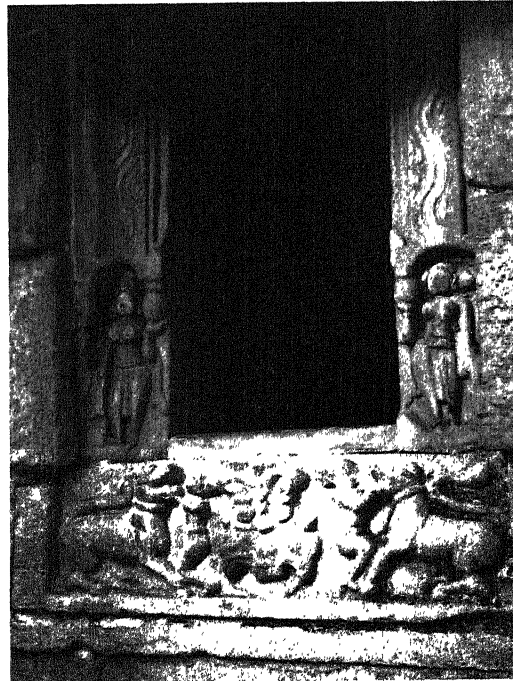
गंगा-यमुना की मानवरूप प्रतिमाएं मंदिर के प्रस्तर से सिंह द्वार पर बनायी गयी हैं। आधार शिला पर पशु क्रीड़ा करती महिलाएं अंकित की गयी हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की कृति है।

आकृति से अंकित यह अलंकृत पटक सत्रहवीं शताब्दी की
ा उत्कृष्ट नमूना है। गढ़वाल में गरुड़ की पूजा का विशेष महत्व
भिन्न क्षेत्रों में गरुड़ की प्रतिमाएं मिलती हैं। जिनमें से कुछेक
ाब्दी की हैं। चमोली से २२ किमी० आगे और जोशी मठ से
पीछे स्थित पाखी गांव में गरुण गंगा नाम की एक नदी भी
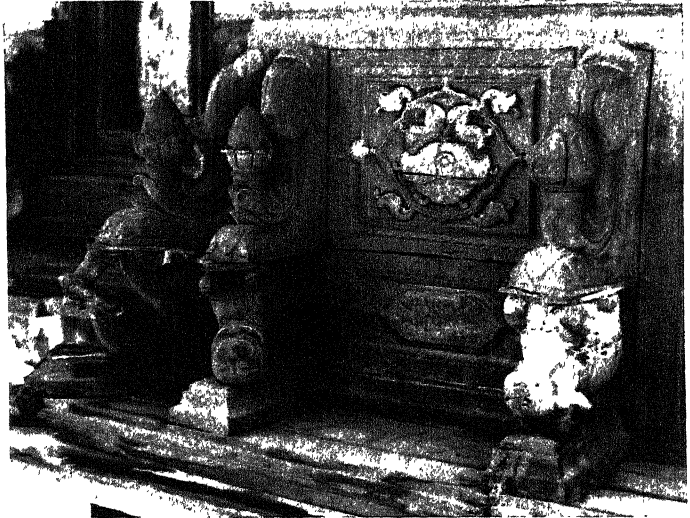
पत्थर पर उकेरे गये कलात्मक प्रतीकों का यह एक बहुत उत्कृष्ट उदाहरण है। लटकती हुई कमल की पंखुड़ियों के ऊपर शेर की आकृतियां स्थापित हैं। ये परम्परा सम्राट अशोक के समय में भी थी। बीचों बीच बना हुआ पुष्प का मोटिक पूर्णघट का द्योतक है। पुराने भवनों के द्वार पर शीर्ष पर इस तरह का कलात्मक अलंकरण पत्थर के साथ-साथ लकड़ी पर भी मिलता है।

ली के एक पारम्परिक घर का खूबसूरत उदाहरण है। इसमें गढ़वाल
ा निर्माण कला के दर्शन होते हैं। मुख्य प्रवेश द्वार को खोली कहते
ड़ी से बने खिड़की-दरवाजों पर कलात्मक अलंकरण मिलता है।
क खंभे जिन्हें तिबारी कहते हैं, काष्ठ कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।
के खंभे एक ही लकड़ी से ठोस बनाये जाते हैं जिनकी कारीगरी
ा के अनुरूप है। पत्थर पर कमल का मोटिफ बनाया गया है जिसे
लका कहते हैं जो प्राचीन परम्परा के अनुकूल है और यह समृद्धि
क है।

यह है गढ़वाल की वास्तुशिल्प का एक अन्य उदाहरण। अधिकांश दुमंजिले मकान हैं। नीचे के तल को भूमण्डा कहते हैं। लकड़ी के चौखट, दरवाजे, खिड़कियों और तिबारी के खंभों पर सुंदर अलंकरण किया जाता है। ऊपर स्तंभ के बायें-दायें फलक पर लकड़ी के कमलपुष्प बने हैं। गढ़वाल के मकानों में लकड़ी का काम विशेष सराहनीय है। विशेष रूप से उत्तरकाशी क्षेत्र में अनेक कलात्मक नमूने देखे जा सकते हैं।

लोकनृत्य

ा के साथ विविध आभूषण दर्शनीय हैं। नाक में है बेसर ाली नथ। सिर पर गड़वा और उंगलियों पर थाल नचाते ्त्यांगना।

ढोलक की थाप पर थिरकते जौनसार के लोकनृत्य कलाकार। पुरुषों के सिर पर टोपी और महिला कलाकारों के सिर पर विशेष ढंग से बांधा गया दुपट्टा दृष्टव्य है।

के साथ नृत्य करती महिलाओं के पीछे एक-दूसरे के कंधे नृत्य करते पुरुष कलाकार।

इस सामूहिक नृत्य में एक महिला कलाकार अंगुलियों पर थाली नचाती हुई, पुरुषों की विशेष वेशभूषा दर्शनीय है।

सर पर नृत्य की एक रोमांचक स्थिति जिसमें कलाकार ोहे की ढाल-तलवार के साथ नृत्य कर रहे हैं।

छोल्या नृत्य में ढाल-तलवार के साथ नृत्य करते पुरुष कलाकारों की गतिशीलता दर्शनीय है। इस सामूहिक नृत्य में महिलाओं की प्रस्तुति भी उल्लेखनीय है।

के अवसर पर आयोजित छोल्या नृत्य की एक आकर्षक नक बाजा' बजाते हुए लोक वाद्य कलाकार।

गोचर (चमोली) का एक सामूहिक नृत्य छोलिया नृत्य जिसमें स्त्री और पुरुषों की बराबर की भागीदारी रहती है। पीछे ढोल, दमौ और तुर्री बजाते लोक वाद्य कलाकार अपनी पारम्परिक वेशभूषा में।

ढ़वाल की एक युवती लोकनृत्य प्रस्तुत करते हुए,
है तुर्री और ढोल-दमौ बजाते वादक

थड्या गीत नृत्य की एक भावपूर्ण मुद्रा में चमोली जिले की बालाएं जो नृत
की पारम्परिक वेशभूषा के साथ गले में पहने है कंठी मालाएं।

ाथिक (मेले) या उत्सव पर किया जाने वाला एक सामूहिक नृत्य। यह सामूहिक नृत्य की
चीनतम शैली है जिसमें पिरामिड की आकृति बनाकर नृत्य किया जाता है। इस शैली का
ाय ईस्वी पूर्व दूसरी शती की मूर्ति कला में मिलता है।

आराम के खाली समय में मनोरंजन और खुशी के लिए मिल-जुलकर झोड़ा नृत्य करते कलाकार।

लक, हारमोनियम जैसे आधुनिक वाद्य यंत्रों के साथ तुर्री, ढोल-दमौ जैसे पारम्परिक वाद्य त्रों के साथ लोकगीतों पर सामूहिक नृत्य करते कलाकार।

विवाह के समय पर किये जाने वाले चौफुला नृत्य की एक मनोहारी प्रस्तुति।

-साली लोकनृत्य जिसमें जीजा साली को मेले से तमाम फरमाइशी चीजें खरीदवाने का
ासन दे रहा है।

साज-सज्जा के साथ मंच पर लोकनृत्य प्रस्तुत करती नृत्यांगनाएं।

कुड़ी नृत्य की गतिशील मुद्रा में लोक कलाकार।

मुक्तांगन में नृत्य करते लोक कलाकार और साथ में हैं बैठंकर लोकगीत गाते लोक गायक और वाद्य यंत्र बजाते लोक वाद्यकार।
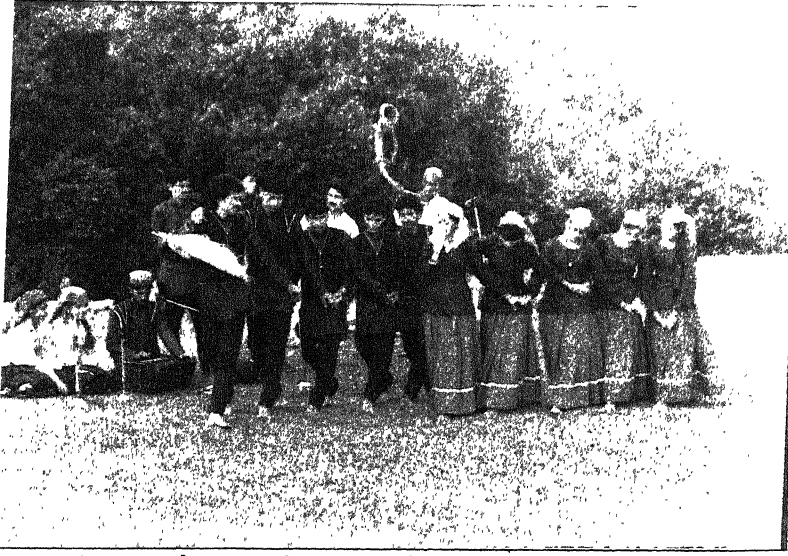
स्तुत करते युवक और युवतियों का समूह और साथ में बैठकर ाते कलाकार।

जोशीमठ के निकटवर्ती स्थानों में रहने वाली भोटिया स्त्रियां पारम्परिक वेशभूषा पहने नृत्य करते हुए।

ृत्य करते भोटिया कलाकार।

लोक वाद्य-यंत्र
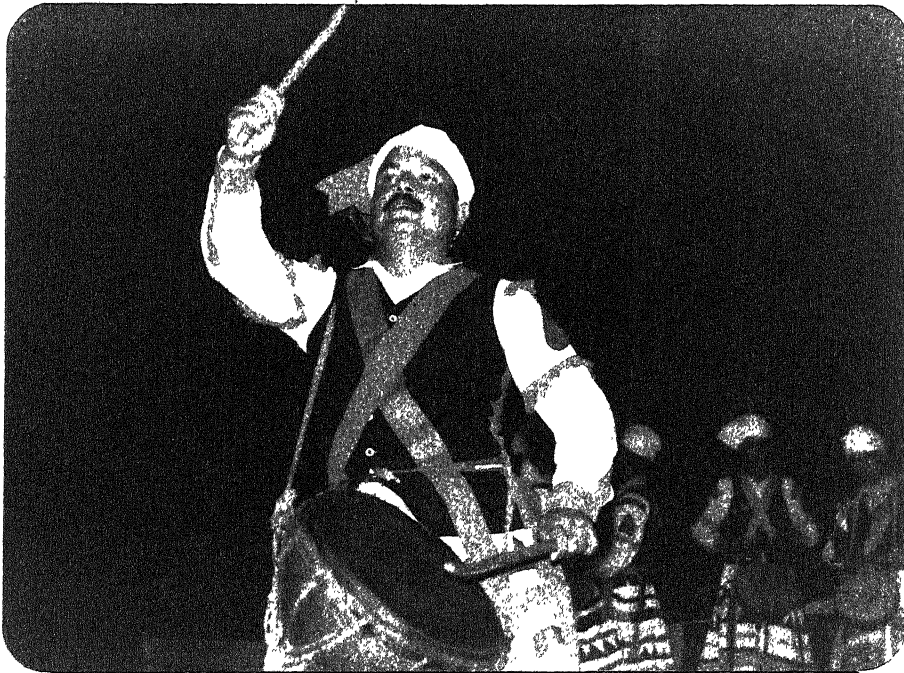
दमौ नामक वाद्य यंत्र बजाते हुए लोक कलाकार। गढ़वाल में एक विशेष जाति 'औजी' (दर्जीगिरी करने वाले) लोग ही ढोल-दमौ वादक होते हैं।

जो डमरू का एक विशिष्ट रूप है। बीच में ऽ रंगीन डिजाइन बने रहते हैं। बादी नृत्य में इसका योग होता है।

ढोल वाद्ययंत्र बजाता हुआ गोचर (चमोली) ~~का एक~~ कलाकार। ढोल, ढोलक का ही बड़ा रूप है। बायें हाथ में एक लकड़ी से बजाते हैं जिसे लाकुड़ कहते हैं और दायें हाथ से थाप दी जाती है।

दमौ और करताल बजाते लोकवादक।

ी, करताल व मसक बाजा से संगीत वाद्य प्रतिद्वंद्विता का प्रदर्शन
वर (चमोली) के कलाकार।

ढोल, दमौ और तुर्री के साथ सामूहिक नृत्य प्रस्तुत करते कलाकार। तुर्री वास्तव में नेपाल का एक बहु प्रचलित वाद्ययंत्र है, जिसका लामा लोग बहुत इस्तेमाल करते हैं। तुर्री पर लाल कपड़ा बांधना शुभ माना जाता है। विशेष अवसरों पर गढ़वाल में इसे बजाने का प्रचलन है।

आभूषण

ाभूषणों एवं वेशभूषा से सजी संवरी युवती। ांग भूषण मांग टीका बेदी सहित और चौड़ी ाक में पारंपरिक नथ और बेसर या बुलाक गले ो लड़ों के बीच में सोने का ठोस पेन्डेंट जिसे क रूप में पहना जाता है और हाथ में है शेर के कड़े।
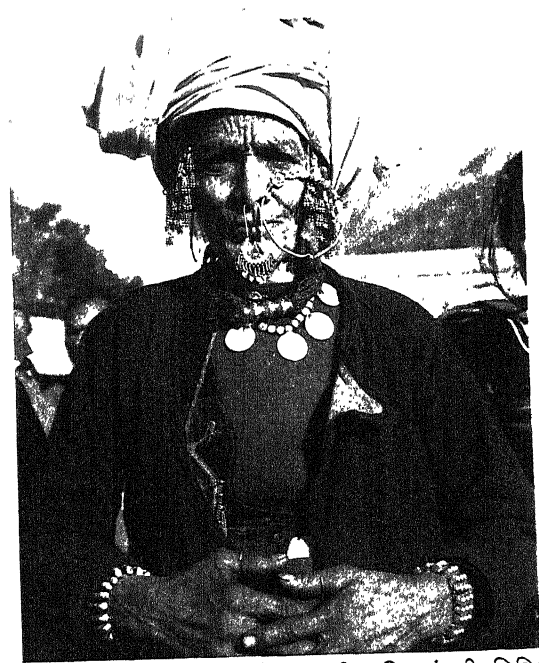
- युवतियां ही नहीं बुजुर्ग सौभाग्यवती महिलाएं भी विभिन्न आभूषणों से वेष्ठित रहती हैं। नाक में बड़ी नथ, बुलाक, कान में घुंघरूवाले कर्णभूषण, गले में मंगलसूत्र और रुपयों की माला और हाथ में पहने हैं विशेष कड़े जिन्हें धागुली कहते हैं।

व जाति की महिलाएं समान रूप से आभूषण पहनती हैं। की भेड़ बकरी चरानेवाली एक किशोरी जो गले में पारम्परिक ा है और हाथ में ब्रासलेट के रूप में चौड़े कड़े हैं।

विशिष्ट नृत्य की विशिष्ट वेशभूषा में सजी दो युवतियां। नाक में बड़ी नथ और लटकती बुलाक गले में कंठी मालाएं। कनपटी में ऊपर तक छेद करके बुजनी नामक आभूषण पहनने का रिवाज है।

ा की दो महिलाएं नाक में नथ और बुलाक, हाथों
ः मुँह वाले कड़े, कान में बालियां (बुजनी) और
र झाले पहने हुए। विशेष उल्लेखनीय है चांदी के
क बटन और बैज जिसे यहां 'सोआ' कहते हैं।

पद्यनृत्य (चंवरनृत्य) की मुद्रा में सजी धजी टिहरी गढ़वाल की दो युवतियां। सोने की नथ और बुलाक और गले में चांदी की लड़दार माला (प्रायः सात, नौ, ग्यारह लड़ें होती हैं) मूंगे की माला, कानों में बुजनी और झुमके पहने हैं।

ोली) की एक युवती सजधजकर थौल (मेला) जाते हुए। गले में
ोती की माला और चांदी का लड़दारलंबा हार, नाक में है नीचे
ती 'बुलाक' और फुल्ली (नाक की कील)।

चमोली (बेदनी बुग्याला) के एक दंपती अपनी पारम्परिक वेशभूषा पहने हुए। युवती की नाक में विशेष लम्बी बुलाक कान में बुजनी और लंबे लटकते झाले, गले में रुपयों की माला विशेष उल्लेखनीय है।

बेदनी (चमोली) की एक स्वस्थ, प्रसन्नचित्त व स्थानीय वेशभूषा और आभूषणों से वेष्ठित युवती जो गले में मोती और चांदी के रुपयों की विशेष मालाएं और चांदी का सतलड़ा लंबा हार पहने हैं और कान में है पारंपरिक नमूने के झुमके।

जौनसार की लोकनृत्य कलाकार बालाएं, जो नृत्य की आकर्षक पोशाक में सजी संवरी खड़ी हैं। गले में रुपयों की माला और गुलबंद व विशेष हार, बुलाक, झुमके पहने हैं और परिधान है मिरजई शैली का कुरता और लहंगा सिर पर विशेष ढंग से दुपट्टा बांधने का रिवाज है।

विविध

- बेदनी में नंदा देवी के थौल (मेले) में छोलिया नृत्य करते स्त्री-पुरुष।

नंदा देवी का थौल या कौथिक (मेला) गढ़वाल में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है और इसे नंदा जात का मेला कहा जाता है। इस अवसर पर नंदा देवी की डोली की आगवानी करते भक्तगण।

ग्रामीण उद्योग में रिंगाल के रेशे से टोकरी बनाना विशेष उल्लेखनीय है। ये विशेष प्रकार की टोकरियां सोल्टा, डोरा, जंगारा, घिड़ी आदि विविध नामों से मिलती है। 'घिड़ी' में बच्चे-बूढ़ों को बैठाकर ले जाते हैं। रुद्रप्रयाग के निकट 'हरियाली देवी' की यात्रा के मार्ग में साधन नहीं है वहां इन टोकरियों (घिड़ी) का आज भी बहुत प्रयोग होता है।
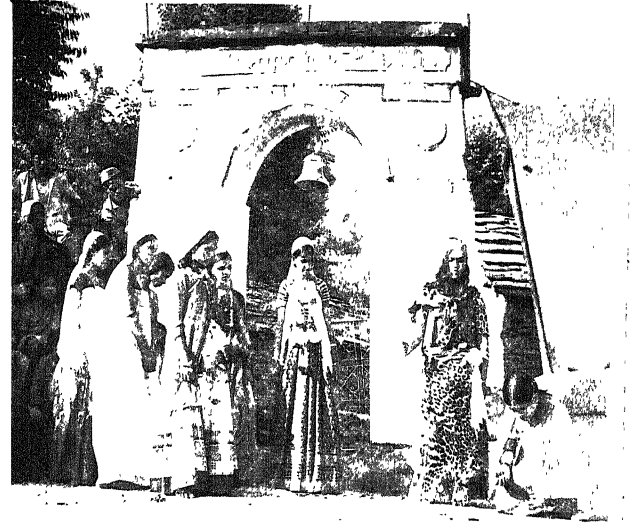
नौटी सिद्ध पीठ (नौटी ग्राम,, चमोली) में रूप कुण्ड नृत्य नाटिका का एक दृश्य

उत्तरकाशी की एक महिला अपनी किशोरवय बेटी की वेणी बांधते हुए। गढ़वाल में इस तरह का वेणी बंधन बहुत लोकप्रिय है।
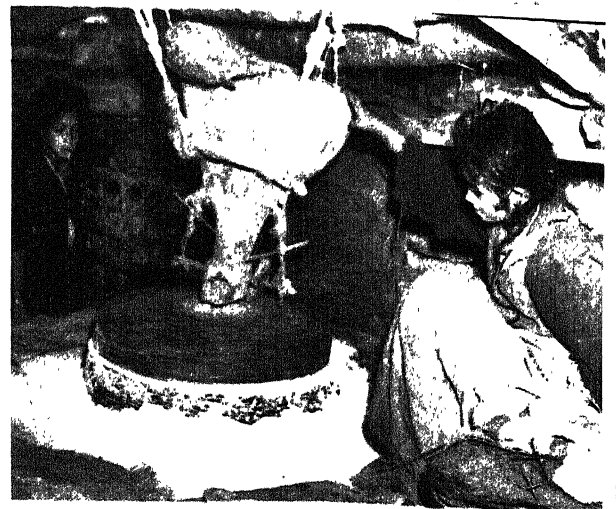
ग्रामीण उत्योग में 'घराट' (पनचक्की) का सभी जगह प्रयोग होता है। नीति (चमोली) के एक गांव में घराट पर गेहूं पीसती बालिकाएं।